सही के हीरो 2
डॉ. अब्दुल कलाम

सही के हीरो - 2

डॉ. अव्यक्त अग्रवाल

Copyright © 2016 Dr. Avyact Agrawal
All rights reserved.
Address
D7 Jasuja city, Jabalpur, 482003

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Published by author.

The views expressed in this book are entirely those of the author. The publisher and distributors of this book are not in any way responsible for the views expressed by the author in this book. All disputes are subject to arbitration; legal actions if any are subject to the jurisdictions of courts of Kolkalta, India.

ISBN: 978-93-85524-40-0

First Published: March 2016

Cover Design: Debashish Saha

मैं ये पुस्तक समर्पित करता हूँ

मेरे हिंदी के शिक्षक दुबे गुरूजी

और मेरे मम्मी-डैडी को

मेरे पिता राजेंद्र अग्रवाल की कुछ पंक्तियाँ
जिन्हें मैं बचपन में सुना करता था

अपने दुःख से दुःखी न हो कर
जो परपीड़न में रोते हैं।
दर्द बांट लेने वाले ये
ऐसे कितने हृदय मिलेंगे।

अपने मन की इच्छाऐं जो
कभी नहीं पूरी कर पाते
औरों की इच्छाओं के हित
सुख का सूखा रस पी जाते
तिस पर भी अपमानित
हो कर जो

उत्तर में मुस्का देते हैं
हृदय जीत लेने वाले ये
ऐसे कितने हृदय मिलेंगे।

लेखक का परिचय

डॉ. अव्यक्त अग्रवाल मध्य प्रदेश के छोटे-से खूबसूरत पर्यटन स्थल पचमठी में कभी टूरिस्ट गाइड हुआ करते थे। टूरिस्ट गाइड से शिशुरोग विशेषज्ञ बनने तथा एम्स नई दिल्ली पहुँचने तक के उनके सफर में उन्हें अनेकों कहानियाँ मिली।

वे सफल चिकित्सक होने के साथ ही एक अच्छे प्रेरक वक्त भी हैं।

प्रस्तावना

"IN ANCIENT INDIA OUR ELDERS WHO PRACTICED MEDICINE USED TO HEAL PEOPLE WITH STORIES HAPPY TO SEE DR. AVYACT DOES THIS IN THE 21ST CENTURY."

LOVE

MAHESH BHATT

Famous Film Director, Producer and Script Writer.

|| संग्रह ||

पहला भाग

लाईफगार्ड

चने के दाने

आधी परी

पासवर्ड

एक अलग प्रेम कहानी

जादूगर

बहुरुपिया

आइसक्रीम कैंडी

ज़िंदगी एक स्टेशन

मेरा चैंपियन

तीसरी-बेग़म

खज़ाना

अनगिनत आँखें

अंधेरी रोशनी

जंगल बुक

प्रेम पत्र

गोरी मैम

वो ग्रीटिंग कार्ड

मैं ही क्यों

मृत्यु का चयन

अदृश्य डोर

मेरी आख़िरी कहानी तुम्हारे लिए
वो आलसी
लड्डू

दूसरा भाग

प्रेरक कहानियाँ

सही का हीरो
गूगल
मैं ठीक हूँ
दुश्वारियाँ एक अवसर
आओ दिमाग को बुद्धू बनायें

तीसरा भाग

संस्मरण

मेरी पचमढ़ी और मैं
आसान है
उमैया एक तमाशा
एक और सुबह
मेरा गाँव
फाँस
लोकप्रियता का रहस्य
वो अधूरी कहानी
सफलता : सबसे शक्तिशाली मन्त्र
स्वतः प्रेरणा

हम सब रौशनी पुंज
हवा का झोंका- समीर
ज़िंदगी एक चैसबोर्ड
दूसरीशादी

पहला भाग

मर्मस्पर्शी कहानियाँ

।। लाईफगार्ड ।।

सुबह-सुबह गोआ के मिशनरी स्कूल के बाहर बाइक, ऑटो एवं कारों की चहल-पहल थी। स्कूल ड्रेस पर और भी ज्यादा मासूम लगते बच्चे अपने मम्मी-पापा को टाटा-बाय और फ्लाइंग किस करते स्कूल गेट के अंदर जाते जा रहे थे।
विक्टर भी पाँच वर्ष के एडम को गेट के भीतर जाते देख रहा था। वो उसे रोज़ छोड़ने आता और जब तक एडम ओझल नहीं हो जाता तब तक बाइक पर बैठा देखता रहता। फिर गेट में खड़े चौकीदार से कहता, "वो अपुन की जान है ख्याल रखना भाई।"
फिर वो चले जाता लाईफगार्ड की अपनी नौकरी करने गोआ के समुद्र तट पर।

सुबह-सुबह गोआ के समुद्र तट पर पर्यटकों का आना शुरू हो जाता।

लाइफ गार्ड समुद्र किनारे की रेत पर अपनी स्पीड बोट पर ही बैठ कर सब पर नज़र रखते। विक्टर अपने काम से प्यार करता था । बड़ी ही मुश्तैदी से नज़र रखे रहता।
इतने सालों के अनुभव से वो समझ चुका था कि समुद्र में डूबने वाले कुछ खास लोग होते हैं जिनकी हरकतों से वो अब पहले ही समझ जाता।
जैसे बियर पिए हुए दोस्तों के झुण्ड में से कोई एक फिजिक्स के सारे नियमों को दरकिनार कर चले जाता गहराई की ओर।
गर्लफ्रेंड के सामने बहादुरी की डींगें हांकने वाला बॉयफ्रेंड।
और जब कभी गर्लफ्रेंड डूबने लगती तब यही चिल्लाता लाइफ गार्ड को, किनारे खड़े-खड़े।
प्यार में मदहोश कोई लड़की जो समुद्र की गहराई को प्यार की गहराई समझ लेती।

विक्टर को गोआ का सबसे अच्छा लाइफ गार्ड माना जाता था। अवार्ड भी मिल चुका था जान पर खेलकर एक बच्चे को बचाने के लिए। वो बाईस साल का लंबा, दुबला लेकिन मस्कुलर थोड़ा-सा सांवला बड़े-बड़े सीधे बालों वाला आकर्षक युवा था।
समुद्र किनारे शॉट्स, टी शर्ट, हैट की छोटी-सी दुकान पर बैठी मारिया उसे देखती रहती।
जब विक्टर समुद्र किनारे घुड़सवारी करता, मारिया को वो कभी कोई फ़िल्मी सुपरस्टार लगता, कभी युद्ध जीत कर लौटा कोई सेनापति।
घोड़े की थापों के साथ उछलते उसके लंबे-लंबे बाल, बिना बांह की टी शर्ट से झांकती बलिष्ठ मांसपेशियाँ। सांवले चेहरे पर संघर्ष से जीत और बेपरवाही वाला आत्मविश्वास।
मारिया अब कॉलेज में थी। लेकिन पिता की दुकान में बचपन से हाथ बंटाती।
अब भी छुट्टियों में या कॉलेज से आ कर दुकान पर ज़रूर बैठती।
दुकान छोटी ज़रूर लेकिन चलती बहुत। आखिर गोआ के कालिंगट तट के किनारे जो थी।
मारिया को याद है जब वो आठ साल की रही होगी तब से ये सांवला, दुबला-पतला और गुमसुम-सा रहने वाला लड़का विक्टर समुद्र तट पर रोज़ दिखना शुरू हुआ था। विक्टर दस या ग्यारह साल का ही तो रहा होगा।
बड़े होते उसने देखा था विक्टर घंटों समुद्र को देखते तट पर बैठे रहता।
बेहद निडर, कभी-कभी समुद्र में आगे तक चला जाता। मानो डूबना चाहता हो। लेकिन लहरें उसे फिर मारिया की ओर तट तक ले आतीं। वो कितनी जल्दी तैरना सीख गया था।

मारिया अपने पिता के साथ उंगली पकड़े रोज़ सुबह खाली पड़े तट पर पैदल चलती।
नंगे पाँव, गीली रेत, कभी न सोने वाली लहरें और उनकी आवाज़, उगते सूरज की लालिमा, पिता का हाथ और उन हाथों में मारिया की उंगलियाँ, उसे जीवन के सर्वश्रेष्ठ पल देती।
इसी बीच रेत पर तेज़ दौड़ते उसे वो सांवला लड़का दिखने लगा था।
जब वो समुद्र में जाता, मारिया का मन करता वो उसे भी ले जाये।
एक बार छोटी-सी मारिया ने डैड से पूछ भी लिया था
"डैड मुझे भी जाना है समुद्र में भीतर, उस लड़के की तरह।"
डैड ने बताया था
"वो लड़का लाईफगार्ड फ्रांसिस के यहाँ रहता है और लाईफगार्ड का काम सीख रहा है।
तुम्हें थोड़े न लाईफगार्ड बनना है।"
"ये लाइफ गार्ड क्या करते हैं डैड ?"
"लाइफ गार्ड जान बचाते हैं डूबने वाले की।"
"तो डैड भेज दीजिये न मेरे को उसके साथ समुद्र में, वो तो बचा लेगा न।"
और न जाने कभी गुस्सा न होने वाले डैड ने आज डाँटा था मारिया को। "चुप कर आइन्दा ये उल्टी-सीधी बात मत करना।"
और मारिया ने इसके बाद फिर कभी ये प्रश्न नहीं पूछा।
लेकिन बड़ी होती मारिया को उस लाईफगार्ड की ज़िंदगी बड़ी अच्छी लगती।
स्पीड बोट पर तेज़ चक्कर, कभी-कभी तट पर घुड़सवारी, समुद्र से कुश्ती, पैराग्लाइडिंग, और लोगों की जान बचाना वाह!
बड़े होते उसे इस सांवले लंबे बालों वाले लड़के का नाम पता चला था। विक्टर।

उसने पापा से फिर कभी उसके बारे में नहीं पूछा था, लेकिन किशोर होते-होते उसे सपने आने लगे थे समुद्र के, विक्टर के।
समुद्र तट पर सफ़ेद घोड़े में स्लो मोशन में लंबे बाल उड़ाते विक्टर आता और उसे सफ़ेद परियों सी वेडिंग पोशाक में घोड़े पर बैठा समुद्र की ओर उड़ जाता।
कभी-कभी वो सपने देखती, वो डूब रही है और विक्टर अपनी मज़बूत बाहों में उसे उठा किनारे ले आता।
जब मारिया सोलह बरस की हुई तब विक्टर अट्ठारह का रहा होगा।
मारिया जैसी बचपन में मासूम-सी प्यारी गुड़िया थी, अब भी वो चुलबुली, मासूम, गोल चेहरे और घुंघराले बालों वाली गोरी-चिट्टी लड़की थी।
सोलह साल की सुंदरता तन-मन दोनों पर छाई थी।
समुद्र पार डूबता सूरज रोज़ अपनी लालिमा उसके गालों पर छोड़ जाता। गोरे रंग से लालिमा का मिलन। गालों पर गुलाबी रंग का राज़ था।
अब वो जब भी दुकान पर बैठती उसकी आँखें विक्टर को तलाशती।

एक दिन उसने देखा विक्टर को बिना टी-शर्ट, घोड़े वाले दोस्त के साथ पैदल चलते। हाथ में घोड़े की लगाम।

सिक्स पैक बॉडी पर जगह-जगह टैटू।
कहीं ड्रैगन तो कहीं शेर।
और उस रात मारिया को सपना आया था, ड्रैगन और शेर की जगह मारिया मारिया लिखा था कई बार।
दो बरस और बीत गए थे। यूँ ही देखते-देखते वो कॉलेज आ गयी थी।
लेकिन समुद्र, विक्टर, रेत, घोड़े वाला दोस्त, पापा की दुकान, समुद्री हवाएँ, बाज़ू की ग़ुमटी में बिकते अमेरिकन भुने भुट्टे और विक्टर के प्रति उसका आकर्षण सब कुछ वैसा ही तो था।
आज तक कभी मिले नहीं। लोगों को आगाह करती विक्टर की सीटी ही एक मात्र आवाज़ थी जो इतने सालों में वो सुन पायी थी।
यूँ ही बैठे-बैठे दुकान पर निहारती रहती। जितना पास हो कर भी बहुत दूर था समुद्र, विक्टर भी कुछ वैसा ही।

एक दिन उसने देखा विक्टर लगभग तीन साल के बच्चे को साथ लिए घूम रहा है।
कभी उससे रेत पर कुश्ती लड़ता, कभी उससे रेस लगाता और हार जाता, कभी गोदी में ले उसे उछालता।
इतना खुश और खिलखिलाता विक्टर उसने बचपन से अब तक कभी नहीं देखा था।
20 साल का विक्टर पिता तो नहीं हो सकता।
उसकी सहेली ने भी कहा था हँसते हुए "मारिया तेरा हीरो तो बिन ब्याहा पिता बन गया लगता है।"
लेकिन बच्चा गोरा है और तेरा हीरो काला, माँ पर तो नहीं गया?" बोल कर वो खिलखिलाई थी। मारिया उसे मारने दौड़ी थी।
अब रोज़ ही वो बच्चा विक्टर के साथ नज़र आता।
सुबह से वो उसे ले कर आता। उसके साथ खेलता, कभी घोड़े पर बैठाता, कभी हाथों से कुछ खिलाता और दोपहर होते स्पीड बोट पर ही बच्चे को वो उढ़ा कर सुला देता।
शाम पर्यटकों के जाने के बाद दोनों ओझल हो जाते।
मारिया को एक नया एहसास हुआ था।
उसके लंबे बाल, छैनी से तराशा मांसल शरीर, उसके टैटू, समुद्र में तैरना, लाल स्पीड बोट चलाना, घुड़सवारी करना सबकुछ कितना मर्दाना और आकर्षक था। लेकिन बच्चे की देखभाल करना इन सब पर भारी था। स्त्री का ये गुण ममता, पुरुष को और भी पुरुष बनाता हुआ।
मारिया बुदबुदाई थी "विक्टर मुझे तुमसे प्यार है, मेरे लाईफगार्ड बन जाओ प्लीज।"
आठ वर्ष की गुड़िया-सी उम्र से अब वो बीस की सुन्दर लड़की थी, उसका हीरो भी तो साथ-साथ बड़ा हुआ था। लेकिन कभी मिली नहीं, आवाज़ तक नहीं सुनी।
विक्टर अक्सर तट से कुछ दूर ग़ुमटी से अमेरिकन भुट्टा ले कर खाया करता। वो सोचती काश, मैं भुट्टे बेच रही होती।

आखिर एक दिन विक्टर आ ही गया दुकान पर।

मारिया का दिल सुनामी-सा उछालें भर रहा था।
कभी रुकता कभी तेज़ धड़कता।
फूलों वाली ढीली टी-शर्ट और नीली जीन्स, बड़े-बड़े लंबे काले बाल और डोले-शोले वाली बाहों पर टैटू।
पहली आवाज़ सुनने मिली थी,
"अपुन को चार साल का चाइल्ड के वास्ते कुछ दिखाओ, शर्ट-वर्ट, स्मार्ट-सा। अपुन के माफिक।"
मारिया को उसकी भारी आवाज़ और स्टाइल विक्टर के व्यक्तित्व पर जमती लगी थी।
उसके मन ने कहा था "कितना फ़िल्मी है यार ये।
लेकिन है पूरा हीरो।"
धड़कनों पर काबू पा उसने कुछ शर्ट निकालीं और कहा था विक्टर से "ये वाली जमेगी उस पर। वो गोरा है न तो ये लाल रंग स्मार्ट लगेगा।"
"तुमको कैसे मालूम मैडम कि वो गोरा है। अपुन-सा काला नई।"
मारिया सकपकाई थी। हाँ वो ये क्या कह गयी थी।
"नहीं देखा है न उसको बीच पर तुम्हारे साथ।"
"ओह्ह तो तुम अपुन को भी देखा है पहले।
साला अपुन तो फेमस है रे।"
"कित्ते का हुआ" ??
दुकान पर पिता थे नहीं और मारिया अपने हीरो से पैसे लेना नहीं चाहती थी।
बोली "ऐसे ही ले जाओ उसे गिफ्ट देना मेरी ओर से।"
"अच्छा काय कू गिफ्ट। मैं खरीद कर देगा।"
मारिया ने कंधे उचकाए थे।
वो पैसे दे कर चला गया था टी-शर्ट ले कर।
मारिया खुश भी थी और दु:खी भी एक साथ। अज़ीब-सी मिली-जुली भावनाएं और आशंकाएं।
लेकिन कुछ तो घटा था विक्टर में भी।

प्रकृति जब यौवन देती है, आकर्षण देती है तब ही कौन आकर्षित हो रहा है, पहचानने की नैसर्गिक क्षमता भी देती है। ये अदम्य शक्ति और उससे उत्पन्न आनंद दुनिया को आगे बढ़ाने का पुरुस्कार होता है।

विक्टर को ये बात कुछ अज़ीब लगी थी कि उस लड़की ने देखा था उसे और एडम को पहले भी।
विक्टर को वो मासूमियत और चुलबुलेपन का मिश्रण, छोटी-सी, गोल चेहरे वाली, गुलाबी-गुलाबी सलवार सूट वाली लड़की अच्छी लगी थी।
कुछ था जो उसे फिर से उसकी मीठी आवाज़ सुनने की तलब दे रहा था।
समुद्र गहराइयों से कुछ सीपी निकाल तट पर ले आया था। दिल की गहराई में छुपे प्यार के मोती बिखरने को आतुर हो रहे थे।

विक्टर चार साल के एडम को टी-शर्ट पहनाते हुए सोच रहा था क्या फिर से उस दुकान जाना ठीक होगा इसके मैचिंग पैंट के लिए।
वो दुकान के चक्कर लगाता है,लेकिन मारिया के पिता को देख लौट आता है हर बार।
लेकिन शाम मारिया दिख ही गयी।
विक्टर लाल शर्ट को निचले सिरों से बांधे हुए, एक काले चश्मे के साथ पहुँचा था।
मारिया का दिल इस बार सुनामी-सा तो नहीं लेकिन ज्वार-सा हिलोरे ज़रूर मार रहा था।
वो चहक उठी और बोली मुझे पता था तुम ज़रूर आओगे।
काले चश्मे को उतारता विक्टर बोला
"काय कू पता था, अपुन आएगा"।
मारिया ने कहा "अरे तुम पैंट तो ले ही नहीं गए थे न।"
विक्टर का काम आसान कर दिया था मारिया ने।
दोनों की आँखों ने दूर से ही सही लेकिन एक-दूसरे को छुआ था हौले से।
पेंट देते समय मारिया का हाथ अनजाने ही क्या छुआ विक्टर से, कुछ अज़ीब-सा लगा था उसे।
वो अज़ीब-सा अहसास आँखों से प्रतिबिंबित हो विक्टर तक पहुँच गया था।
विक्टर का दोबारा आना मारिया को काफी अच्छा लगा था। कुछ कहा तो नहीं था विक्टर ने, लेकिन लड़कियों की प्राकृतिक क्षमता, पुरुष मन को पढ़ने की, उसे आश्वस्त कर गयी थी।

अगले दिन सुबह विक्टर दौड़ने निकला था नन्हें एडम के साथ।
समुद्र तट पर।
सुबह की हल्की धूप, पहले से शांत सागर, ऊपर उड़ते, चहकते और साफ आसमान के बड़े कैनवास पर खूबसूरत पैटर्न बनाते पंछी।
हल्की गीली रेत, विक्टर, एडम, और उनकी तरफ आती मारिया। सफ़ेद लंबी फ्रॉक-सा कुछ पहने हुए। नंगे पाँव।
मारिया के कोमल सफ़ेद पैरों में, प्यार-सी, हल्की चुभती रेत, आकर्षण-सी चिपकती गीली रेत।
मारिया उस शांत एकाकी तट पर विक्टर के सामने थी।
नन्हें एडम से हाथ मिला कर बोली "तुम बहुत प्यारे हो"।
प्यारा-सा, दुबला, घुंघराले बालों वाला एडम शरमाया था। लंबे विक्टर को सर ऊपर कर देखा और मुस्काया था।
विक्टर ने कहा तुम तो वो दुकान वाली लड़की हो न।
मारिया ने कहाँ "हाँ, मारिया नाम है मेरा।"
"और तुम्हारा" ??
"अपुन विक्टर है"।
"तुम लगभग दस बरस के रहे होगे तब से दिख रहे हो यहाँ।
पहले कहाँ थे ?

माता- पिता कहाँ हैं ?
ये बच्चा कौन है तुम्हारा ?"
मारिया ने एक ही साँस में वर्षों से दबे आतुर प्रश्न पूछ डाले थे।
विक्टर एडम को ले पैदल चल, तट पर खड़ी अपनी स्पीड बोट तक आ गया था। मारिया पीछे-पीछे।
एडम को गोदी में उठा उस पर बैठाते हुए बोला।
"इत्ते क्वेश्चन मारिया मैडम, लंबी कहानी है।
लेकिन तुमको क्यों बताऊँ।
वैसे बारह साल से तुम मेरको देख रही हो। साला अपुन को पताइच् नई।"
"बस जानना है तुम्हारे बारे में।
तुम घोड़ा चलाना, स्पीडबोट चलाना और तैरना सब यहीं सीखे। कित्ती ज़ल्दी।
और उस बच्चे को क्या बचाया था तुमने जानपर खेल कर।
तुम हो ही ऐसे कि कोई लड़की अपनी दुकान से तुम्हें देखे।
बताओ न अपने बारे में।"
देखो मैडम अपुन जो कुछ बता रहा है, अपने वो घोड़े वाले दोस्त किशन और अपुन के मालिक फ्रांसिस को छोड़ कर कभी किसी से नहीं बोला।
लेकिन तुम अच्छी लगी, तो बोलता है।
देखो मैं दस साल की उमर में मुम्बई से भाग कर गोआ आ गया था, बिना टिकट।
मारिया विस्मित-सी बोली ओह् गॉड।
"हाँ, फिर दो-तीन दिन ऐसेईच् घूमा यहाँ वहाँ, भूखा-प्यासा और समुद्र की रेत पे सो गया।
लोग कहते दुनिया में अच्छे लोग नई होते, अरे देखो फ्रांसिस अंकल को, मेरे को भूखा-प्यासा देखे तो घर ले गए अपने, काम सिखाया लाइफ गार्ड का और इधर नौकरी भी लगा दी।"
"तो घर से क्यों भागे थे ???!
और मम्मी-पापा ?"
माता-पिता का ज़िक्र, विक्टर के चेहरे के भावों को कुछ बदल-सा गया था, सूनी आँखें, सागर-सी गहरी, अनगिनत राज़ छुपाये सागर-सी गहराइयों में।
"मारिया मेम ये समुद्र अपुन का बाप है।
और माँ...
छाती ठोंक कर बोला, और माँ इधर है। दिल में।"
"विक्टर बताओ न खुल कर।"
मारिया की आवाज़ में माँ-सा प्यार क्यों सुनाई दिया था उसे। भर निगाह एक टक देखा था मारिया की आँखों में इस बार। मारिया ने भी नज़रें नहीं हटाईं थीं इस बार।
नदिया, सागर में मिलती और खो जाती, मारिया की आँखें भी खो गयी थीं। अस्तित्वहीन, शून्य।
विक्टर ने आँखों के मिलन को रोका था।
"ठीक है बताता है।"

"देखो मेरी माँ बहुत अच्छी थी, प्यारी, मेरा गॉड।
लेकिन गॉड उसे बुला लिया अपने पास।
मेरा डैड दूसरी मम्मी ले आया।
मेरे को वो पसंद नहीं आयी।
मैं भी उसको पसंद नहीं आया।
डैड से रोज़ मेरी शिकायत करती, चिक-चिक मचाती।
मेरे को फालतू समझती।
काम करवाती खाना देने में ताने मारती।
मार भी देती।
डैड को पिक्चर ले जाती, मुझे घर पर अकेला छोड़ कर।
उसे मैं चाहिए नई था।
एक बार डैड को मैं बताया भी तो भी वो चुपचाप रहा कुछ नहीं बोला।
जिस दिन वो मुझे मारी उस दिन डैड को झूठी चुगली की।
तो मैं भी डैड को बता दिया कि ये मेरे कू अच्छे से नई रखती, मेरको अच्छा नई लगता इधर।
डैड गुस्सा हुआ और कह दिया अच्छा नई लगता तो जाओ किधर भी, निकलो इधर से और मैं निकल गया।"
"समुद्र मेरे को बुलाया, ये रेत बुलाई। अब जो भी है यही है।"
"डैड आये नहीं कभी ?"
"नई वो आये ढूंढते-ढूंढते, लेकिन अपुन मना कर दिया।
मेरे को यहाँ अच्छा लगा मदर नेचर के साथ।
उस घर में एक माँ याद आ कर रुलाती दूसरी माँ पास रह कर रुलाती।"
"मदर नेचर माँ की तरह रोज़ समुद्र की आवाज़ से लोरी सुनाती। रोज़ सुबह चिड़ियों की आवाज़ से उठाती।
लहरों में मुझे झूला झुलाती।"
मारिया की आँखों में दो बूँद आँसू थे, डबडबाई आँखों से धुंधले दिखते विक्टर के चेहरे पर संघर्ष, लगन, स्वाभिमान और सच्चाई की चमक दिखी थी।
मारिया ने अपने छोटे से गोरे हाथों से, उसके बड़े से सांवले हाथों को पकड़ लिया था। दो रंग मिलकर आपस में एक नया रंग बनाने वाले थे।
प्यार का जादुई रंग,जो दुनिया को रंग दे, अंधकार में रोशनी भर दे।

तब तक नन्हा एडम बोट से उतर गया था, रेत पर छोटे-छोटे हाथों से अपनी छोटी-सी दुनिया की बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने।
फिर वो एक सीपी उठा लाया था एडम को दे कर बोला खुशी से डैड।
इक्कीस-बाईस साल का विक्टर और डैड ???!
मारिया ने हाथों की गर्माहट और छुअन को बनाये रख पूछा था "और ये बच्चा एडम" ??
विक्टर ने उसे प्यार से देखा और सीपी को हाथों में ले कहा,

"ये बच्चा फ्रांसिस अंकल को तट पर पड़ा मिला, कोई इसको छोड़ गया था जन्म के पहले दिन।
इसकी माँ की कोई मज़बूरी रही होगी। नई तो माँ बुरी नई होती।"
"फ्रांसिस अंकल अच्छा इंसान है लेकिन दारू में डूबा रहता।
फ्रांसिस जब इसको घर ले कर आया, नशे में झूमते, ये ठंडा, सुस्त था।
आंटी ने फ्रांसिस अंकल को खूब लताड़ा।
"तुम हमारे सर पर बच्चा ला, ला के पटक देता है, खुद दारू में डूब जाता है।
तुम दारू की जगह समुद्र में क्यों नई डूब जाता फ्रांसिस।
विक्टर तो बड़ा था, इसको कैसे पालेगी मैं।"
फ्रांसिस को बड़-बड़ करती, लेकिन बच्चे को तुरंत लपेट के प्यार से दूध पिलाई।
अपुन वहीं था। सब देख के लगा एक और विक्टर आ गया दुनिया में बिना माँ का।
"आंटी ने इसे थोड़ा बड़ा कर दिया तो अपुन बोला अपुन इसे गोद लेगा ऑन्टी।
वैसे भी वो बूढ़ी और बीमार ही रही थी।"
"आंटी अज़ीब है। अंकल दारु पी कर आता तो कहती तू मर क्यों नई जाता। लेकिन फिर उसे फिश बना के भी देती।",
"एडम नाम इसको अपुन ही दिया। इसकी और अपुन की ज़िंदगी एक-सी है।
अपुन भी बिना माँ-बाप का, ये भी बिना माँ-बाप का, अपुन भी समुद्र किनारे, ये भी समुद्र किनारे, मेरे को भी फ्रांसिस बचाया इसको भी।
लेकिन अपुन पढ़ा नहीं, ये पढ़ेगा।
कार वाला बड़ा साहब बनेगा।
बीच पर ये लाईफगार्ड बनके नई, टूरिस्ट बन के जाएगा अपनी हॉट गर्लफ्रेंड के साथ।
अपुन की तरह अपुन-तुपुन नई करेगा, तुम्हारी तरह बोलेगा मारिया मेडम, हिंदी और इंग्लिश।"
मारिया का जीवन और बचपन कितना सीधा-सादा, आराम से बीता था। कोई घटना नहीं।
अच्छे मम्मी-पापा, छोटी-सी दुकान, एक स्कूल, कुछ दोस्त, माँ के हाथ का खाना।
और जो वो अभी सुन रही थी कितना अलग, कितनी घटनाओं से भरा हुआ। इतने बदलाव और घटनाएं तो समुद्र की लहरों में भी नहीं होते।
लेकिन विक्टर का संघर्ष, तकलीफें, जीवटता और उससे भी बढ़कर ममतामयी पुरुषत्व उसकी शारीरिक बलिष्ठता से मिल कर सपनों के नायक का निर्माण कर रही थीं।
दूसरा ये भी तो राहत थी कि वो कोई कुँआरा बाप नहीं।
मारिया की ठंडी हथेलियाँ विक्टर की गर्म हथेलियों से मिल कर गर्म हो गयी थीं। अब दोनों का तापमान एक-सा था।
मारिया ने विक्टर की आँखों में कुछ इस तरह देखा था कि विक्टर को वो माँ-सी लगी थी।
ये प्यार था जो रिश्ते और समयकाल की बेड़ियाँ तोड़ भाग कर आया था किसी और भेष में।
देखते-देखते पर्यटकों की चहल-पहल बढ़ने लगी थी। सूरज किरणें भेजने लगा था समुद्र को।

मारिया हाथ छोड़ते हुए बोली, "अब जाना होगा कॉलेज है।"
विक्टर बोला "हाँ अपुन को भी एडम को नाश्ता करवाने का है।"
तुम कॉलेज जाती हो अच्छा लगा।
उसे याद आया था अनायास ही, माँ ने कितना प्यार किया था जब सेकंड क्लास में वो फर्स्ट आया था।
आज दिन भर विक्टर, छोटी-सी कपड़े की दुकान को रह-रह कर देखता रहा।
उसे वो गोरी, मासूम-सी लड़की का इंतज़ार था।

मारिया शाम पाँच बजे आयी थी।
आज वो दुकान से निकल बाहर आ गयी थी।
तट शुरू होने की सीढ़ी तक।
विक्टर स्पीड बोट पर हमेशा की तरह समुद्र की ओर मुँह किये। लेकिन अचानक वो पीछे मुड़ा था। मारिया सफ़ेद टी-शर्ट और नीली जीन्स में कुछ अलग ही लगी थी। सुबह मिली तो उगते सूरज-सी सुन्दर, शाम मिली तो डूबते सूरज-सी सुन्दर। कैसे बताएं कौन-सा सूरज ज़्यादा सुन्दर था।
विक्टर ने खुशी से हाथ हिलाया था, मारिया ने भी हाथ हिलाया था।
मारिया मुस्काते लौट गयी थी दुकान में।
मारिया और विक्टर अब रोज़ सुबह और शाम साथ घूमने लगे थे।
गीली-सी रेत पर नंगे पाँव, छोटे से एडम की उंगली थामे।
एडम विक्टर को डैड बोलता था। मारिया को आंटी।
छोटी-सी, प्यारी-सी चुलबुली आंटी।
मारिया ने हँसकर बोला था उसे मैं दीदी हूँ आंटी नहीं। लड़कियों को आंटी नहीं बोलते।
और वो और भी तेज़ आवाज़ में आंटी बोल कर भागा था खिलखिलाते हुए।
मारिया ने कहा था विक्टर एडम को अब स्कूल भेजना शुरू करना चाहिए।
और विक्टर ने उसे दौड़ते देखा था ध्यान से, हाँ कितनी ज़ल्दी चार साल निकल गए, और ये इतना बड़ा हो गया। "मारिया अपुन को बहुत प्यार है इससे।
लगता है जैसे अपुन खुद को ही पाल रहा है। एडम अपुन की जान है।"
मारिया ने पूछा था "और किससे प्यार है विक्टर" ?
वो सिर्फ मुस्कराया था नीचे सर किये।
कुछ देर रुक कर बोला "ठीक है स्कूल में भर्ती करवाता है। बड़ा साब बनेगा अपुन का एडम"।
और वो आज पहले दिन स्कूल छोड़ कर आया था एडम को। चौकीदार से कह कर आया था, ध्यान रखना उसका वो मेरी जान है।
अब वो रोज़ सुबह एडम को छोड़ता स्कूल, फिर समुद्र तट चले जाता।
कुछ देर मारिया के साथ घूमता।
फिर काम।
शाम मारिया डूबते सूरज और जाते पर्यटकों के समय फिर आ जाती।

एडम और विक्टर के लिए वो रोज़ कुछ बना लाती। एडम को तो बड़े प्यार से अपने हाथों से खिलाती।

विक्टर ने पूछा था "तुम्हारे डैड को कोई गुस्सा नहीं तुम यहाँ मेरे पास आती हो" ?
मारिया ने कहा था "नहीं, उनका प्यार बंदिशें लगाने वाला नहीं, भरोसा और केयर करने वाला प्यार है।
उन्हें पता है, मैं जो भी करूंगी सही करूंगी।
मैं तो उन्हें बता भी चुकी हूँ कि"...
वो चुप हो गयी।
विक्टर ने पूछा "क्या बता चुकी हो" ?
मारिया ने कहा "कुछ नहीं"।
"अरे फिर....
बोलो क्या बता चुकी हो" ?
"तुम बताओ क्या बताया होगा" ? आँखों में आँखें डाल बोली।
विक्टर सम्मोहित-सा था उन आँखों से।
खामोश देखता रहा।
फिर बोला,"यही न कि तुमको अपुन पसंद है" ?
वो बस देखती रही एक-टक। खामोश सहमति, मानो शब्दों से खलल न पड़ सके इन परमानन्द के पलों में।
डूबता सूरज कुछ देर को और रुक गया था आगे क्या होगा देखने। समुद्री लहरें और हवाएँ बतियाने लगी थीं खुसुर-फुसुर।
विक्टर ने लम्बे, बलिष्ठ हाथ फैलाये थे और मारिया समा गयी थी विशाल सीने में ।
सूरज संतुष्ट-सा डूब चला था। हवाओं और लहरों की खुसुर-फुसुर रुक गयी थी। शांत, ठहरे हुए पल। कुछ आवाज़ें थीं तो बस दो साथ धड़कते दिलों की।

दोनों का साथ तट पर टहलना, सुबह-शाम, एक दिनचर्या बन चुका था। प्यार भरी बातें, भविष्य की बातें, एक ही भुट्टे से भुट्टा खाना, एक ही नारियल से दो स्ट्रॉ डाल नारियल पीना, विक्टर के साथ बैठ घुड़सवारी करना और तेज़ चलने पर मारिया का चीखना, एक साथ पैराग्लाइडिंग करना, ये सब रोज़ ही होता।
दोनों विक्टर की बाइक पर साथ घूमते, लेकिन विक्टर एडम को ले कर ज़रूर जाता साथ। ये बोल कर कि ये तो मेरी जान है।
एडम दोनों के बीच खुशी से बैठता और गोआ की हसीन वादियों में तीनों घूमते।
यूँ ही एक खूबसूरत वर्ष बीत गया था।
विक्टर खुश था अपने जीवन से।
मारिया ने बहुत बार पूछा था शादी को। वो घर में भी बात कर चुकी थी। वो तैयार थे। आखिर विक्टर भी अब घर बसा लेना चाहता था अपनी मारिया संग।
लेकिन कुछ था जो उसे भीतर से अशांत किये हुए था। ऊहापोह थी, अंतर्द्वंद था भीतर। खासकर इस हफ्ते हुई दो घटनाओं की वजह से।

पहली तो मारिया ने ज़िद की थी सिर्फ विक्टर के साथ फ़िल्म जाने की। एडम को आंटी के पास छोड़ कर जाने की। विक्टर ने साफ कह दिया था" एडम अपुन की जान है ये तुमको पता है।
वो अपुन का बच्चा भी है, दोस्त भी है।"
मारिया रुआँसी हो गयी थी।
दूसरी घटना ये कि जब एडम स्कूल गया था और मारिया विक्टर के साथ उसके घर आ गई थी।
एक कमरे के बिखरे हुए घर को पहले उसने प्यार से जमाया था।
साफ किया था।
गंदे पड़े बर्तन धो कर विक्टर के लिये नूडल्स और कॉफी बनाई थी।
विक्टर को उसकी ये देखभाल बहुत भाई थी।
फिर दोनों प्यार में डूब गए थे।
लेकिन गड़बड़ हो गयी थी, मारिया के नशे में।
तीन बज गए थे और एडम को एक घंटा बैठे रहना पड़ गया था स्कूल में, विक्टर तेज़ी से उठा था। मारिया को ले कर बाइक तेज़ी से चलायी थी और स्कूल गेट पर चौकीदार के साथ उदास बैठे एडम को लेकर आया था।
क्लास टीचर और चौकीदार दोनों ने विक्टर और मारिया दोनों को बातें भी सुनायी थीं।
"कितने लापरवाह पेरेंट्स हैं आप", फ़ोन भी बंद पड़ा है आपका ??
विक्टर दो दिन खामोश रहा था। उसने मारिया से बात नहीं की।
उसे रह-रह कर अपनी सौतेली माँ दिखती, जिसकी वजह से वो अपने डैड को, घर को भी छोड़ आया था।
क्या शादी के बाद वो खुद अपने डैड-सा बदल जाएगा, क्या मारिया एडम के प्रति सौतेली माँ-सा रवैया रखेगी ??!
हम दोनों का बच्चा होने पर एडम की ज़िंदगी मुझ-सी तो नहीं हो जायेगी ?
वो एडम को कुछ ऐसे पाल रहा था जैसे वो अपने ही बचपन के टुकड़े को ले आया हो, खुद को दोबारा पाल रहा हो, बिना पुरानी गलतियों के।
मारिया ने माफी माँगी थी, बहुत प्यार किया था और समझाया था।
विक्टर मान तो गया था, लेकिन शादी का निर्णय उसने टाल दिया था।
उसने मारिया से बस इतना कहा था कि शादी मैं कुछ रुक कर ही करूँगा।
मारिया ने अब एडम पर ज़्यादा ध्यान देना और प्यार करना शुरू कर दिया था।
एडम भी मारिया को बहुत पसंद करता था। लेकिन विक्टर को याद था कि सौतेली माँ ने भी डैड से शादी के पहले बहुत प्यार किया था उसे। लेकिन फिर सब कुछ बदल गया था।
एडम के साथ वो ऐसा कुछ भी नहीं होने देना चाहता था।
यूँ ही एक वर्ष और बीत गया। अनिर्णय का।
एडम अगली क्लास में पहुँच चुका था। फ्रांसिस और भी पीने लगा था। आंटी और भी बूढ़ी हो रही थी। उम्र के साथ फ्रांसिस पर बड़बड़ाना भी बढ़ गया था।
लगभग रोज़ ही आवाज़ आती "फ्रांसिस तू मर क्यों नहीं जाता डूबकर। खाना परोसती

जाती और लगातार चिल्लाते जाती। फ्रांसिस झूमते हुए खामोश खाते जाता। आंटी की बड़बड़ उसके लिए चटनी का काम करती।
मारिया ने कहा था एक दिन, "विक्टर घर से दबाव पड़ने लगा है शादी का।'
विक्टर ने कहा था वो कुछ ही समय में बताएगा।
मारिया का प्यार कम तो नहीं हुआ था, लेकिन वो अपने भविष्य के प्रति अब आशंकित होने लगी थी।
विक्टर क्यों शादी टाल रहा है इसका कोई ठोस कारण उसे नहीं समझ आया था। लेकिन उसे अंदाज़ था कि ऐसा वो एडम की वज़ह से ही कर रहा है।
वो समझ रही थी कि विक्टर का
बचपन उसके इस असामान्य व्यवहार और अनिर्णय की वजह है।
साथ ही विक्टर को पता था मारिया बहुत अच्छी लड़की है।
उसे और उसके एडम से प्यार भी करती है।
लेकिन एक बार उसने दार्शनिक अंदाज़ में मारिया से कहा था।
"मारिया बहुत बार अपुन को खुद ही नहीं पता होता कि अपुन खुद फ्यूचर के रिश्तों में कैसे होंगे ? कैसे हस्बैंड होंगें, कैसी वाइफ होंगे और कैसे माँ-बाप होंगे ?"

और एक दिन जब वो दुकान पर बैठी थी गुमसुम, तब ही घोड़े वाला दोस्त दौड़ते आया था बदहवास।
मारिया, मारिया चिल्लाते।
विक्टर डूब गया रे, मारिया।
वो भी दौड़ते भागी थी तट तक।
तट पर पड़े विक्टर को साथी लाईफगार्ड साँसे देते हुए।
फ्रांसिस और आंटी एक-दूसरे से चिपके रोते हुए।
नन्हा एडम भाग कर मारिया से लिपट गया था रोते हुए।

घोड़े वाले दोस्त ने बताया, फ्रांसिस खूब दारू पी कर समुद्र में अंदर चला गया था विक्टर की स्पीडबोट लेकर। चिल्लाता जा रहा था तू रोज़ कहती थी न मैं डूब मरुँ।
ले आज अपुन डूबने जा रहा है। और फ्रांसिस कूद गया था समुद्र में।
विक्टर बिना लाइफ जैकेट के ही समुद्र में चला गया था, तैरकर उसे बचाने।
फ्रांसिस को स्पीड बोट में किसी तरह बैठा दिया था उसने लेकिन खुद लहरों के हवाले हो गया था ।
उसकी कुछ साँसें थीं, तुरंत एम्बुलेंस अस्पताल ले गयी थी।

मारिया अपने पिता और एडम को ले अस्पताल पहुँची थी।

मारिया ने अपने पापा से कहा था रुआंसा हो कर "पापा यदि विक्टर को कुछ हुआ तो मैं एडम को अपने पास रखूंगी और ज़िंदगी भर शादी नहीं करूँगी। वो कहता था एडम उसकी जान है। और मेरे पास ही उसकी जान रहेगी। आपको पता है एडम की वजह से ही चाह कर भी शादी नहीं कर रहा था मुझसे। उसे डर है कि मैं एडम की सौतेली माँ न बन जाऊं।

नन्हा एडम सब सुन रहा था"
दो दिन बीत चुके थे विक्टर की बेहोशी के।
मारिया एडम को गोदी में सुलाये बेन्च पर उनींदी बैठी थी आई सी यू के बाहर।
डॉक्टर ने बाहर आ कर बताया था, उसे वेंटीलेटर से अलग कर दिया गया है और आप अब अंदर जा सकती हैं।
आई सी यू में विक्टर हल्का-सा मुस्काया था दोनों को देख कर।
मारिया ने एडम के सर पर हाथ रख कहा था "तुम्हारी जान मेरे पास थी तुम्हें कुछ कैसे होता।"
"छः साल के नन्हे एडम ने कहा विक्टर से डैड अब बहुत हो चुका मुझे आंटी नहीं मम्मी होना। मारिया मम्मी।

मारिया अपुन की जान है डैड, तुम उसको नई लाएगा तो अपुन चला जाएगा मारिया आंटी के पास।"
मारिया ने उसे गले से लगा लिया था आँसू रोकते हुए।

।। चने के दाने ।।

वो बैठी थी करीने से व्यवस्थित अपने ऑफिस चैम्बर में कुछ फाइल्स देखते हुए। तभी किसी ने पूछा क्या मैँ अंदर आ सकता हूँ ?
फ़ाइल देखते हुए उसने कहा यस प्लीज...
वो अंदर आया। ए
क हल्की-सी नज़र ऊपर उठा कर बोली... बैठिये प्लीज।
और फ़ाइल देखने लगी।
लेकिन तुरंत उसे कुछ सूझा और ऊपर देखा तो देखती ही रह गयी। अविश्वसनीय।

सामने बैठे शख्स ने उसे 2015 से 1988 में पहुँचा दिया था 27 साल पहले। अवाक-सी। आँसुओं से न छलकने की विनती करते देखती रही उसे। जो पल हमारे दिल को छूते निकल जाते हैं वो छूकर अपने निशान हमेशा को अंकित कर जाते हैं। और स्लो मोशन में जिए हुए वो पल किसी फ़ास्ट फॉरवर्ड रील की तरह दिखने लगते हैं। उसे भी 26 जनवरी 1988 का वो दिन याद आ गया जब उसे जिला-स्तरीय निबंध प्रतियोगिता का फर्स्ट प्राइज़ मिलना था। गणतंत्र दिवस की चहल-पहल। छोटे बच्चे तो पन्नियों में मिलने वाले लड्डू के लालच में बैठे थे मैदान पर। वो दसवीं क्लास में थी पचमढ़ी के गर्ल्स स्कूल में। तूलिका महापात्रा। छोटे-से पचमढ़ी में सभी जानते थे उसे। गर्ल्स स्कूल टॉपर। चुलबुली, स्मार्ट, छोटे-छोटे बालों वाली। डिबेट और साहित्य में हमेशा जीतने वाली। लेकिन इस बार निबंध प्रतियोगिता का फर्स्ट प्राइज़ उसे शेयर करना था। तूलिका को उत्सुकता तो थी उसे देखने की जिसने उसे इतनी कड़ी टक्कर दी थी।
जब नाम पुकारे गए तो तूलिका महापात्रा के साथ-साथ दसवीं के आदित्य मिश्रा को भी फर्स्ट प्राइज़ मिला। एक ही निबंध के लिए।
तूलिका ने देखा मासूम-सा तेल लगाकर सीधे किये हुए बालों वाला लड़का आदित्य अपने में ही खोया हुआ था गुमसुम।
कुछ महीनों बाद दसवीं के रिजल्ट आ गए। तूलिका गर्ल्स स्कूल के साथ-साथ पूरे पचमढ़ी में प्रथम आयी थी। लड़कों के स्कूल से आदित्य प्रथम था। लेकिन तूलिका से पीछे था।
ग्यारहवीं से तूलिका को अपनी सहेलियों के साथ स्कूल बदल कर लड़कों के स्कूल में आना था क्योंकि गर्ल्स स्कूल में दसवीं तक की ही कक्षाएं थीं। और ग्यारहवीं से को-एड था।
स्टेट बॉयज़ स्कूल में ये वो उम्र थी जब सब 15 से 17 साल के हो चुके थे। नयी क्लास। पहली बार लड़कियाँ साथ में पढ़ने आईं थी। बदमाश लड़के खुश थे। अब दूसरे स्कूल के चक्कर नहीं लगाने पड़ेंगे।
हॉर्मोन्स ने अपना जादू चलाना शुरू कर दिया था। सब कुछ अच्छा-सा लगने लगा था। लड़कियाँ सुन्दर होते जा रहीं थी। लड़के अब भी लंबे हो रहे थे। नौवीं-दसवीं वाले अक्खड़पन और हाफ पेंट की जगह करीने से इन किये हुए खाकी फुल पैंट और सफ़ेद शर्ट ने ले ली थी।
ब्लैक एंड व्हाईट टीवी पर आठ बजे रात को चित्रहार आता बीच में क्रीम और साबुन के विज्ञापन भी देखे जाने लगे था। कुछ थोड़े अमीर लोग कलर टीवी लाने लगे थे। जो कि

टीवी के रिमोट को बच्चों और पड़ोसियों को छूने भी नहीं देते थे।
माँ से बात करने का समय क्रिकेट के मैदान और दोस्तों से गप-शप ने ले लिया था और बचा-खुचा समय आईनों ने। कॉमिक्स और फिल्मों की जगह बातों का प्रमुख विषय अब लड़कियाँ और सचिन तेंदुलकर थे। कुछ लड़के नई-नई गालियों के अकूत जानकार और आविष्कारकर्ता बन गए थे। दुःख की बात थी, उनकी ये रचनाधर्मिता और प्रतिभा अनसुनी, अनकही और अपुरुस्कृत रह जाने वाली थी।
कुछ ने छुप-छुप कर कश मारना शुरू किये थे। मैंने प्यार किया रिलीज़ हो गयी थी और उसे वी सी आर में देखा जाने लगा था।
पचमढ़ी की वादियों में मैंने प्यार किया के गाने गूंजने लगे थे.....तुम लड़की हो मैं लड़का हूँ....आया मौसम दोस्ती का...
कुछ लड़कों ने सलमान जैसी बॉडी के लिए असफल हो जाने वाली कोशिश भी शुरू कर दी थी। जिम नहीं थे। ईंटों को डम्बल मान लिया गया था।
बालों पर बार-बार हाथ लगाना एक ट्रेंड बन चुका था।
संकरी मोहरी के रंग-बिरंगे फूले-फूले बैगी पैंट पचमढ़ी की रंगीन छठा में इज़ाफ़ा कर रहे थे।

उन्हें ये नहीं पता था, ज़िंदगी इतनी हसीन फिर कभी नहीं होने वाली थी। क्योंकि जो सुंदरता उन्हें बाहर दिख रही थी दरअसल वो सब अंदर घट रही थी हॉर्मोन्स के रूप में। प्रकृति खुश हो रही थी ....प्रकृति को आगे बढ़ाने वाले जो तैयार हो रहे थे। सोलह साल की उस उम्र की वो खूबसूरत अनुभूति इसी तैयारी का पुरुस्कार थी।
उस समय चाह कर भी लड़कियों से बात करना इतना आसान नहीं था। डींगें हांकने वाले लड़के, लड़कियों से एक पेन मांगने में भी डरते थे।
आखिर सेंट्रल स्कूल से फेल होने की वजह से निकाले गए और हिंदी मीडियम स्टेट स्कूल में आये कुछ लड़कों ने इंग्लिश वाले आत्मविश्वास के साथ लड़कियों से बात करना शुरू की।
जहाँ सबकी हेयर स्टाइल आमिर और सलमान सी हो रही थी वहाँ आदित्य अब भी घुंघराले बालों को तेल चुपड़ कर सीधे किये हुए था। अब उसे पता था इस साल प्रथम आना आसान नहीं। तूलिका महापात्रा जो है। उसने अपना ध्यान और भी बढ़ा दिया था पढ़ाई में।
आदित्य ने गणित लिया था विषय के रूप में। जबकि तूलिका ने जीव-विज्ञान।
भौतिकी, रसायन–शास्त्र, हिंदी और इंग्लिश की कक्षाएं साथ ही लगतीं। विज्ञान विषय वालों की। बस जीव-विज्ञान के लिए तूलिका को अलग कक्षा में जाना होता।
लड़के बाएं ओर एवं लड़कियाँ दायें और की बेंच पर बैठा करतीं।
हिंदी की एक कक्षा में दुबे सर ने पढ़ाया कि, "किशोरावस्था एक पनघट-सी होती है जिसमें बहुत फिसलन होती है। जो संभल कर चला वो पार कर जाता है। जो नहीं वो गिर जाता है।"
आदित्य ने ये बात गांठ बांध ली थी। पढ़ाई पर एकाग्रता और बढ़ा दी थी।
आदित्य और तूलिका दोनों पढ़ाई में अच्छे होने की वजह से सबसे सामने की रो में बैठते थे। आदित्य कक्षा के बाएं कोने और तूलिका दायें कोने पर।

दोस्तों ने उसे बताया कि तूलिका उसे देखती रहती है। आदित्य ने इस बात को दरकिनार कर तो दिया था लेकिन अब वो पढ़ते-पढ़ते अचानक कक्षा के दायें तरफ बैठी तूलिका को देख लेता और वो अनेकों बार उसे पकड़ लेता खुद को देखते हुए। दोनों की नज़रें कई बार मिल जातीं। तूलिका का दिल धाक से तेज़ धड़कने लगता। आदित्य को भी अब ये अच्छा लगने लगा था। जैसे ही नज़रें मिलतीं आदित्य का दिल भी तेज़ धड़कने लगता। ये दिल धड़कना उन्होंने बहुत से गीतों में सुना था। महसूस पहली बार हो रहा था। वो अहसास लत पड़ने वाला था। अब तो जब तक नज़रें मिल नहीं जातीं आदित्य एक-टक देखता ही रहता। ये सब लेक्चर सुनते हुए भी चलता।
बदमाश बैक बेंचर दोस्त जैसे ही तूलिका पहली बार उसे देखती कोरस में चिल्लाते एक,
दूसरी बार देखती तो चिल्लाते दो,
तीसरी बार देखती तो चिल्लाते तीन,
ये सिलसिला 20-25 गिनती तक चलता।
आदित्य शर्माता लेकिन तूलिका को कोई फर्क नहीं था।
आदित्य का मासूम-सा व्यक्तित्व और गंभीरता उसे प्रभावित करती।
जब भी कोई प्रश्न किसी से नहीं बनता शिक्षक आदित्य या तूलिका से पूछते। तूलिका उत्तर पता होते हुए भी चुप रहती जिससे आदित्य उत्तर दे सके।
आदित्य के भाषण उसे मंत्र मुग्ध करते। वो एक-टक बस देखती रहती जब असेम्बली में आदित्य बोलता।
आदित्य ने अब बालों में तेल चुपड़ना बंद कर दिया था। बड़े-बड़े घुंघराले बाल।
अब तक दोनों की कभी बात नहीं हुई थी। बारहवीं के सीनियर्स का फेयरवेल होना था। ग्यारहवीं के छात्रों पर ये ज़िम्मेदारी थी। सभी लड़के-लड़कियाँ ज़ोर-शोर से तैयारियों में लग गए। प्रांगण की सफाई, सजावट, माईक की जिम्मेदारी, भाषण, सम्बोधन, फोटोग्राफर का इंतज़ाम वगैरह। इस तैयारी के दौरान दोनों में बात होना शुरू हुई।
तूलिका की हँसी आदित्य पर जादू करती।
तूलिका लड़कियाँ के साथ गेंदे के फूलों से शिक्षकों के लिए मालाएं और गुलदस्ते तैयार कर रही थी जबकि आदित्य लड़कों के साथ सीनीयर छात्रों को देने के लिए कार्ड जिसमें उनके लिए कुछ मज़ेदार-सा लिखा हो तैयार कर रहा था।
दोनों अब जब भी मौका मिलता बात करते।
आदित्य ने पूछा था, "तुम हमेशा टॉप कैसे करती हो ? क्या पढ़ती ही रहती हो।"
तूलिका ने कहा था, "तुम कौन-सा कम हो। वैसे मैं जो भी करती हूँ पूरे मन से करती हूँ। पूरी लगन से। बस इतना ही है।"
अब तक अजनबीपन की बेकार परतें उधड़ने लगी थीं।
आदित्य ने पूछा, "अच्छा ये बताओ तुम मुझे देखती क्यों रहती हो।"
तूलिका अवाक थी इस प्रश्न से। उसका दिल धड़का था तेज़।
"कुछ भी। मैं नहीं तुम देखते हो मुझे। वो भी एक-टक।"
"तूलिका मजाक मत करो बताओ क्यों देखती हो।"
"अरे मैं नहीं तुम देखते हो।"

आदित्य बोला, "पहले तुमने शुरू किया था।"
तूलिका बोली, "अच्छा एक काम करते हैं तुम अलग और मैं अलग कागज़ पर लिखते हैं कि तुम या मैं क्यों देखते हैं एक-दूसरे को फिर एक साथ दोनों उस कागज़ को खोलेंगे। लेकिन सच लिखना पड़ेगा।"
आदित्य ने कहा, "ठीक है।"
लिखने के बाद कागज़ टेबल पर रख कर साथ में खोले गए। आदित्य के कागज़ पर लिखा था....."मुझे तुम और तुम्हें देखते रहना बहुत अच्छा लगता है।"
तूलिका के कागज़ पर लिखा था
"तुम बुद्धू हो, लड़कियाँ कभी प्रपोज़ नहीं करतीं।"
दोनों बहुत हँसे थे।
पचमढ़ी ज़्यादा हसीं हो गयी थी।
बादल पहाड़ों पर उतर आये थे चुगली करने।
पचमढ़ी झील में बैठे सफ़ेद बगुले उड़ने लगे थे अफवाहें फ़ैलाने।
चिड़ियों ने चीं-चीं गॉसिप शुरू कर दिया था।
बागों में फूल मुस्कुराने लगे थे यूँ ही।
आँखों ने इक-दूजे का प्रणय प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था।
बादलों की गड़गड़ाहट दिलों की धड़कनों को छुपा ना सकी थी।
अब रोज़ दोनों ज़्यादा से ज़्यादा साथ रहते। बातें कभी ख़त्म ही नहीं होतीं।
बदमाश लड़के तूलिका को देख चिल्लाते आदित्य आदित्य।
आदित्य को ये बुरा लगता लेकिन तूलिका को जैसे मज़ा आता आदित्य के नाम से चिढ़ाया जाने में।

फेयरवेल काफी अच्छा हुआ था। आदित्य का भाषण तूलिका की मदद से तैयार हुआ था। भाषण में यथार्थ, मार्मिकता, दर्शन और हास्य का भी पुट था। सबने बहुत तारीफ की थी। प्राचार्य ने माईक पर कहा था आदित्य इतना अच्छा भाषण बहुत दिनों बाद सुना। मुझे लगता है तुम बहुत आगे जाओगे। तूलिका बहुत खुश हुई थी।
दूसरी लड़कियाँ भी आदित्य की प्रतिभा से प्रभावित होतीं।
तूलिका अलग नहीं थी....लड़कियाँ उन लड़कों को ज़्यादा पसंद करतीं जिन्हें उनकी सहेलियाँ पसंद करतीं।
स्कूल के बाहर बेर, भुने चने फुटाने, टॉफी, लबदो, खिन्नी और पुंगे, लिए एक अम्मा बोरे पर बैठी होती। तूलिका को भुने चने पसंद थे।
आदित्य 50 पैसे के ढेर सारे चने खरीद लेता। अम्मा कागज़ की पुड़िया में चने दे देती, और दोनों साथ खाया करते थे। तूलिका अपने हाथों से आदित्य के लिए कुछ-कुछ बना लाती। आदित्य को अपने हाथों से बनाई हुई चीज़ें खाते देखना उसे अच्छा लगता।

एक बार तूलिका ने चने की पुड़िया से दो चने निकाल कर टेबल पर रख दिए और पूछा ...., "कितना प्यार करते हो मुझे टेबल पर रखे चने के दो दानों जितना कि पुड़िया में रखे ढेर सारे चनों जितना।"
आदित्य ने दोनों दाने फिर से पुड़िया में दाल दिए थे। और कहा था....पुड़िया की ओर

उंगली दिखा कर....., "इतना। वो दो दाने भी क्यों निकाले।"
आदित्य की हाज़िर जवाबी और प्यार दिखाने का तरीका दिल को छू गया था। वो चने की पुड़िया दबाये जीव-विज्ञान की क्लास में चली गयी थी।

तूलिका के प्यार ने आदित्य को और भी लगनशील बना दिया था पढ़ाई में। वो पचमढ़ी हिल की पहाड़ी पर चले जाता और एकांत में बस हवाओं की आवाज़ के साथ पढ़ता। वृक्ष आदित्य का इंतज़ार करते मानों उसके वो सहपाठी हों। पचमढ़ी हिल से नीचे पूरा पचमढ़ी दिखता। छोटे-छोटे खपरैल वाले खूबसूरत घर। कभी-कभी आदित्य तूलिका का घर ढूँढा करता वहाँ से। फिर वो कहता आसमाँ से मुझे इस हिल से भी बहुत ऊँचाईयों पर जाना है। किशोरावस्था के सपने दृढ़ निश्चय में बदलने लगे थे।
ग्यारहवीं का रिजल्ट आ गया था। तूलिका फिर प्रथम थी और आदित्य द्वितीय। हालांकि अंतर कम कर पाया था आदित्य। तूलिका के लिए ना तो ये खुशी और ना ही दुःख का विषय था।
आदित्य थोड़ा क्षुब्ध था खुद से। उसे लगा ये प्यार-व्यार बेकार है। उसने पढ़ा था अपनी माँ के पास आने वाली पत्रिका सरिता में कि किशोरावस्था में होने वाला प्यार आकर्षण मात्र होता है ये सच्चा प्यार नहीं होता। आदित्य मानता था कि किताबों में लिखी बातें सच होती हैं।
उस वक़्त प्रेम करने वाले प्रेम पत्र लिखा करते थे। मोबाइल फ़ोन जो नहीं थे। जो बातें बोली नहीं जा सकती थीँ लिख दी जाती थीँ। इन प्रेम पत्रों को किताबों के बीच गुलाब की पंखुड़ियों के साथ रखा जाता चूम कर।
तूलिका आदित्य के प्रेमपत्रों को कई-कई बार पढ़ती। मानों शब्द आदित्य के दिल को दिखाने वाले छोटे-छोटे झरोखे हों।

आदित्य के एक प्रेम पत्र ने पहली बार उसे स्त्री वाली असुरक्षा का बोध कराया था।
लंबे प्रेम पत्र का सार ये था कि,
"प्रिय तूलिका तुम मेरे घर की स्थिति जानती हो मुझे पहले प्रयास में ही आई आई टी निकालना होगा। तुम कम पढ़ कर भी ज़्यादा मार्क्स ला सकती हो लेकिन मैं नहीं। बारहवीं में मैं पढ़ना चाहता हूँ, प्यार-व्यार नहीं। वैसे भी ये सिर्फ हमारे बीच आकर्षण मात्र है जिसे तुम और मैं प्यार समझ बैठे हैं। हमारे इस रिश्ते का कोई भविष्य नहीं। क्योंकि मुझे कम से कम नौ वर्ष लगेंगे कुछ बनने में। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरी प्रतीक्षा करो या अपनी भविष्य की योजनाएं बदलो। वैसे भी मैं शादी कभी किसी से नहीं करूँगा। तुम्हारा आदि।"

पत्र पढ़ कर इस रिश्ते का पहला आँसू टपका था पत्र पर और 'तुम्हारा' मिट गया था सिर्फ 'आदि' रह गया था। हाँ वो आदित्य को आदि ही बुलाती थी। प्यार करने वाले पहला काम यही करते हैं, नामों को छोटा कर देना।

तूलिका ने सिर्फ इतना लिखा था जवाब में।
"प्रिय आदि,
मेरा प्यार तुम्हारी पढ़ाई का अवरोध कैसे ? तुम्हारे भविष्य का विरोधाभास कैसे ?

मेरा प्यार आकर्षण है या प्यार है ये कैसे तय होगा ? कौन तय करेगा ? प्यार और आकर्षण का फर्क और परिभाषा भी बता देते आदि।
हमेशा तुम्हारी
तूलिका।"

आदित्य अब बदला-बदला सा था। पढ़ाई में ध्यानमग्न । तूलिका से बात करता लेकिन सिर्फ काम की। तूलिका उसके प्रैक्टिकल नोट डायग्राम वगैरह बना देती।
बारहवीं का एक साल यूँ ही कट गया। तूलिका का मन इस बात से ही डूब जाता कि अब आदि दिख पायेगा भी या नहीं। क्या बारहवीं जीवन भर नहीं चल सकती.....।
आखिर बारहवीं का रिजल्ट आ ही गया। आदित्य ने न सिर्फ प्रथम स्थान बल्कि मेरिट में भी जगह बनाई थी। तूलिका इस बार काफी पीछे रह गयी थी। लेकिन तूलिका के मन में एक अजीब-सी संतुष्टि थी।
फिर आदि आई आई टी की कोचिंग के लिए भोपाल चला गया।
तूलिका को पचमढ़ी की सुकून देने वाली खामोशियाँ सुकून न लग कर सन्नाटे का आभास देतीं। फूलों और पत्तियों पर जमी ओंस की बूंदें मानों प्रकृति भी रो रही हो साथ-साथ।
उसने कुछ पत्र भी लिखे लेकिन आदि ने जवाब नहीं दिया।
उसे उसका लक्ष्य जो हासिल करना था। तूलिका के मन में आदि की यादें थीं विरह था किन्तु कड़वाहट नहीं थी। वो जानती थी अपनी जगह वो भी ठीक है।
आखिर आदि आई.आई.टी. में चयनित हो गया था। तूलिका ने मंदिर में प्रसाद चढ़ाया था। बहुत खुश थी। आँसू भी थे खुशी भी थी।

आखिर आदि चला गया था दिल्ली आई.आई.टी.। कुछ देर की औपचारिक मुलाकात करके। तूलिका से कह कर गया था तुम भी अच्छे से पढ़ो और आगे बढ़ो। घर के बाहर गेट पर हाथ रखे वो सुनती रही थी बस डबडबायी आँखों से। आदि ने आज पहली बार हाथों पर हाथ रखा था। गेट पर रखे हाथ और वो पल वहीं जम जाना चाहते थे। लेकिन आदि चला गया था। वो वहीं खड़ी रह गयी थी अकेले बहुत देर तक।
डॉक्टर तूलिका महापात्रा एक स्मार्ट लंबे-लंबे बालों वाली, साड़ी और सफ़ेद कोट में, डबडबाई आँखों से उसे देख रहीँ थीं। आँसू किसी हठी बच्चे की तरह बाहर निकलने को आतुर थे।

डॉक्टर तूलिका ने सामने बैठे उस शख्स से कहा आदि तुम ?????!!!
इतने सालों बाद ??
सामने बैठा आदित्य मिश्रा बेहद कमज़ोर, बीमार और हारा हुआ लग रहा था। तूलिका के अलावा शायद ही कोई और उसे पहचान पाता 27 सालों बाद।
उसने कहा तूलिका मुझे कैंसर है। जब कैंसर हुआ तो बहुतों ने सलाह दी डॉक्टर तूलिका महापात्रा सीनियर ओंकोलॉजिस्ट एम्स को दिखाने की। गूगल पर सर्च किया तो भी तुम्हारे अवाड्र्स और शोध पत्रों की भरमार दिखी। तुम्हें इतनी बड़ी डॉक्टर के रूप में देख कर बहुत अच्छा लगा।

तुम्हारा सरनेम नहीं बदला ?
तूलिका अभी डॉक्टर के रूप में थी और व्यक्तिगत बातें चाह कर भी नहीं करना चाहती थी।
फिर भी उसने कहा हाँ नहीं बदला।
"लेकिन क्यों तूलिका ?"
"कैसे बदलता तुम छोड़ कर चले जो गए थे।"
वो चिकित्सक की अपनी ज़िम्मेदारी पर तुरंत लौट आयी थी। और पूछा कैंसर कब पता चला। अपने पेपर्स लाये हो ?
तूलिका ये मेरे साथ ही क्यों हुआ ? तुम्हें छोड़ देने की सजा है न ?
"देखो आदि बीमारियाँ तकलीफ़देह होती हैं लेकिन उनमें एक अच्छी बात भी होती है कि वो पक्षपात नहीं करतीं। रेंडमली डिस्ट्रीब्यूटेड होती हैं। न अमीर देखती हैं न गरीब, न ज़्यादा पढ़ा लिखा, न कम। कैंसर अकेले तुम्हें नहीं हुआ। बाहर मरीजों की भीड़ देखो। ये मुझे भी हो सकता था।"
"तुम उस वक़्त किशोर थे जो ठीक लगा तुमने वही किया। अपने भविष्य की वजह से तुमने मुझे छोड़ा था वो भी बताकर। तुम अच्छे लड़के थे। धोखा भी दे सकते थे। रही बात तुम्हें कैंसर की तो इस कहानी का दुःख भरा अंत मैं नहीं होने दूँगी।"
उसे लगा अब वो ठीक हो जायेगा। तूलिका में उसने वही दृढ़ निश्चय और लगन देख ली थी जिसे उसने स्कूल के समय देखा था। पढ़ाई में भी और प्यार में भी।

तूलिका ने तुरंत अपने जूनियर्स को निर्देश दिए और आदित्य को अपना रिलेटिव बता कर प्राइवेट वार्ड में भर्ती करवाया।

आदित्य जिसने खुद भी शादी नहीं की थी। क्योंकि उसे शादी कभी करनी ही नहीं थी। उसने अपने माँ और पापा को लड़ते ही देखा था हमेशा। आज बहुत खुश था जिस तरह तूलिका ने उसे माफ़ कर उसकी केयर की थी। लेकिन उसे ये तो पता ही था कि जिस हालत में अब वो था और जैसा वो अब दिख रहा था कमज़ोर, गंजा..... कोई लड़की उसे पसंद नहीं करती। पर कहीं न कहीं मन में एक उम्मीद की किरण थी कि शायद तूलिका अब भी प्यार करती हो.....
उसकी रात इसी उधेड़ बुन में बीती थी...
अगले दिन सुबह दस बजे आदित्य को प्राइवेट रूम में किसी ने एक बड़ा-सा पैकेट दिया। उसे जब खोल कर देखा उसने तो बहुत दिनों बाद हँसा था।
पैकेट में घुंघराले बालों वाला एक विग था और एक छोटी-सी कांच की सीलबंद शीशी रखी थी जिसमें रखे थे 27 साल पुराने वही भुने चने के दाने जिन्हें तूलिका हाथों में दबाकर चली गयी थी जीव विज्ञान की कक्षा में।

एक छोटी-सी चिट्ठी में लिखा था...
ये विग लगाकर फिर से मेरे आदि बन जाना मैं आऊँगी काम ख़त्म करके मिलने। पूछूंगी प्यार और आकर्षण का फर्क। और हाँ ये चने के दाने अब भी उतने ही हैं जितने थे पहले। मेरे प्यार की तरह।

तुम्हारी
तूलिका।

।। आधी परी ।।

(सच्ची घटना पर आधारित)

वो पचास वर्ष की हो गयी होगी लगभग। इतना प्यार और देखभाल उसे पहले कभी नहीं मिली थी।
आज उसे अच्छी-सी टेबल पर भरपूर थाली, फल, सलाद और मिठाई के साथ दी गयी थी।
ललित पहली बार उसके लिए नया सलवार सूट लाया था, और एक गाउन भी। वर्ना कबसे तो वो बस उतरन ही पहनती आयी थी। बस पिता ही थे जो उसे गोदी उठाते, नई फ़्रॉक लाते और मिठाई खिलाते थे।
बड़ा अज़ीब था सबकुछ। वो आदी नहीं थी अच्छे व्यवहार की। पिछले तीन दिनों से किसी ने भी उसे झिड़का और दुत्कारा नहीं था।

हाँ वो थोड़ी मंद बुद्धि थी। चीज़ों का बहुत विश्लेषण नहीं कर सकती थी। नयी चीज़ें याद करना भी मुश्किल था, बोलने में भी तुतलाती और अटकती थी। लेकिन बीते अच्छे और बुरे पल उसे याद होते थे हमेशा। शायद इन पलों को दिल सहेजता है दिमाग नहीं इसलिए।
और मस्तिष्क कमज़ोर था उसका दिल, भावनाएं, हँसी, खुशी, सम्मान, अपमान, प्यार, दुत्कार इन सबकी अनुभूति तो थी ही उसे।
उसे वैसे परिष्कृत हाव-भाव नहीं आते थे जैसे सबके थे लेकिन वो समझ सकती थी औरों के हाव भाव और बातों के पीछे छिपे प्रेम, घृणा और दया को भी।

वो भरी थाली को देखती रही, हर रोज़ की तरह ही उसे माँ की बातें अब भी याद आतीं।
सम्मान, प्यार, देखरेख की अब उसे ज़रुरत नहीं थी। जब बरसों तक कोई चीज़ जिसके हम हक़दार हों न मिले तो प्रकृति उससे विरक्ति पैदा कर देती है।
उसे अब वही विरक्ति थी।
इन्हीं विरक्त, शून्य को तलाशती आँखों में उसके बीते हुए पल घूम रहे थे।

पिता उसके लिए वही फ़्रॉक और मिठाई लाए थे। सब कहते थे वो छह वर्ष की ढोर है।
वो रंग पहचानना तो उस वक़्त तक भी नहीं सीखी थी लेकिन पिता का प्यार वो पहचानती थी। ये फ़्रॉक उसी प्यार से रंगी थी।
उसके कदम लड़खड़ाते थे, कुछ ही वाक्य लड़खड़ाते हुये बोलती थी। मुँह खुला और लार बहाती रहती थी।
वो अपनी सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्य से दौड़ते लड़खड़ाते फ़्रॉक तक आयी थी।
ताली बजाई थी, खिलखिलाई थी।
तभी माँ ने फ़्रॉक को उठा कर दूर फेंक दिया था।
"कुलक्षिणी, बोदा, बड़ी फ़्रॉक पहनेगी।
लार बहाना तो बंद कर ले।
गधी से न तो बोलना आता न तमीज़।"
वो सहम गयी थी।

पापा ने उसके लिए लड़ाई भी की थी माँ से और उसे गले से चिपका कर आँसू भी बहाये थे। माफ़ कर दो मुझे जैसा भी कुछ कहा था।

बड़े होते-होते उसे अपनी कहानी पता चल ही गई थी कि आखिर वो ऐसी क्यों है। छोटे भाई ललित जैसी सुन्दर, दौड़ सकने, साइकिल चला सकने, अच्छे से बोल सकने और पढ़ाई कर सकने लायक नहीं।
उसकी कहानी उसे इसलिए पता चली थी क्योंकि जो भी घर में आता उसे देखते ही पहला प्रश्न ये पूछता, "क्या हुआ था इसे ?"
"क्या ये मंदबुद्धि है ?"
"एक तो लड़की जात ऊपर से ऐसी। क्या होगा च् च् च्....."
उनकी सहानुभूति अवचेतन में छुपी खुशी-सी होती, मानो दिल कहना चाह रहा हो चलो हम और हमारे बच्चे बच गए प्रकृति के इस प्रकोप से।
पिछले जन्म के पाप के विषय में भी चर्चाएं शुरू हो जातीं।
और जवाब में माँ विस्तार से हर बार बताती।
"इसकी महतारी तो मर गई जनम के समय लेकिन हमारे सर पर इसे पटक गयी।
बोलते हैं देर से रोई थी तो दिमाग को ऑक्सीजन कम
हो गया। उससे ऐसी पगला गयी।"
उसके देर से रोने की सज़ा जीवनभर के आँसू होने वाले थे।
कितनी ही बार माँ कहती, "काहे जनम लिया तूने। अपनी माँ के साथ तब ही नहीं मर सकती थी।
आखिर ऐसी ज़िंदगी का मतलब ही क्या। क्यों लेते हैं जन्म ऐसे बच्चे ?"
हाँ, उसकी माँ की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही पापा, माँ को ले आये थे।
आखिर लाये वो उन्हें उसके लिए ही थे। आखिर कैसे पालते ?
अकेली माएँ तो बच्चे पाल लेती हैं लेकिन अकेले पिता नहीं। प्रकृति ने बड़ा कमज़ोर बनाया है इस मामले में पुरुष को।
माँ एक साल तक तो ठीक रही, लेकिन उसके तीन वर्ष के होते-होते ललित आ गया था उनकी गोद में।
अब दो बच्चों को पालना उस पर भी एक बच्ची ऐसी।
मंदबुद्धि। अब भी बिस्तर पर सबकुछ करने वाली।
कटोरी में खाना दो तो पूरे फर्श में फैला देने वाली।
और माँ बदलने लगी।
वो जितना ललित को प्यार करती उतना ही उसे दुत्कारती।
माँ को लगता वो अड़ंगा है ललित की परवरिश में।
लेकिन उसे तो ललित बड़ा प्यारा लगता।
उसका पहला खिलौना। मोटा-सा, गोरा-गोरा।
जब लड़खड़ा कर चलती तब ललित घुटने के बल चलता।
वो उसकी तरफ बॉल लुढ़काता तो वो खिलखिलाती।

धीरे-धीरे दोनों बड़े होने लगे। ललित धीमे और वो बहुत धीमे।
ललित प्यार से पल रहा था और वो दुत्कार से।
ललित हालाँकि उसे दीदी ही बोलता। प्यार करता, रक्षा करता। उसका खिलौना बड़ा हो गया था और वो छोटी ही रह गयी थी। ललित अब स्कूल और बाहर दोस्तों के साथ ज़्यादा खेलता। वो पुराने हो चुके खिलौने-सी बैठी रहती घर में।

पापा ने उसका दिमाग बढ़ाने के लिये एक पज़ल-सा खिलौना ला कर दिया था। आधा टुकड़ा ललित को और आधा उसे दिया था। दोनों को मिलाने पर एक परी बन जाती थी। वो उसे शुरू में बहुत मुश्किल से जोड़ पाती थी, ललित तुरंत। लेकिन धीरे-धीरे वो भी सीख गयी थी आसानी से जोड़ना। उस पज़ल से दिमाग बढ़ा था कि नहीं ये तो नहीं पता लेकिन उसे खुद वो ललित के बिना अधूरी लगने लगी थी। ललित का आधा टुकड़ा ही उसे सम्पूर्ण करता।
लेकिन एक दिन ललित ने आधी पज़ल गुमा दी थी।
वो गुमसुम हो गयी थी। जैसे टूट गयी हो खुद। आधी परी।

स्कूल भेजने की कोशिश की गयी थी उसे भी। लेकिन वो एक अलग दुनिया थी उसके लिए। दो दिन भी नहीं रह पाई थी वहाँ।
हाँ ललित ने ही नाम लिखना सिखा दिया था। वो दिन भर अपना नाम लिखती रहती।
ललित से उसने एक बार पूछा था लड़खड़ाती ज़ुबान से,
"भाई मंदबुद्धि कैसे लिखते हैं।"

ललित का जन्मदिन मनाया जाता, उसे संगीत पसंद था, अपने कमरे में थिरकती ताली बजा-बजा कर, लेकिन जन्मदिन में शामिल होने की अनुमति नहीं थी उसे। माँ को उसे चिढ़ाये जाने और शर्म का अहसास होता।
उसके सुकून के पल पापा के आने पर होते। जब पापा दोनों को गोदी उठाते।
ललित उसे कितना प्यार करता है उसने तब जाना था जब वो एकबार बाहर आ गई थी, वो क्रिकेट खेल रहा था।
और एक बच्चे ने कह दिया था, "तेरी बहन पागल है।"
और ललित भिड़ गया था उससे।
अपने से बड़े लड़के से।
उसे खरोंचें आयी थीं और माँ से दोनों को बहुत डाँट पड़ी थी।
मुझे कहीं ज़्यादा।
माँ ने कहा था,"पगलिया को पागल नहीं कहेंगे तो क्या कहेंगे लोग। बुचड़ी क्यों गयी थी बाहर नाक कटाने ?
और मेरा बाहर निकलना बिल्कुल बंद करवा दिया था।"
और ऐसे ही उसका बचपन बीता था।

उसकी जवानी न तो आईनों, कपड़ों, मेकअप के साथ थी न कॉलेज, कैंटीन, फिल्मों में।
क्या पता उसे लड़के पसंद आते थे भी या नहीं। क्या प्रेम की आकांक्षा इन्हें भी होती होगी ?

होती भी हो तो क्या, प्यार पाने के अधिकार तो ये बच्चे तब ही खो चुके होते हैं जब ये जी जाते हैं, मरते-मरते।
जवानी में उसपर सबके सामने आने पर पूरे पहरे लगा दिए गए थे।
ललित की शादी के समय उसने सजी-धजी खूबसूरत दुल्हन देखी थी, सब कित्ती सुन्दर है, कित्ती प्यारी है बोल रहे थे।
और तब ही वो खुद भी गाढ़ी फ़ैली हुई लिपस्टिक पोत आई थी सबके सामने।
सब उसे देख कर खूब हँसे थे।
वो रुक कर पहले उन्हें हँसते देख रही थी। उसका छोटा-सा दिमाग इस हँसी के पीछे के मतलब को प्रोसेस कर रहा था। उसे लगा था लिपस्टिक के बाद उसे भी कहा जायेगा कित्ती सुन्दर लग रही है, लेकिन सब हँसे थे।
जब छोटे दिमाग ने प्रोसेस कर लिया तो वो भी हँसी थी थोड़ा शर्माकर।
ललित की दुल्हन अच्छी थी। कहीं जॉब करती थी।
अच्छी लेकिन बहुत व्यस्त। उससे वो घृणा वाले शब्द उसने कभी नहीं कहे थे। लेकिन सच तो ये है कि उसने कभी कुछ कहा ही नहीं था। वो कोने में रखा स्टूल थी उसके लिए। धूल लगा स्टूल जिसे छूने से हाथ गंदे हो जाते।
ललित भी व्यस्त होता चला गया।
अब उससे दुर्व्यवहार तो कोई नहीं करता था। माँ भी नहीं लेकिन उपेक्षा खुद भी तो सजा ही होती है।
अकेली कोने में बैठी, खिड़की से देखती रहती बाहर बच्चों को खेलते हुए।।
बचपन में सहानुभूति दिखाने वाली आवाज़ें भी धीरे-धीरे ख़त्म हो गयी थीं।
और यूँ ही जवानी भी कट गयी थी।
सच तो पूछती थी माँ आखिर तू क्यों बच गयी। तू क्यों न मर गयी।
उद्देश्यहीन, अनुपयोगी जीवन। बस खाना, जागना और सोना यह चक्र चलते पचास वर्ष हो गए थे और आज अचानक उसे सम्मान और अच्छा खाना मिला था।
माँ ने अब कोसना न के बराबर कर दिया था, काफी बूढ़ी और कमज़ोर जो हो गयी थीं।
पिता जब नहीं रहे, वो रोई नहीं थी। क्योंकि उसका वही छोटा-सा दिमाग, प्रोसेस नहीं कर पाया था मौत और उसके मतलब को।
बहुत दिनों तक अब भी वो पहले की ही तरह उनकी आवाज़ की प्रतीक्षा करती रोज़ शाम।

थोड़ा-सा खाना ख़त्म कर वो बैठी ही थी कि माँ पास आयी। बूढ़ी, लेकिन अब भी दिमाग वैसा ही तेज़।
पहली बार शायद नाम लिया था माँ ने, वरना उसका तो नाम ही मंदबुद्धि रख दिया था माँ ने।
पिछले एक हफ्ते से फ़ैली अज़ीब मनहूसियत और उस पर उसकी ये देखभाल। पुराने खिलौने को जैसे किसी ने झाड़-पोंछ कर फिर से सजा दिया था उजड़े मकान में।
उसकी इस देख रेख के पीछे कहीं, कुछ छुपा था। वो अहसास कर सकती थी। बेचैनी, असमंजस, कशमकश जैसे शब्द उसे कहाँ पता थे, लेकिन ये थे तो उसी की भीतर और इस

घर की दीवारों के भीतर।
सबके बुझे चेहरे, ऊपरी मुस्कराहट तले ढंके थे।
आखिर अब उसे समझ आने ही वाला था।
माँ सर पर हाथ रख बोली थी, "बेटा मैं जीवन भर तुझे कहती रही तू क्यों जी गयी। क्यों मर न गयी।"
आज समझ आया मुझसे कितना बड़ा पाप हुआ है।
चल डॉक्टर के पास।
ललित, बहू और माँ तीनों उसे लेकर डॉक्टर के पास गए थे।
डॉक्टर कौशल एक जाने माने कैंसर रोग विशेषज्ञ थे।
उन्होंने मुस्कुरा कर कहा, "अच्छा ! ले आये आप इन्हें।
ये बहन हैं आपकी ?"
"ठीक है फिर हम कोशिश कर सकते हैं।"
माँ ने पूछा था, "डॉक्टर ललित ठीक तो हो जायेगा न।
और हमें भी थोड़ा-सा समझा दें ये क्या बीमारी है।"
डॉक्टर ने कहा था,
"माँ जी क्रोनिक माइलॉयड ल्युकेमिया नाम का ब्लड कैंसर है ललित को।
ये धीमे-धीमे आगे बढ़ने वाला कैंसर है।
बोन मेरो ट्रांसप्लांटेशन ही एक मात्र परमानेंट उपचार है।
हालाँकि बोन मेरो ट्रांसप्लांट में दिक्कत ये है कि ये मैच होना चाहिए साथ ही कुछ खतरा भी होता है।
बोन मेरो मैच होने की सम्भावना भाई-बहन में ज़्यादा होती है और ललित के केस में तो और किसी से लिया ही नहीं जा सकता क्योंकि आप की उम्र ज़्यादा है और आनुवंशिक रूप से कोई और करीबी संबंधी नहीं है।
ललित ने बताया था एक ही बहन है तो मैंने कहा कोशिश कर लेते हैं।"
"लेकिन हाँ, डोनर की सहमति आवश्यक है मिलान के पहले।"
और उससे डॉक्टर ने कहा था, "बोनमेरो की जाँच में थोड़ा दर्द होगा आपको, क्या आप करवाओगी ?"
उसके उसी छोटे से दिमाग ने बस इतना प्रोसेस किया था इस बार कि इन्हें ललित के लिए मुझसे कुछ चाहिए, कुछ ऐसा कि मुझे दर्द होगा।
वो उत्तर में बस हँसी थी।

दो दिन बाद बोनमेरो मैच हो गया था,
अस्पताल के सहमति पत्र में उसने वही उबड़-खाबड़ हस्ताक्षर कर दिए थे जो ललित ने सिखाये थे। उसे ललित से तब ही बहुत प्यार हो गया था जब उसे खरोंचें लगीं थीं लड़ाई में। वो आधी परी को छुपाये हुए थी बायीं मुट्ठी में। आधी परी का बोनमैरो ललित में मिलकर उसे पूरा बना रहा था।
वो क्यों मर न गयी तब ही ये उसको और माँ को समझ आ गया था।

।। पासवर्ड ।।

2001। ये वो समय था जब नोकिया के बड़े से मोबाइल फोन स्टेटस सिंबल बनना शुरू हुए थे। उस समय किसी को ये नहीं पता था कि छोटी-सी ये मशीन अगले दस वर्षों में सारे रिश्तों को अपने छोटे से स्क्रीन में समेट लेगी। भावनाओं को व्यक्त करने का अधिकार चेहरों से छिन कर स्माइली को मिलता चला जायेगा।
यही वो समय था जब नए-नए साइबर कैफ़े खुलते जा रहे थे। और लड़के-लड़कियों की हनी सिंह के गानों से पहले वाली पीढ़ी तैयार हो रही थी।
लोगों के ईमेल अकाउंट और पासवर्ड से पहली मुलाकात होना शुरू हुई थी।
आकाश, विजय और नितिन एम.बी.बी.एस. तृतीय वर्ष के छात्र।
तीनों में प्रगाढ़ दोस्ती । एम.बी.बी.एस. के तृतीय वर्ष तक आते-आते अधिकतर दोस्तियाँ जीवन भर के लिए हो जातीं। बैचमेट होने और दोस्त होने के बीच की धुंधली लकीर साफ़ होती जाती।
मेडिकल के प्रथम वर्ष में हर दस छात्र-छात्राओं को एक cadaver (मुर्दा) दिया जाता। एक वर्ष तक डिसेक्शन हॉल में एक लंबी टेबल पर दो घंटे तक रोज़ डिसेक्शन किया जाता खडूस प्रोफेसर के साथ। फॉर्मेलिन की गंध हर चिकित्सक के तन-मन में जीवन भर के लिए घोलने वाले डिसेक्शन हॉल और cadaver।
कभी-कभी तो ये मुर्दा उनके सपनों में भी आता। लेकिन डरावना बन कर नहीं। दोस्त या टीचर बन कर। डरावना बन कर तो खडूस प्रोफेसर आता।
वो गुमनाम मृत व्यक्ति नए चिकत्सकों को जन्म दे रहा था।
एनाटोमी के सभी प्रोफेसर्स के कुछ ना कुछ नाम पीढ़ियों से चले आ रहे होते। ये नाम बेहद अजीब थे कौआ, मामा, ऑटो मेम वगैरह। हर नाम के पीछे एक लॉजिक या कहानी जरूर होती।
जैसे ऑटो मेम जब चलतीं तो दो जूनियर प्रोफेसर हमेशा पीछे आजू-बाजू चल कर एक तिकोना बना लेते। तीनों को मिला कर ऑटो की आकृति जन्म लेती।
साथ ही मृत टेबल पर जनम रही थी कुछ दोस्तियाँ कुछ अफेयर कुछ ट्रायंगल और कुछ भावी शादियाँ।
कभी-कभी ये प्रश्न उनके मन में आता कि ये कभी ना हँसने वाले खडूस प्रोफेसर्स भी क्या इन सब से गुजरे होंगे।
आकाश हँसमुख और थोड़ा बदमाश था । हमेशा नीली जीन्स सफ़ेद शर्ट पहना करता। अब तक दो बैच मेट एक जूनियर और एक सीनियर लड़की को प्रोपोज़ कर चूका था। सभी जगह से उसे रिजेक्शन वाला वही शार्ट फॉर्म मिला था। दोस्त ऊपर से कितनी भी सहानुभूति दिखाएँ ये उनका दिल ही जानता था कि कितना सकूं मिलता जब कोई दोस्त ये रिजेक्शन वाला शार्ट फॉर्म खा कर आता। इस रिजेक्शन वाले शॉर्ट फॉर्म का मतलब लड़कियों के हॉस्टल में होता 'गाल पे लप्पड़'। लड़कों के हॉस्टल में कुछ अलग ही।
कभी-कभी तो हँसी उसके सामने ही सारे अवरोध तोड़ कर बहने लगती पूरे आवेग में। पेट पकड़ कर लोट-पोट हो कर। सच में दोस्तों के लिए ये खुशी के पल होते। उनका दिल ही

जानता था कि जब भी किसी दोस्त की 'सेटिंग' हो जाती तो दो नुकसान होते। छोटा नुकसान ये कि दोस्त गया और बड़ा ये कि लड़की भी गयी।
अपने बेस्ट फ्रेंड्स विजय और नितिन से वो ये चौथी बार सुन रहा था, "चल छोड़ ना यार तेरे लायक नहीं थी वो।"
और चारों लड़कियों से वो ये सुन कर आया था कि
"आकाश क्या हम अच्छे दोस्त हो सकते हैं"।
अच्छी लड़कियाँ जब भी किसी को अपने लायक नहीं समझतीं ऐसे ही कहती हैं, "क्या हम अच्छे दोस्त हो सकते हैं।" और फिर जिसने भी ये अच्छा दोस्त बनना स्वीकार कर लिया.....पढ़ने वाले खुद के अक्स और अनुभवों में इसे ढूंढ सकते हैं।
कॉलेज से कुछ दिन बंक कर तीनों ऊटी जाते हैं। आकाश का 'गम' भुलाने । दरअसल उन्हें अपनी खुशी जो सेलेब्रेट करनी थी। आकाश को लात पड़ने की।
विजय लंबा चौड़ा। सांवला। सीधे बालों वाला। उसे लड़कियों से मतलब नहीं होता वो कॉलेज में पढ़ने आया था। लेकिन उसके दोनों दोस्तों का मानना था कि, "साला ऊपरी दिखावा करता है।"
नितिन मासूम-सा सीधे चपटे बालों वाला गोरा और चश्मा लगाये रहने वाला था। कुछ लड़के देख कर ही पढ़ाकू लगते हैँ न नितिन वैसा ही लगता था। बोलता कम लेकिन सुनता और मुस्कुराता ज्यादा था।

सुबह-सुबह कुनूर से ऊटी के लिए तीनों टूरिस्ट बस में बैठते हैं। खूबसूरत सुहाना मौसम। हल्की ठंडी हवा। गालों को छूता कोहरा मानों बादल आये हों माँ की तरह गालों को खींच कर कहने कि खाने को रख दिया है बैग में, खा ही लेना। पहुँचते ही फोन करना। और न समाप्त होने वाली हिदायतें। जब माँएं छोड़ने आती हैं बच्चों को तो उनका प्यार हिदायतों के रूप में खूब बरसता है।
बस स्टैंड पर रंग-बिरंगे कपड़े पहने टूरिस्ट की चहल-पहल। छोटी दुकानों से कॉफी की महक साँसों से मिल तन-मन में घुलती हुई। तमिल और इंग्लिश के मिलन से वहाँ एक नयी भाषा का जन्म हुआ था जो कि बस कंडक्टर कह रहा था।
गहरे रंग और काली मूंछों वाले बस कंडक्टर के कान में एक सफ़ेद सिगरेट फंसी हुई थी। काला चश्मा आँखों की उस उम्मीद को ढंके हुए था जिससे उसने कंडक्टर से सुपरस्टार बनने की कहानियाँ अपने रोल मॉडल रजनीकांत की पढ़ी थीं।
सुहाना मौसम। दोस्तों का साथ। किताबों से दूर। खडूस प्रोफेसर्स के चेहरों से वास्ता नहीं। तीनों बेहद खुश थे।
दो सीटों वाली बस में विजय और नितिन एक साथ बैठ गए थे बायीं ओर की सीटों पर। जबकि समानांतर दायें ओर की एक सीट पर आकाश बैठ गया। उसे प्रकृति के नज़ारे देखने थे इसलिए उसने कह दिया था कि वो खिड़की की ओर ही बैठेगा। वो खिड़की वाली सीट पर अलग बैठा था।
बाजू वाली सीट प्रश्न पत्र की तरह ही अनिश्चित थी..... कब कौन-सा प्रश्न आ जाये ????
तभी एक सुहानी खुशबू का झोंका बस में आया। ये खुशबू कॉफी से कहीं अधिक सुहानी थी।

प्रकृति अब तक उन्हें सिखा चुकी थी इसे पहचानना।
तीनों ने लगभग एक साथ पलट कर देखा। वो खुशबू वैसी ही थी जैसी कि उनके दिमाग चाहते थे। गोरी। लंबे-लंबे बाल। बड़ी-बड़ी सफ़ेद आँखें हल्का काजल लगी हुईं। आत्मविश्वास टपकता हुआ। 'हर लड़की' की तरह उसे भी पता था कि वो बहुत सुन्दर है। लाल रंग का सलवार सूट। लड़के सिर्फ कुछ ही रंग जानते हैं। शायद वो मैरून था। मैचिंग चुन्नी। हील वाली सैंडिल की खट-खट आवाज़ उनकी सीट की तरफ आते जा रही थी।
वो आकाश के पास वाली सीट पर आ कर रुकी। नितिन और विजय को तो जैसे ऊटी अब काटने वाला था। कॉफी की खुशबू कड़वी होती जा रही थी।
विजय बोला, "साला इसलिए अलग बैठा था।"
सीट के पास आ कर अपना बड़ा-सा बैग रख कर आकाश से बोली, "एक्सक्यूज़ मी क्या आप मेरा बैग ऊपर रख देंगे।"
सुंदरता का आत्मविश्वास लड़कों से काफी काम ले सकता है।
आकाश का दिल जैसे त्रिवेंद्रम का कोवल्लम बीच बन गया हो। धड़कनें तेज़ लहरों की तरह सीने से टकरा रही थीं। दिमाग ने कहा ये एम.बी.बी.एस. की लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं। नॉन मेडिको ही अच्छी। अंगूर खट्टे हैं वाली कहावत शायद दुनिया की सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाली कहावत हो।
आकाश उठा और बैग को रख कर बोला, "इट्स माय प्लेज़र।"
विजय और नितिन उसकी 'विनम्रता' और 'सोफेस्टिकेशन'
पर पैनी नज़र रखे हुए थे।
फिर वो बैठ गयी थी। कितने ही कंडक्टर रजनीकांत बनने की आस में सिगरेट के पैकेट्स के अम्बार लगा देते। वैसे ही कितने ही लड़के आजीवन हर यात्रा के पहले ऐसी ही कातर आस लगाते जैसी कि आकाश के बाजु वाली सीट पर थी।
कुछ देर बैठने के बाद उसने बड़ी ही मीठी आवाज़ में पूछा, "क्या मैं खिड़की वाली सीट ले सकती हूँ। प्लीज।"
"ये लड़कियाँ न जाने कैसे ताड़ जातीं ऐसे लड़कों को जो तुरंत कुदरत के नज़ारे बलिदान करने उठ खड़े होते।" नितिन ने सोचा मन ही मन।
अब आकाश इस तरफ था और लड़की खिड़की की ओर।
इस घटना ने विजय के अंगार मन को ठंडक दी थी, "साला बस में एलान करके बैठा था कि खिड़की की तरफ मैं बैठूंगा।"
दोनों ने मुक्का दिखाया था उसे।
आखिर रजनीकांत कंडक्टर ने होठों से तीखी सीटी बजाकर बस को चलवा दिया था। ठंडी ठंडी हवा का झोंका बस की खुली खिड़कियों से अंदर आया था।
ऊटी के खूबसूरत घुमावदार रास्तों में वो खो-सी गयी थी।
घने हरे भरे जंगलों के बीच कभी-कभी पहाड़ो के बीच से निकलते झरने दिख जाते। किसी जादुई दुनिया की तरह। सुपाड़ी, ताड़ खजूर के लंबे-लंबे सीधे पेड़। प्रकृति ने जैसे स्केल से सीध मिलाई हो अपने कैनवास में रंग भरने।
उसकी लंबी लटें हवाओं में तैरकर बाजू में बैठे आकाश को छू लेतीं।

और खिड़की की अदला-बदली वसूल हो जाती।
उसकी भीनी खुशबू आकाश को उसके पास होने का खूबसूरत एहसास लगातार करवा रही थी।
एक बार उसने सोचा था, "यदि इस लड़की से मिलना ही था तो इन दो कमीनों को न लाया होता।"
उसके दिल ने कहा, "यार ये बस चलते रहे बस। यूँ ही कश्मीर तक चले या लाहौर तक चले बस चलते रहे।
शायद उसे नींद आ जाये और उसका सर मेरे कन्धों पर हो।"

आकाश ने पूछा....."आप अकेले ? तमिलनाडु की ही हैं क्या।"
"जी नहीं। मैं ऊटी में कुन्नूर में प्रोफेशनल फोटोग्राफी सीख रही हूँ। आज ऊटी की कुछ खूबसूरत पिक्चर्स लेना चाहती हूँ।""
अकेले!!!!?? आकाश तपाक से बोला।
"पूरे बैच को अलग-अलग जगह के फोटो शूट करने का टास्क मिला है। वैसे भी मुझे अकेले रहना पसंद है।"
आकाश के दिल का 'फ्लर्ट वाला चैम्बर' डुप्प से खुल गया था और उस चैम्बर ने दिमाग को डॉयलॉग्स देना शुरू कर दिए थे।
बोला, "जिस दिन अच्छा साथी मिला ये पसंद बदल जायेगी आपकी।"
"मेरा नाम आकाश है। मेडिकल स्टूडेंट हूँ।"
वो नाम बताती इसके पहले ही बोल पड़ा।
"लेट मी गेस योर नेम"
अब वो हँसी थी...., "कलाइयों को घुमाकर बोली कोई नाम कैसे गेस कर सकता है।"
आकाश बोला, "मुझे करने तो दो।"
....आपका नाम है खुशबू ?
वो हँसी ज़ोर से।, "वो क्यों ?"
"आपकी खुशबू इतनी प्यारी है।"
"जी नहीं मेरा ये नाम नहीं।"
"ओके तो आपका नाम होगा...रिमझिम क्योंकि आपकी हँसी रिमझिम सुन्दर बारिश-सी है।"
उसे आकाश के इस तरह बहाने से तारीफ करने पर हँसी आ रही थी।
"ये नाम भी नहीं ?"
"तो फिर पक्का चांदनी होगा। क्योंकि मैं आकाश हूँ और आप मेरे बाज़ू में बैठी हो।" उसकी इस शानदार शुरुआत में खलल डाला था चुप रहने वाले नितिन ने चिल्लाकर बोला....."इनका नाम है प्रीती।"
यस बिल्कुल ठीक वो आश्चर्य से बोली थी। आपको कैसे पता ?
नितिन ने उंगली दिखाई प्रीती के कैमरा कवर पर। जिसमें लिखा हुआ था। प्रीती एक डार्क पेन से।

आकाश को लगा था खिड़की से फैंक दो इस गधे को। मन में कहा गधे पढ़ तो मैंने भी लिया था।
लगभग दस बजे सुबह वे ऊटी लेक पहुँच चुके थे।
प्रीती ने अपना बड़ा-सा कैमेरा संभाला और पूरे मौहाल को बयां करती कुछ जीवंत तस्वीरें लीं।
टूरिस्ट की काफी चहल-पहल लेक एंट्रेंस के पहले ही थी। हल्की- हल्की धूप ने ठंडी हवाओं से मिलकर कर खुमारी वाला कॉकटेल बना लिया था।
रंग बिरंगे कपड़े, कैप, चश्मे और कैमरे वाले पर्यटक। बाँहों में बांह डाले 'मुग़ालते में जीते' नवविवाहित जोड़े।
तीनों बस से उतर कर एक छोटे से साफ सुथरे टी स्टाल पर गए।
आकाश ने प्रीती को भी साथ ले लिया था।
नीलगिरि के चाय बागानों की गर्म स्वादिष्ट चाय ने उन्हें तरोताज़ा कर दिया। दिमाग के दरवाज़े खोलती चाय।
तभी प्रीती सामने देख खिलखिला कर हँसी, तीनों ने देखा।
रजनीकांत कंडक्टर काला चश्मा लगाये बार-बार सिगरेट को हवा में उछालकर होठों से पकड़ता। लेकिन रजनीकांत की तरह सफल नहीं हो पाता।
प्रीती बोली, 'मस्त है यार ये इंसान।'
उसकी खिलखिलाहट देख आकाश के दिल का फ्लर्ट वाला चैम्बर डुप्प से खुला और कहा, "अब तो बस यही चाहिए यार"
विजय और नितिन इर्द गिर्द के नज़ारे और सुन्दर लड़कियों को देखने उठ खड़े हुए थे। लेक एंट्रेंस के बाहर खिलौनों, फूलों की दुकाने थीं। सुन्दर मोटू गब्दू बच्चे खूबसूरत घोड़ों पर बैठने की ज़िद कर रहे थे।

आकाश उठा और एक सुन्दर ताज़ा लाल गुलाब खरीद लाया। और प्रीती को राजकुमारों-सी अदा से दे कर बोला, "हम यहाँ नए हैं क्या आप हमारी गाईड बनेंगी।"
गुलाब हाथों में पकडे वो भी राजकुमारी-सी बोली
"अच्छा तो आप गाईड को रेड रोज़ देते हैं।"
फ़्लर्ट आकाश बोला...
"नहीं हम गाईड को नहीं रेड रोज़ को रेड रोज़ देते हैं।"
गुलाब के डंठल पर दो कांटे भी थे।
वो बोली, "लेकिन आपने तो कांटे वाला गुलाब दिया है।"
आकाश हँसा और कहा "वो दोनों कांटे विजय और नितिन हैं।" दोनों खिलखिलाते हैं। जब युवा लड़के और लड़की साथ हँसते हैं तो प्रकृति मौके बनाने लगती है उनके एक होने का।
उधर विजय ने नितिन से कहा, "देख साला लगा हुआ है पटाने। हम दोनों को तो भूल ही गया है।"
नितिन बोला, "अच्छा है न भाई, अब देखना उसको इम्प्रेस करने हर जगह यही खर्च करेगा।"

और सच में आकाश चारों के लिए एक बोट की टिकट खरीदता है।
सुन्दर बड़ी-सी झील में रंगबिरंगी बहुत सारी नावें खड़ी थीं।
चारों नाव में बैठ गए।
'गहरी नींद-सी शांत झील' के चारों ओर लंबे-लंबे यूकेलिप्टस के 'पीपिंग टॉम' पेड़ हज़ारों प्रेम कहानियों को सीने में दबाये थे।
विजय ने आकाश को कान में धीरे से कहा, "भाई तू तो जब-तब चांस मारता रहता है। मुझे पहली बार कोई पसंद आया है।"
आकाश बोला, "अबे भीख मांगना छोड़। खुल्ली प्रतियोगिता है जो ले जाये। और साले तू तो बड़ा लेक्चर देता था कि पढ़ने आया है।"
प्रीती ने कहा क्या खुसुर-फुसुर चल रही है।
नितिन बोला इन, "दोनों में प्यार भरी बातें ऐसे ही चलती हैं। कभी-कभी तो शक होता है मुझे दोनों पर।"
नितिन को वो कीड़ा बोलते थे। क्योंकि नितिन पढ़ता बहुत था। किताबी कीड़े का छोटा रूप सिर्फ कीड़ा।
दोनों एक साथ बोले, "अबे कीड़े चुप।"
हॉस्टल में ज़्यादा पढ़ने वालों को हिकारत से देखा जाता था। लड़के ये साबित करना चाहते कि हम बहुत कम पढ़ कर ज़्यादा मार्क्स ला सकते हैं।
प्रीती को विजय डिसेक्शन हॉल और कॉलेज की कुछ मज़ेदार बातें बताने लगा। तभी प्रीती ने पूछा, "अच्छा फर्स्ट इयर में तुम तीनों में से किसके मार्क्स ज्यादा आये ??"
आकाश और विजय दोनों तपाक से बोले 'मेरे'।
वो हँसी।
'दोनों के ज़्यादा ??'
कुछ झूठ बड़े ही क्यूट होते हैं। मासूम झूठ।
प्रीती ने देखा था, नितिन मुस्का रहा था चुपचाप। चश्मे के पीछे की आँखों से सरकता आत्मविश्वास। वो बैच का टॉपर था।
प्रीती ने कहा देखो मुझे तो शाम तक कुनूर लौटना होगा। तुम सब चाहो तो ऊटी का बॉटनिकल गार्डन और सबसे ऊंची हिल देख कर ऊटी के ही होटल में रुक सकते हो।
आकाश और विजय सन्न थे। इतनी जल्दी क्लाइमेक्स। इतनी जल्दी कहानी ख़त्म?????
आकाश फिर से फुसफुसाया विजय के कानों में, "भाई ले अब कहानी ख़त्म"
विजय बोला, "'तेरे लिए तो ऐसा कह कि एक 'और' कहानी ख़त्म"'। और विलेन-सी हँसी हँसा था वो।
आकाश बोला प्रीती से, "कुछ और प्लानिंग नहीं हो सकती। हमें अपना गाईड नहीं छोड़ना।"
प्रीती ने कहा, "ठीक है 2 बजे टॉय ट्रेन से कुनूर चलो। वो यूनेस्को हैरीटेज ट्रेन है। बेहद सुन्दर ट्रैक है। बाहर के नज़ारे बेहद सुन्दर हैं। सोलह लंबी अंधी सुरंग रास्ते में पड़ेंगी। सुरंग आने पर इतना घुप्प अँधेरा होता है कि लोग चिल्ला उठते हैं बच्चों की तरह। आप सबको मज़ा आएगा।"

घुप्प अँधेरा।।। और सुन्दर लड़की।।। हाहाहा मज़ा तो आएगा ही।।। विजय और आकाश में छुपे 'लड़कों वाले खलनायक' ने कहा था।
विजय धीरे से बोला नितिन से, "और कीड़े तेरे लिए ही तो बाहर के नज़ारे हैं हमारे लिए तो भीतर के।"
लेक से वो बाहर आ गए थे। रजनीकांत कंडक्टर बोला एंजोएड ?? सब ने कहा यस बहुत।
प्रीती ने कहा, "बॉटनिकल गार्डन घूम कर हम बस छोड़ देंगे और लंच के बाद दो बजे टॉय ट्रेन में बैठेंगे।"

एक रेस्टोरेंट में तीनों दक्षिण भारतीय खाने का लुत्फ़ लेते हैं। कटोरी को उलट कर कटोरी की ही आकृति के सफ़ेद चावल और चटपटा रसम नितिन को कुछ ज़्यादा ही पसंद आता है।

जहाँ सब चम्मच से खाते हैं वहीं विजय टेबल के इर्द-गिर्द बैठे दूसरे दक्षिण भारतीयों जैसे हाथों से खाता है बड़े-बड़े कौर।
प्रीती को उसका ये देशी अंदाज़ अच्छा लगता है।
जब बिल आता है तो नितिन, विजय को आँख मारता है। और फिर से आकाश ही बिल पे करता है।
बॉटनिकल गार्डन में प्रीती को कुछ बेहतरीन क्लोज़प्स मिले थे फूलों के, तितलियों के और रेयर पौधों के।
आकाश सेकंड क्लास की चार टिकट खरीदने के बाद कहता है, "कमीनों कभी तो तुम भी खरीद लिया करो।"
दोनों हँसते हैं बेशर्मों वाली हँसी।

टॉय ट्रेन भाप इंजन से चलने वाली नीली खूबसूरत और बचपन के सपनों-सी छुक-छुक रेल गाड़ी थी। स्लो मोशन में चलती हुई। सपनों की रेलगाड़ी और सपनों में ही परी एक खूबसूरत हरे-भरे से स्वर्ग में। आकाश सामने बर्थ पर बैठी उसी परी को देख रहा था। सलवार सूट वाली परी।
ट्रेन के बाहर छोटे-छोटे झरने, प्रीती के गालों को छूने और बालों को लहराने, दौड़ती आयी ठंडी हवा, हरे-भरे पेड़, छोटे-छोटे पहाड़ और हल्की धुंध भीतर के हॉर्मोन्स से मिल कर नशीला कॉकटेल बना रही थी।
चाय के हरे बागानों को देख दार्शनिक अंदाज़ में नितिन बोला, "ये वही पत्तियाँ हैं जिनकी चुस्कियों के साथ कितने ही प्यार शुरू होते हैं। कितने ही राष्ट्राध्यक्ष युद्ध टाल देते हैं। कितनी ही परीक्षाएं स्टूडेंट्स पार कर लेते हैं।"
विजय बोला, "भाई क्यों परीक्षा याद दिला रहा है।"
आखिर पहली अन्धेरी सुरंग आ ही जाती है। घुप्प अँधेरा ऐसा कि हाथ को हाथ न दिखे।
प्रीती के कहे अनुसार ही बच्चे तो बच्चे बड़े भी चिल्लाने लगते हैं उत्तेजना में। विजय भी चिल्लाया था। विजय का यूँ बच्चों-सा चिल्लाना, हाथों से बड़े कौर खाना, जीवन के सुन्दर पलों में विजय का समावेशित होना प्रीती को अच्छा लगा था ।
सुरंग बीत गयी थी। प्रीती के बाजू में बैठे आकाश को ये कसक रह गयी थी कि क्यों हाथ

नहीं रख दिया प्रीती के हाथों पर। लेकिन कॉलेज की पिछली चार असफलताएँ उसे नया प्रोजेक्ट हाथ में लेने से रोक रही थीं।
नितिन के दार्शनिक मस्तिष्क को ये नज़ारा जीवन-सा लगा था। उजियारे से अँधेरा फिर थोड़ा-सा धैर्य और फिर उजियारा।
विजय को खुरापात सूझ चुकी थी।
नितिन को उसने धीरे से चुपचाप एक कागज़ पर लिख कर कुछ दिया था।
और नितिन पढ़ कर तटस्थ बैठा रहा था।
अगली सुरंग फिर आयी। इस बार कम शोर हुआ था। इंसान बार-बार मिलती एक-सी खुशियों से खुश होना बंद होते जाते हैं।
सुरंग बीती थी और प्रीती के उजले से चेहरे पर कोहरे से जीत कर आयीं कुछ किरणें पड़ी थीं धूप की।
आकाश कुछ खोया-सा कुछ स्तब्ध था। और खिड़की की ओर देखता मंद-मंद मुस्काता-सा बैठा था। मानों बरसों दूर बैठी कोई मंज़िल पल भर में मिल गयी हो।
एक के बाद एक सुरंगें बीतती हैं और आकाश का चेहरा अलौकिक शांति में हो जैसे लगने लगता है।
छुक-छुक ट्रेन कुनूर स्टेशन पहुँचती है। तीनों उतरते हैं। आकाश को भाप इंजिन से निकलता धुआं विजय के दिल और..... से निकलता लगता है।
नितिन और विजय आकाश को बाजू में लेते हैं और पूछते हैं, "अबे बोल साले क्या हुआ। कोई तो चक्कर है।"
आकाश दोनों को चूमता है उत्तेजना में फिर कहता है,
"यार हो गयी सेटिंग । पहली पाँच सुरंग में तो वो हर बार हाथ रखती रही हाथ में और इसके बाद की सुरंग में किस कर दिया यार गाल पर।"
ये सुन नितिन और विजय हँसते-हँसते बैठ जाते हैं प्लेटफार्म पर। और फिर उसे वो छोटा-सा खुरापाती कागज़ देते हैं जिसमें लिखा था नितिन तू हर बार हाथ रखना और मै आकाश को गाल पर प्यारी-सी किस्सी दूँगा।
वो इसी वक़्त दोनों को पटरियों पर फेंकना चाहता था लेकिन प्रीती आ कर बोली,
"चलना नहीं है ?"
इंजिन का धीमा पड़ता धुआं उसके सपनों के जलने से बना था उसे लगा।
उन्हें कुछ देर में बिछड़ना था अब।

स्टेशन के बाहर बनी एक कैंटीन में तीनों जाते हैं।
विजय भाग कर जाता है और नीलगिरि की प्रसिद्द हाथ से बनी कुछ चॉकलेट्स ला कर देता है प्रीती को।
आकाश और विजय टेबल से उठते हैं गले में हाथ डाले कुछ दूर जा कर,
"अभी पूछ लेते हैं भाई। देर हुई तो न वो तेरी न वो मेरी।"
विजय कहता है,
"भाई यदि वो मेरी हो गयी तो दोस्ती में दरार नहीं पड़ेगी न।"

ऐसे प्रश्नों के जवाब में दोस्ती रामलीला के रावण से भी ज़्यादा लाऊड हो कर उत्तर देती।
"अबे अपनी दोस्ती के आगे ऐसी सौ लड़कियाँ जाएं भाड़ में।"
"आखिर दोनों टेबल पर पहुँचते हैं और नितिन से कहते हैं कीड़े बाहर ऑटो देख कर आ न।"
वो दोस्तों की मंशा समझ छोड़ देता है तीनों को।
आकाश कहता है, "प्रीती तुम्हारे साथ बिताये इस एक दिन ने हमें अपार खुशी दी। हम दोनों को ही तुम बहुत पसंद आईं।"
विजय सोचता है ये स्कोर कर रहा है और बात काट कहता है।
"तुम बेहद सुन्दर, हँसमुख और प्यारी हो। मैं दूर हुआ तो क्या हुआ क्या तुम मेरी बनोगी।"
एक ब्लंट व्यक्ति का ब्लंट प्रपोजल।
आकाश भी उसे आँखें फाड़े देख रहा था।
प्रीती ने पूछा, "क्या आकाश तुम भी ???"
आकाश ने मासूमियत से सर हिलाया। हाथ जोड़ कर कहा। प्लीज..... मेरे लिए... मेरी हो जाओ।
प्रीती बोली, "और नितिन को क्या हुआ। उसे भी ले आते।"
दोनों बोले, "कीड़े को किताबों से प्यार है। फूलों, पत्तियों और तितलियों से प्यार है।"
प्रीती ने कहा, "मुझे भी तुम सब के साथ बहुत मज़ा आया। और भरी कैंटीन में दो हैंडसम मेडिकल स्टूडेंट मुझे प्रोपोज़ कर रहे हैं। लेकिन तुम्हें यहाँ मैं कोई जवाब नहीं दे सकती। तमाशा हो जायेगा। साथ ही मेरा जवाब सिर्फ हाँ या न में नहीं हो सकता। मुझे लिखना होगा।"
"तो सुनो मैं एक नई याहू आई.डी. और एक पासवर्ड दे रही हूँ। एक घंटे में इस आई.डी. को बना कर अपना जवाब लिख दूँगी। तब तक के लिए बाय।"
आकाश एक बार फिर बिल पे करता है कैंटीन का और तीनों होटल आ जाते हैं।

जल्दी-जल्दी तैयार हो साइबर कैफ़े जाते हैं।
नितिन आराम करना चाहता था लेकिन जबरदस्ती लाते हैं उसे बोल कर कि भाई क्यों जल रहा है दोनों में से तेरे एक दोस्त की सेटिंग तो पक्का है।
आई.डी. और पासवर्ड डालते हैं। धीरे-धीरे साईट खुलती है जैसे कोई धीरे-धीरे छुरी चला रहा हो सीने में।
इतना धीरे कि विजय और आकाश दो बार टॉस कर लेते हैं कि प्रीती मेरी की तेरी । दोनों बार का टॉस आकाश जीतता है।
आखिर पूरा मेल खुल जाता है।
लिखा होता है।

"प्रिय दोस्तों
तुम तीनों बहुत प्यारे मज़ेदार और अच्छे लड़के हो।
आकाश बहुत विटी और केयरिंग है तो विजय ज़िंदादिल और दबंग। और हैंडसम तो दोनों ही हो।

लेकिन नितिन की बातों में गहराई है। किसी को प्रभावित करने की कोई बनावटी कोशिश नहीं। उसकी आँखों में मेरे प्रति आकर्षण देखा है मैंने। लेकिन शायद अपने दोस्तों के रस्ते नहीं आना चाहता।
हमेशा मुस्कुराता प्यारा भोला-सा चेहरा मेरे दिल में उतर गया। और देखो मुझे प्रोपोज़ करने वही नहीं आया जिसका प्रपोज़ल मैं वहीं कैंटीन में ही तमाशा बन कर भी स्वीकार लेती।
मुझे आजतक कीड़ों से डर लगता था लेकिन आपके कीड़े से मुझे प्यार है। वो तो कभी कहेगा नहीं आप दोनों उससे से कह देना। वैसे मुझे पता है मेरा मेल आप तीनों एक साथ न पढ़ो ये तो होगा नहीं।
और आप दोनों को दिल ही टूट गया टाइप इमोशनल ड्रामा करने की ज़रूरत नहीं। आप दोनों फ़्लर्ट को बस कोई भी लड़की चाहिए। मैं भाभी बनी तो बनवा दूँगी एक गर्लफ्रेंड।
प्रीती।"
"यार क्या दिमाग है इन लड़कियों का।", दोनों कहते हैं, "अबे कीड़े" और । टूट पड़ते हैं मारने नितिन को।

।। एक अलग प्रेम कहानी ।।

लखनऊ। मेडिकल कॉलेज। दो सौ किलोमीटर दूर गाँव से नेतराम पत्नी को बस में बैठा कर लाया था मेडिकल कॉलेज।
गाँव और घर में बोल कर आया था,
"गुप्ता डागडर बहुत बड़े हैं।
बड़े-बड़े केस बा तो सुलझा देवें।
नाड़ी पकड़ के पूरा मर्ज़ समझ लेवें।"
और वो ऐसा व्यर्थ में ही नहीं कह रहा था उसने ये बात बहुतों से सुनी थी।
किसी और के इलाज़ को जब लखनऊ गया था तब भी नेतराम ने उनका नाम सुना था। दिमाग के और लकवा के बड़े डॉक्टर।
घर से वो दो झोले और एक गठरी बना कर निकला था।
दोनों के दो जोड़ी कपड़े।
एक डब्बे में माँ ने तिल के लड्डू रख दिए थे।
रास्ते के लिए रोटी, नून, एक छोटी शीशी में तेल, कुछ प्याज़ रख ली थीं।
पाँच बरस की बिटिया मुनिया को दादी के पास छोड़ कर आना अच्छा तो नहीं लगा था दोनों को लेकिन फिर एक ही दिन की तो बात थी। बिटिया से कहा था, "तोरे लिए फराक लेने जा रये, जलदई आवें"।
दरअसल पत्नी राजरानी को शरीर के एक तरफ हवा लग गयी थी। नेतराम ने ही बताया था, "जे हवा नई है अम्मा लकवा लग गओ है।"
राजरानी का एक हाथ, एक पैर पूरी तरह सुन्न हो गया था। चेहरा भी एक और टेढ़ा हो गया था।
"डागदर गुप्ता जै के बडे डागडर हैं।"
और वो गाँव से चलने वाली बस में चला आया था लखनऊ के सरकारी मेडिकल कॉलेज।
राजरानी का हाथ वो कंधे पर लटकाये, कमर से सहारा दिए अस्पताल के बड़े प्रांगण में प्रवेश कर गया था।
अस्पताल की खचाखच भीड़ देख उसने कहा था पत्नी से, "जे देख इत्ते लोग वैसई न आते इतै।"
"तू ठीक हो जायेगी।"
जब राजरानी थकने लगी तो उसने उसे पीठ पर लाद लिया। साड़ी संभालते वो लदी रही ।

यूँ तो उसे परवाह न थी फिर भी अस्पताल आने-जाने वालों में से किसी को भी ये नज़ारा अज़ीब नहीं लगा था। नेतराम चलता रहा, जब तक कि वहाँ नहीं पहुँच गया जहाँ पर्ची कटती हैं कंपूटर वाली।
अस्पताल में सटेचर की कोई व्यवस्था है उसे पता ही नहीं था। व्यवस्था थी भी तो किस्से पूछे। कांच वाले कमरों में जाने में तो उसे डर लगता था।
गमछा बिछाया और राजरानी को एक कौने में दीवार से सटा कर बैठा दिया था। पूछ कर

लग गया लंबी लाइन में।
एक घंटे बाद नंबर आया जब पर्ची का तो एक बज चुके थे।
डॉ. गुप्ता का पर्चा कटाने उसने दस रूपए दिए थे काउंटर पे।
कर्मचारी बोला, "पढ़ते नहीं, डॉ. गुप्ता का दिन सोमवार और शनिवार है।"
"तुम बुधवार को आ गए हो। आज दूसरे डॉक्टर मिलेंगे।"
उसका मन तो नहीं था लेकिन उसने पर्चा कटवा ही लिया।
पत्नी के पास आया और बोला, "शनिवार तक रुक्के पड़ेगो। गुप्ता डागडर का बोले है दिन नई है।"
पत्नी बोली, "दूसरे को दिखा लो।"
नेतराम बोला, "और कोनो ठीक न कर पाये तुम्हें"। लेकिन फिर उसने पीठ पर बैठा लिया था पत्नी को।
जूनियर डॉक्टर ने जाँचें लिखीं थीं बहुत सारी।
नेतराम बोला साब भर्ती कर दो डागदर गुप्ता के पास।
जूनियर डॉक्टर ने कहा था, "बेड खाली नहीं है, मैं फिर भी भर्ती कर तो दूँगा लेकिन आज गुप्ता सर का दिन नहीं है दूसरी यूनिट में जाओगे ?"
नेतराम बोला नई साब। ठीक है तब तक जांच करबा लेंगे।
आज तो अब 2 बज रहे हैं कल से जाँचें हो पाएंगी डॉक्टर ने बताया |
अस्पताल के बाहर बने रैनबसेरा में उसने अपने झोले और गठरी को रख दिया था। रैनबसेरा में एक शेड के नीचे सीमेंट से बने चबूतरे में उसके जैसे ही और मरीज़ और रिश्तेदार थे। गाँव में बड़े डायरी मालिकों के पास उसी तरह के भैंस के तबेले थे। पत्नी, झोले गठरी सबको एक साथ लादे रहने से वो थक गया था।
पत्नी ने गठरी से लड्डू निकाल कर दिए थे।
लड्डू खा कर सामने लगे हैंडपंप से मुँह धो कर पानी पी आया था। गठरी में रखे बर्तन में पत्नी के लिए पानी ले आया था।
आधे घंटे सुस्ता कर दोनों ने चाव से रोटी, नून प्याज़ और गुड़ खाया था।
अब उसे बुधवार से शनिवार तक का समय निकालना था, व्यवस्थाएं करनी थीं, जाँचें करवानी थीं।
रात के खाने के लिए ईंटें इकठ्ठी कर वो दाल, चावल और एक गंजी खरीद लाया था।
ईंटों से बने चूल्हे में उसने किसी तरह खिचड़ी बनाई थी।
पत्नी के सुन्न हाथ पैर की उसने मालिश की थी।
फिर दोनों रात के अँधेरे में सो गए थे। ठण्ड हल्की थी बसंत ऋतू वाली।
नेतराम की तकिया उसका गमछा था जबकि राजरानी का तकिया नेतराम की बाँह।
अगले दिन सुबह आठ बजे नेतराम गेट के बाहर बने झमाका टी स्टॉल से दोनों के लिए चाय लेने गया था पत्नी में।
तभी बाइक पर झंडे लिए बैठे लड़कों का एक बड़ा झुण्ड तेज़ हॉर्न बजाते और चिल्लाते, गालियाँ देते निकला था वहाँ से।
चाय स्टॉल पर बैठे आदमी से उसने पूछा था, "जे का हो रओ है भैया।"

आदमी ने उसे बताया, "आज वेलेंटाइन डे है। ये उसका विरोध कर रहे और न मनाने की चेतावनी दे रहे हैं।"
"जे कौन परब है भैया।"
"आज के दिन लड़का, लड़की, पति-पत्नी एक दूजे को बताते हैं कि वो उन्हें प्यार करते हैं। कुछ देते भी हैं लड़के-लड़कियों को और एक-दूसरे को भी।"
नेतराम ने अपनी चाय की पन्नी देखी थी जो वो पत्नी के लिए ले जा रहा था।
"तो जिन मोटर वाले लड़कों को कोनो दिक्कत है भैया ?"
उस आदमी ने हँस कर कहा था, "इनकी दिक्कत ये है कि इनसे लड़की नहीं पटी।"
दोनों ने एक ही बर्तन में उड़ेल कर चाय पी थी।
चाय सुड़कते
नेतराम बोला था, "पता है सहर में आज के दिना एक अज़ीब परब है। लड़का-लड़की और पति-पत्नी एक-दूजे को बतात हैं कि बे कित्ता चाहत हैं।
सर खुजला के बोला प्यार बतात की चीज़ है कि करब की।
अच्छा तू तो बता तू करे है हमसे प्यार।"
राजरानी ने शर्मा कर अपना मुँह एक हाथ से ढँक लिया था। लकवा लगने के पहले वो जब भी शर्माती दोनों हाथों से मुँह ढंकती थी। उसका चेहरा अब टेढ़ा था,मुस्कान भी टेढ़ी लेकिन नेतराम को उतनी ही अच्छी लगी थी।
नेतराम को तो शहरी प्यार की कितनी ही बातें नहीं पता थीं।
वो तो शहरी प्यार में एक असफल और बुरा पति था।
न तो उसे अपनी शादी की सालगिरह याद थी न ही पत्नी का जन्मदिन। न वो उसे पिक्चर दिखाता था कभी।
और साल में एक बार प्यार जताने का त्यौहार भी उसे नहीं पता था।
उसे तो अभी बस इतना पता था कि राजरानी का इलाज़ करवाना है। वो भी सिर्फ सबसे बड़े डॉ. गुप्ता से।
ओपीडी खुलने का समय हो रहा था।
नेतराम ने पत्नी की पोटली से कंघी निकाली और उसके लंबे बालों में कंघी कर चोटी कर दी थी।
कहा था दोपहर को नहला दूँगा हैंडपंप में।
फिर वो उसे पीठ पर लाद कर सीटी स्कैन और अन्य जांचों के लिए अस्पताल ले गया था।
हर जांच की कम्प्यूटर पर्ची अलग बनती। लाइन में लग कर, फिर वो पर्ची लेकर जांच करवाने की लाइन।
अगले दिन फिर हर जांच की रिपोर्ट लेने की लाइन।
बुधवार से शनिवार आ गया, दोनों ने मेहनत कर सारी जाँचे ले लीं थीं।
इस बीच नेतराम ने अपने और पत्नी के कपड़े हैंडपंप पर धो दिए थे।
पत्नी को नहला दिया था।
वो एक दिन की तैयारी से ही आया था, पैसे भी ख़त्म हो रहे थे। लौटने का किराया भी बचाना था। और मुनिया के लिए फ़्रॉक भी ले जानी थी शहर की।

दोनों बहुत खुश थे कि आज डॉ. गुप्ता से मिल कर वो ठीक हो जायेगी।
वो सुबह-सुबह ही सबसे पहले पर्ची कटवा लाया था।
पत्नी को सीमेंट की बेंच पर बिठाये प्रतीक्षा कर रहा था।
जब ग्यारह बजे तक डॉक्टर गुप्ता नहीं आये तो जूनियर डॉक्टर से नेतराम ने पूछा, "साब आज नहीं आ रहे क्या ?"
जूनियर डॉक्टर ने कहा, "वो आज कांफ्रेंस में हैं, आज नहीं आएंगे। आप चाहो तो मुझे दिखा लो। सोमवार को वो विदेश जा रहे हैं।"
नेतराम ने पूरी रिपोर्ट और पत्नी को उस जूनियर डॉक्टर को दिखा तो दिया, उपचार लिखवा भी लिया लेकिन संतुष्ट नहीं था।
पूछा, "साब कहाँ पे होंगे अभी।"
जूनियर डॉक्टर अच्छा लड़का था, अच्छे से समझा दिया, बाजू की कॉलेज बिल्डिंग के ऑडिटोरियम में कांफ्रेंस थी।
देश-विदेश से डॉक्टर्स आये हुए थे।
डॉक्टर गुप्ता मरीज़ और डॉक्टर के रिश्ते पर व्याख्यान दे रहे थे।
पिन ड्राप साइलेंस वाले हॉल में ।
उधर नेतराम पहली मंज़िल पर बने इस ऑडिटोरियम में सीढ़ी से चढ़ा जा रहा था उसे पीठ पर लादे।
लिफ्ट वाले से उसने पूछा तक नहीं था, उसे इतने दिन अस्पताल में रह कर पता था भगा दिया जाएगा।
अच्छा यही था सीढ़ियों पर या उसके आगे कहीं कोई गार्ड नहीं था दुत्कारने और भगाने को।
डॉक्टर गुप्ता अंग्रेज़ी में कह रहे थे मरीज़ का भरोसा अपने चिकित्सक पर चिकित्सक की सबसे बड़ी पूंजी है।
विनम्रता और देखभाल आपको सफल बनाती है। सारे लोग मंत्रमुग्ध से सुन रहे थे।
तभी सबका ध्यान इस सफ़ेद मटमैला, मुचमुचा पैजामा कुर्ता पहने और पीठ पर एक साड़ी वाली महिला को लादे व्यक्ति पर पड़ा था जो बेपरवाह कांच के दरवाज़ों से निडर अंदर स्टेज तक चला आया था।
थका-हारा।
राजरानी को गमछा बिछा कर स्टेज पर रखी कुर्सी जो कि मुख्य अतिथि के लिए थी बैठा दिया था। न तो उसे पहचान थी किसकी कुर्सी है न अब परवाह।
मुख्य अतिथि वैसे तो मरीज़ ही होना चाहिए जब मरीज़ और चिकित्सक के रिश्ते की बात हो।
पीड़ित दृढ़ निश्चय दुस्साहस में बदल जाया करता है।
"साब इसे ठीक कर दो।"
डॉ. गुप्ता ने चिल्ला कर कहा था, "ये क्या बदतमीज़ी है।
ओपीडी में क्यों नहीं आते ?"
"निकलो यहाँ से।"

बीच लेक्चर में किसने आने दिया।"
बाजू में लटका जांचों का पुलिंदा खुद ही सरक कर गिर गया था, मालिश को रखी तेल की शीशी भी टूट गयी थी नेतराम के अपने बड़े डागडर के भ्रम की तरह।

वो मिन्नतें कर सकता था, लड़ सकता था, बहस कर सकता था, बाहर खड़े हो कर इंतज़ार कर सकता था।
लेकिन उसने ये सब नहीं किया था। पीठ पर अपने प्यार को लाद बाहर निकल गया था।
क्योंकि ये वो डागडर गुप्ता नहीं थे जिनके लिए वो आया था।

।। जादूगर ।।

सुबह दस बजे। रोज़ की तरह अपर्णा बच्चों को स्कूल एवं पति को ऑफिस भेजकर बालकनी में दो पल सुस्ता रही थी।
कुछ ही देर बाद दोपहर के खाने की तैयारी शुरू होनी थी।
उसे रेडियो पर आकाशवाणी बहुत पसंद था। बाजू में रखा छोटा-सा रेडियो न जाने कैसे पहचान जाता हमेशा, कि उसके दिल में क्या चल रहा है। स्मार्ट टीवी के ज़माने में भी रेडियो उसे ज़्यादा पसंद था क्योंकि रेडियो उसे अपने बाबूजी की याद दिलाता था। वो सुबह से रेडियो की घुंडी घूमाते रहते रफ़ी और लता के गानों के लिए।
अभी वो जगजीत सिंह, चित्रा सिंह की ग़ज़ल, "ए बता दे मुझे ज़िंदगी प्यार की राह के हमसफ़र किस तरह बन गए अज़नबी" बजा रहा था।
उसने सोचा कितना पहचानता है ये ट्रांज़िस्टर मुझे।
आँखें बंद किये ग़ज़ल में खो गयी थी वो। ग़ज़ल ख़त्म कर अपने स्मार्ट फ़ोन पर नज़र डाली तो देखा किसी का मैसेज पड़ा हुआ है फेसबुक पर।
"हाए कैसी हो ?"
हे भगवान सूट और टाई वाली प्रोफाइल पिक ज़ुबिन
की थी।
उसका दिल धक् से रुक-सा गया था दो पल को। और फिर तेज़ धड़कना शुरू हुआ था। कांपती उँगली से उसने प्रोफाइल खोली थी ज़ुबिन की। मोबाइल स्क्रीन थोड़ा-सा गीला पड़ गया था उंगलियाँ ठन्डे पसीने से तर-बतर जो हो रही थीं।
लेकिन ये घबराहट एक अज़ीब-सी आनंददायक अनुभूति लिए हुई थी। जैसे किसी ने बरसों से इस पल का इंतज़ार चुपचाप किया हो।
शराब छोड़ा हुआ शराब का आदी यदि बरसों बाद भी एक पैग शराब भी पी ले तो फिर से आदी हो जाता है। पहला प्यार भी शायद कुछ ऐसा ही था अपर्णा के लिए।
पंद्रह बरस बाद भी ज़ुबिन ज़्यादा नहीं बदला लगा था उसे। बस हल्का-सा मोटा हुआ था। और सूट-बूट में जम रहा था। प्रोफाइल बता रही थी कि वो इंदौर शहर का एक सफल साइकेट्रिस्ट था। उसे मन पढ़ना उस वक़्त भी आता था अपर्णा ने सोचा।
कांपती उंगली से उसने लिखा था, "ठीक हूँ। और तुम।"
इस पहले वाक्य का आदान-प्रदान स्वीकृति थी, बातें शुरू करने की। उधर शराब छोड़े शराबी ने बरसों बाद फिर से जाम को हाथ में ले लिया था।

प्यार की टाइम मशीन उसे पंद्रह साल पहले की यादों में ले गयी थी।
ज़ुबिन स्कूल का सबसे प्रतिभाशाली छात्र था। पढ़ाई में अव्वल। वाद-विवाद, लेखन, खेल, ड्रामा सभी में कोई कैसे इतना अच्छा हो सकता था। टीचर्स का चहेता। और लड़कियों का भी तो था। सब उसकी प्रतिभा से इतना चकित थे कि उसे जादूगर कहते। हर फन में माहिर जादूगर ज़ुबिन।
मैं ही तो थी जो उसे देखती रहती थी एक-टक। क्यों देखती थी पता नहीं। लेकिन ज़ुबिन का मासूम चेहरा उसकी मुस्कराहट और उसका जीत कर भी सामान्य रहना उसे भाता था।

जीव-विज्ञान के प्रयोगों के लिए गुप्ता सर ने दो-दो की टीम बनाने चिट उठाने को कहा था। ईश्वर ने ज़ुबिन के साथ मेरी टीम बना दी थी। सहेलियाँ कैसी जलीं थीं। और कहा था, "अब तो तू भी टॉप करेगी।"
ज़ुबिन कैसे इतना प्रतिभाशाली है ये राज़ उसके साथ काम करते हुए जाना था।
वो जो भी करता पूरे मन से। वो तो मेंढक के डिसेक्शन में भी ऐसा मशगूल होता कि जैसे कोई सन्यासी गहन ध्यान कर रहा हो। वो ध्यान मग्न होता और मैं बेशर्मों की तरह उसे देखती रहती। मानों मेनका हो जाती विश्वामित्र की।
हम फर्न के पौधे जब तलाशते बॉटनी की फ़ाइल के लिए तब दरअसल मैं उसके लिए फूल तलाशती। वो फूल वो बुद्धू लेता और कहता, "इसे फ़ाइल में नहीं लगा सकते गुप्ता सर इसे पसंद नहीं करेंगे।"
उसकी लगन उसके और भी करीब लाती। ख्याल तो आता था हर काम इतनी शिद्दत से करने वाला जब भी प्यार करेगा कैसा करेगा। पर प्यार और उसे.....
मैं टिफिन में माँ से नयी-नयी डिशेस सीख कर खुद बना ले जाती। चटोरा बड़े चाव से खाता। उसे मेरे हाथ का बना खाना बहुत पसंद आता। लड़कियों को जब ज़्यादा प्यार आता वो कुछ बना कर खिलातीं। ये युगों से चला आता। उसे मेरे हाथ के साबूदाने के बड़े कितने पसंद थे।
उस एक महीनों के साथ ने ज़ुबिन को भी कुछ-कुछ बदल दिया था। पहली बार कहा था ज़ुबिन ने, "तुम्हारी आवाज़ कितनी मीठी है।"
और वो एक खाली कैसेट खरीद लाई थी अपनी आवाज़ टेप करके सुनने।
बार-बार कुछ कहती और रिकॉर्ड करती फिर सुनती अपनी मीठी आवाज़।
छोटे भाई ने चुगली कर दी थी माँ से कि, "माँ दीदी पागल हो गयी है। पूरे समय आईना देखती है और खुद की आवाज़ टेप रिकॉर्डर में सुनती रहती है। अकेले ही मुस्कुराती रहती है।"
जीव-विज्ञान के प्रयोग समाप्त होने में तीन दिन बचे थे। मन करता कह दूँ सब कुछ उसे लेकिन फिर नारी सुलभ शर्म संकोच हावी हो जाता। उससे भी ज़्यादा अहम् कि मैं ही क्यों पहल करूँ। और उससे भी ज़्यादा डर कि बुद्धू ने मना कर दिया तो।
आखिर ज़ुबिन के दोस्त पाण्डेय ने ताड़ लिया था मेरा रुझान। उसने क्या सच तो ये है कि सारे बाग़ को खबर थी बस गुल को छोड़ कर।
लेकिन पाण्डेय ने बड़ी अहम् बात कही थी। वो ये कि, "उसे भी पता है कि तुम उसे प्यार करने लगी हो। औऱ उसे भी तुम पसंद हो। लेकिन वो डरता है बस पहल करने में।"
और मैं चले गयी थी सीधे उसके पास।
उसकी नज़रें किताबों पर गड़ी हुई थीं और मैंने अपनी सौतन-सी किताब को बंद कर दिया था। ज़ुबिन ने पहली बार भर नज़र मुझे देखा था। पहली बार इतनी पास से आँखें मिली थीं कि उसकी आँखों की पुतलियों में मेरा प्रतिबिम्ब दिखने लगा था।
पूरे बैच को फ़िल्म का एक जीवित सीन देखने मिलने वाला था।
उसकी आँखों का झूठा गुस्सा मेरा आत्मविश्वास बढ़ा गया था। मैंने पूछ ही लिया था, "जो

भी है मन में कहो।"
ज़ुबिन ने कहा था, "क्या है मन में ??"
"ज़ुबिन तो फिर कह दो कुछ भी नहीं है।"
और उसने कह दिया था, "हाँ वाक़ई कुछ भी नहीं है। तुम क्या कह रही हो अपर्णा।" आँसू छलकते इसके पहले ही मैं मुड़ गयी थी हारकर।
और उसने हाथ पकड़ लिया था मेरा।
पूरे शरीर में सिहरन-सी दौड़ गयी थी। जादुई अनुभूति। मानों जन्म ही हुआ हो इस एक पल के लिए। इस फ़िल्म को देखते पूरे बैच ने एक साथ तालियाँ और टेबल बजाई थीं।
अब तो मैं और ज़ुबिन हर वक़्त साथ रहते। मैं ज़ुबिन से सीखती रहती पढ़ने और ज़्यादा मार्क्स लाने के तरीके। उसने मेरे जैसी औसत पढ़ने वाली लड़की को बहुत बेहतर बना दिया था। उसका प्यार जिम्मेदारी वाला था उस उम्र में भी।
मैं उससे पूछती, "तुम्हें तो कोई और भी मिल जाती मैं ही क्यों ?"
तो वो कहता, "मैं किसी को ढूंढ थोड़े न रहा था जो कोई भी मिल जाती। तुम में एक अजीब आकर्षण है, कशिश है। तुम्हारी आवाज़ मुझे सुकून देती है। और ज़ुबिन को हमेशा ढूंढती तुम्हारी आँखें पसंद हैं।"
मैं चाहती वो मेरी सुंदरता पर और बोले लेकिन वो नहीं कहता।

उसका जादू अभी चरम पर ही था और बारहवीं की परीक्षाएं पास आ गयी। ज़ुबिन ने टॉप किया। मैं भी अच्छे मार्क्स से पास हुई।
ज़ुबिन ने अपनी माँ से मेरे बारे में पूछा था। आंटी ने कहा था पहले पढ़ाई पूरी करो। फिर मुझे कोई समस्या नहीं।
जबकि मेरे बाबूजी जातियों की बेड़ियों में जकड़े हुए थे। फिर मैं बाबूजी को प्यार भी तो इतना करती थी कि वो जो कहते करना ही था। ज़ुबिन पास भी होता उसकी पढ़ाई का चक्कर भी न होता तो मनाती उन्हें। लेकिन जो परिस्थितियाँ थीं उनमें यही ठीक लगा कि घर वाले जो कहते हैं वही कर लो। क्योंकि बाबूजी ने इसे अपनी इज्जत का सवाल बना लिया था।
उन्हें तो बेटी जल्दी ब्याहनी थी।
ज़ुबिन मेडिकल की पढ़ाई के लिए चला गया और मैं बंध गयी इनसे।
जीवन से सोलह बरस की उम्र और ज़ुबिन दोनों का जादू ख़त्म-सा हो गया था।
अब जब-तब ज़ुबिन से उसकी चैटिंग होती। उसे बहुत इंतज़ार रहता ज़ुबिन के मैसेज का। रोज़ दस बजे उसके मेसेज का इंतज़ार चैटिंग फिर सब कुछ डिलीट करना यही दिनचर्या एक हफ्ते से थी।
ज़ुबिन ने अपनी पत्नी और एक प्यारी बच्ची की फ़ोटो दिखाई थी।
मुझसे तो सुन्दर नहीं लगती।
पहली बार पिछले दस बरस की शादी में किसी से उसने अपने पति की बुराई की थी। ज़ुबिन को लिखा था उसने व्हाट्सएप्प पर, "कि मेरा जीवन बेहद नीरस है। सुबह से शाम तक घर के काम में खट्ती हूँ। ये न तो कभी प्यार के दो शब्द बोलते हैं और न ही ज़्यादा

बात। कहीं घुमाने भी नहीं जाते। घर के किसी काम में कोई हाथ नहीं बटाते।"
ज़ुबिन ने पूछा था, "तो तुम खुश नहीं हो ?"
आखिर अपर्णा ने लिख ही दिया था, "तुम होते तो खुश होती।"
काश बाबू जी ने मेरी सुनी होती।"
ज़ुबिन ने इन एक हफ़्तों में अपने बारे में ज़्यादा नहीं बताया था।
बस अपर्णा के बारे में ही पूछता।
वो था ही केयरिंग। क्या अब भी वो प्यार करता है मुझे ?
क्या मैं अब भी प्यार करती हूँ उसे ?
मेरे पति हैं बच्चे हैं ? क्या ये ठीक होगा ?
अपर्णा का अकेलापन तो दूर हो गया था इन एक हफ़्तों में लेकिन अंतर्द्वंद, अपराधबोध, खुशी, उत्तेज़ना, प्यार की सुखद अनुभूति कितना कुछ एक साथ चल रहा था इन सात दिनों में।
आज उसने कहा था ज़ुबिन से कि, "ये अखबारों, दोस्तों और मोबाइल मैं ही खोये रहते हैं। मैं कितना भी अच्छा बनाऊं मुँह बना कर खाते हैं। कभी तारीफ नहीं की।"
"मेरा तो मन करता है कि भाग जाऊँ कहीं दूर। तुम रहो साथ या तुम्हारी यादें। बस तुम और मैं। बस बच्चों से प्यार है इसलिए कभी ऐसा नहीं कर सकती।"
ज़ुबिन हाँ, हम्म जैसे उत्तर ही देता रहता।
अपर्णा का अपराधबोध हारने लगा था पहले प्यार के आगे। उसका मन करता कि ज़ुबिन कुछ रोमांटिक कहे। वो सब कहे जो रह गया था कहना। कुछ प्यार भरा कुछ अंतरंग।
और आखिर ज़ुबिन ने एक दिन कहा कि वो जबलपुर आ रहा है।
एक रेस्टोरंट में मिलना तय हुआ था।
आज वो पंद्रह बरस बाद मिलने जा रही थी । अपने ज़ुबिन से। जादूगर ज़ुबिन से। बहुत खुश थी। बहुत उत्साहित। आज उसने साबूदाने के बड़े फिर से बनाये थे। और एक हीट प्रूफ टिफिन में पैक किया था उन्हें।
आज फिर मोबाइल पर आवाज़ रिकॉर्ड की थी और सुनी थी।
नया सलवार सूट निकाला और पहना था। लेकिन सलवार सूट में खुद को वो मोटी लगी थी। तो फिर नई साड़ी पहन ली थी।
साड़ी में उम्र ज़्यादा लगी उसे तो फिर से सलवार सूट ही पहन लिया था।
मोबाइल पर ज़ुबिन की पत्नी को देखा और खुद को आईने में, "इससे तो बहुत सुन्दर हूँ मैं"
वो स्कूटी से गयी थी धड़कते दिल से। मुँह में कपड़ा बांधे।
दिल फिर रुक-सा गया था। ज़ुबिन अपनी लंबी सफ़ेद कार से टिका खड़ा था। पहले से भी ज़्यादा हैंडसम। फिट। काली टी-शर्ट और नीला जीन्स पहने।
शुरुआती औपचारिक मुस्कराहट के बाद दोनों अंदर चले गए थे शांत से रेस्टोरेंट में।
ज़ुबिन ने कहा था कैसी हो ?
वो तो बस ज़ुबिन की आँखों में खुद को तलाश रही थी।
कहा ठीक ही हूँ।
ज़ुबिन ने दो कॉफी मंगाई थी।

और एक गिफ्ट पैक दिया था उसे।
अपर्णा को लगा कहीं साड़ी तो नहीं ?
पंद्रह साल पहले ज़ुबिन ने परफ्यूम की शीशी दी थी बर्थडे पर । शायद आज साड़ी। वो बहुत खुश थी। तैयार थी समय के बहाव के साथ बहने। जीवन भर औरों के लिए जीते आयी थी। औरों का कहा मानती आई थी। आज वो स्वार्थी हो जाना चाहती थी। आज उसे जीना था खुलकर खुद के लिए।
गिफ्ट पैक दबाये पूछा, "तुम बदले-बदले से क्यों हो ? चैट करते समय भी ज़्यादा नहीं बोलते। बड़े आदमी हो गए हो ना।"
अपर्णा अब अच्छी नहीं लगती कि आज भी गुस्सा हो मेरे शादी कर लेने से। या डरते हो आगे बढ़ने से।" टेबल पर हाथ रखे
वो चाहती थी एक बार तो ज़ुबिन हाथ पकड़ ले। वो सिहरन, वो जादुई स्पर्श, वो रुके हुए पल उसे फिर चाहिए थे।
ज़ुबिन ने कहा, "अपर्णा आज मैं सिर्फ तुमसे बात करने जबलपुर आया हूँ।"
"तुम्हारी शादी हो जाने का मुझे जब पता चला तो खुद के लिए बिल्कुल भी दुःख नहीं हुआ। तुम्हारे घर की परिस्थितियों को देख़ते हुए मुझे पता था ये होना ही है। क्योंकि प्यार का मतलब एक-दूसरे को पा लेना या साथ रहना ही नहीं। प्यार अक्षुण्ण होता है। हँस कर बोला दो प्यार में डूबे लोगों का प्यार ख़त्म करना हो तो सबसे अच्छा तरीका है उनकी शादी कर दो।
फिर यूँ ही एक दिन तुम्हें फेसबुक पर देखा। तुम्हारे स्टेटस देखे तो लगा तुम शायद उदास हो। जब तुम्हें मैसेज किये तो पाया कि हाँ! तुम उदासी और अकेलेपन में जी रही हो।

इन एक हफ़्तों में तुमसे बात कर जब समझ गया दिक्कत कहाँ है, तो आया हूँ तुम्हारे जीवन में खुशियाँ भरने।"
अपर्णा मुस्काई थी हल्का-सा।
ज़ुबिन ने कहना शुरू किया, "देखो अपर्णा मैं साइकेट्रिस्ट हूँ और तुम जिस तरह के अकेलेपन और अवसाद से गुज़र रही हो वो लाखों लोगों को है। शादी ख़त्म न हो सके ऐसी जिम्मेदारी बन कर रह गयी है बस।"
"तुम्हारे पति से तुम्हें ढेरों शिकायतें हैं। लेकिन उन्हें भी शायद तुमसे ढेरों शिकायतें होंगी। मेरी तो उनसे बात हुई नहीं लेकिन तुम्हारे व्यक्तित्व से कुछ अंदाज़ लगा सकता हूँ।"

"आज से मेरे लिए सिर्फ एक महीने जो कहता हूँ करो। उनका आंकलन बंद करो कि उन्होंने क्या अच्छा किया और क्या नहीं। आज से दिन भर खुद पर नज़र रखो उन पर नहीं। देखो कि क्या तुम उन्हें सुबह-सुबह ऑफिस के लिए लेट होते समय बड़-बड़ तो नहीं करती। काम की एक लंबी लिस्ट रोज़ तो नहीं पकड़ा देती। और लौटने पर दरवाज़ा खोलते ही तुमने ये किया और वो नहीं किया जैसी बातें तो नहीं करती।
देखो कि क्या साथ बैठ प्यार और मुस्कराहट के साथ खाती हो या मुँह बनाये रहती हो या किसी भी मुद्दे पर बड़-बड़ शुरू कर देती हो।
देख कर देखो कि क्या उनके जीने के तरीके को बदलना ही तो अपना मिशन नहीं बना रखा

है तुमने।
कभी उनके किसी काम, परिश्रम या अच्छे पिता होने को सराहा है तुमने।"
अपर्णा डबडबाई आँखों से ज़ुबिन को देख रही थी। आँसू कैद तोड़ बाहर निकलने आतुर थे। बोली, "तुम्हारा मतलब मैं ही गलत हूँ पूरी तरह। यही बताने आये हो इतनी दूर से"। नहीं अपर्णा। तुम ही गलत नहीं। तुमने उनकी जो भी कमियाँ बतायी वो पूरी तरह सच होंगी। और मैंने अभी जो कहा वो अंदाज़ से कुछ उदाहरण ही दिए। लेकिन वो मेरे सामने नहीं बैठे कि मैं उन्हें आत्मावलोकन का पाठ पढ़ाऊँ। तुम बैठी हो सामने। और तुम मेरे जीवन का अभिन्न हिस्सा भी हो। तुम्हें दु:खी देखा इसलिए आया इतनी दूर से।

मेरा कहना ये है कि बस जो तुम कर रही हो उस पर नज़र रखो। बस कुछ समय। अपने अहम् और अपेक्षाओं को दूर कर। मुझे तुम्हारे पति के व्यक्तित्व और भावनाओं का कुछ अंदाज़ लगा है तुम्हारी बातों से।
और एक बात पिछले एक हफ़्तों में तुम उनकी ही ज़्यादा बात करती रहीं। मतलब ये कि तुम्हारे अवचेतन मन में तुम्हारी शादीशुदा ज़िंदगी के अच्छा होने की अदम्य इच्छा है। बस रास्ता नहीं पता। रास्ता तुम खुद हो।
छलकते आँसू से उसने पूछा तो इन पैकेट्स में साड़ी नहीं है ??
"ओह..... अपर्णा इन में तुम्हारे बच्चों के लिए कुछ कपड़े हैं।"
वो लौट आयी थी आँसू पोंछ। रास्ते में गरीब बच्चे दिखे जिन्हें ज़ुबिन की दी हुई गिफ्ट पकड़ा आयी थी। साबूदाने के बड़े वाला टिफिन भी दे आयी थी। बच्चों की आँखों में कुछ पाने की चमक उसके दिल तक पहुँची थी सुकून के रूप में। दे कर मिली खुशी का सौदा फायदेमंद लगा था उसे।
आज शाम दरवाज़ा खोला और लिपट गयी थी पति से। मुस्कान और दो बूँद आँसू लिए।

चाय बना कर लाई और बस चुपचाप देखती रही उन्हें बच्चों से खेलते। "बच्चों संग खेलते कितने अच्छे लगते हैं ये।"
सुबह ऑफिस जाते समय प्यार से मुस्कुरा कर भेजा था उसने। एक नया रुमाल खोंस दिया था जेब में कह कर कि आपका चेहरा ऑयली हो कर अच्छा नहीं लगता।
इस हफ्ते महीनों बाद वो साड़ी लाये थे और पूछा था फ़िल्म चलोगी ??
वो गले से लग गयी थी।
उन्होंने पूछा, "आखिर अचानक इतना बदलाव कैसे ??
कोई जादूगर जादू तो नहीं कर गया ?? हमारा मरता रिश्ता जीवित कैसे हो गया ??" वो मुस्कुराई थी। जादूगर अब उसका प्यार नहीं जीने का तरीका बन गया था। अपर्णा का दिल समझने वाला रेडियो वातावरण में घोल रहा था ये गाना..... "चलो एक बार फिर से अज़नबी बन जाएँ हम दोनों।"

।। बहुरुपिया ।।

एक शहर में बहुरूपियों का एक परिवार आया।
वे अपने बच्चों को अलग-अलग भेष में शहर के अलग-अलग हिस्सों में भेजते लोगों का मनोरंजन करने को।
कभी बच्चे को शंकर जी बना देते, कभी हनुमान जी।
कभी डाकू तो कभी राक्षस या नेता।
इन बहुरूपिये बच्चों को ऐसी जगह जाने को कहा जाता जहाँ बड़े लोगों के बच्चे ज़्यादा आते। और बड़े लोगों के बच्चे अपने माता-पिता के साथ कार या बाइक में मॉल, सिनेमा हाल, रेस्टोरेंट वगैरह ज़्यादा आते। तो बहुरूपिये बच्चे भी इन्हीं जगहों के बाहर इर्द-गिर्द घूमते रहते।
बड़े लोगों के बच्चे इन बहुरूपिये बच्चों को देख बहुत खुश होते।
"मम्मी, मम्मी देखो शंकर जी, देखो हनुमान जी"
बहुरूपिये बच्चे जो भी अमीर बच्चा ज़्यादा खुश होता उसके पास जा कुछ करतब करते।
कोई एक का सिक्का, कोई 2 का सिक्का देता। बहुत से लोग कुछ भी नहीं देते। किस्मत अच्छी हुई तो दस का नोट तक थमा दिया जाता।
ऊपरी भेष के भीतर दबा बच्चा मुस्का उठता।
एक बार कल्लन ने बापू को कहा, "बापू मैं भगवान नई बनूंगो।'
बापू ने पूछा, "काय"
कल्लन बोला, "लोग चिल्लात हैं बापू। कि काय भगवान को बदनाम कर रये। जे सब बन कर। एक तो मारबे दौड़ो थो।"
बापू बोला लेकिन, "पैसा भी तभ है जादा मिल्हें।"
वो पीढ़ियों से इसी तरह अपना परिवार चलाते आये थे।
उनके दद्दा, नन्ना बताते कि पहले उन्हें खाने, कपड़े की कोई कमी नहीं थी पहले। गाँव-गाँव में इज़्ज़त होती।
जब दद्दा छोटे में शंकर भगवान् बन कै निकलते तो जय-जय कार होती। आवभगत होती।
कल्लन और कल्लन की बहन मन्त्र-मुग्ध से सुनते दद्दा की बातें।
"दद्दा अब तो बस बच्चे खुश होत हैं। पईसे भी नई मिळत।"
11 बरस का कल्लन अपनी 9 बरस की बहन के साथ पीवीआर सिनेमा के बाहर रोज़ जाता और दिन भर में 30 से 50 रुपये कमा लाता।
कल्लन देखता पीवीआर के सामने दिन भर चहल-पहल रहती।
कार से निकलते मोटे-मोटे, गोरे-गोरे लोग।
दोपहर में दोनों झोले में रखे रोटी को प्याज़ और नून से खा लेते। एक कौने में बैठ। साथ ही दस रूपये का कुछ खरीद के भी खाते फूटपाथ की दुकानों से। दोनों मज़े से।
बापू ने कहा था आज उनका आखिरी दिन था इस शहर में। कल फिर किसी और गाम किसी और देस।
अमीर बच्चे मैकडोनाल्ड के अंदर जाते दिखते।

कांच से अंदर दिखता वो कुछ खाते रहते। पीते रहते।
कल्लन की बहन ने बर्गर के एक पोस्टर की तरफ उंगली दिखा कहा, "कल्लन मेरे को भी खिला दे न वो"।
कल्लन ने झोले से सिक्के निकाले और जोड़े। पैसे जोड़ना और थोड़ा पढ़ना बहुरूपिये परिवारों को परम्परा से ही सिखाया जाता।
दोपहर तक बीस रूपये आ चुके थे।
मैकडोनाल्ड के बाहर लगे बर्गर के ऐड को देख बहन ने कहा था जे खिला दे कल्लन। कल्लन मैकडोनाल्ड के अंदर जाने लगा। लेकिन कल्लन तो छुपा हुआ था उस दिन हनुमान जी के पीछे।
गार्ड ने रोक दिया दरवाजे पर ही।
"भागो यहाँ से"
कल्लन बोला, "खरीद के खाएंगे।"
गार्ड फिर भी नहीं माना, "चल भाग बड़ा आया खरीदने वाला।"
"अच्छा इत्ता बता दो कित्ते का है जे।"
गार्ड बोला, "49 रूपये।"
कल्लन खुश हो गया।
लेकिन आज दोनों ने दस रूपये का कुछ भी नहीं खरीदा। शाम तक के लिए बचा लिया।
आज शाम को बहुत भीड़ आनी थी। कोई सिनेमा में।
बहन को लेकर वो फिर लग गया बड़े लोगों के बच्चों को रिझाने।
कभी अपनी पूँछ हिलाता, कभी उछल-कूद करता। वो हनुमान जो था।
आखिर थोड़ा-थोड़ा करके रात 9 बजे तक पचास रूपये हो गए।
'बापू आते होंगे। चल जल्दी।"
दोनों फिर से मैकडोनाल्ड के बाहर थे।
गार्ड ने फिर भगाया तो कल्लन ने पैसे निकाले झोले से पूरे पचास थे। गार्ड को दिखाया।
गार्ड ने कहा, "ठीक है हनुमान जा अंदर, जान मत खा। लेकिन अंदर बहुरूपियापन मत दिखाना। किसी से पैसे मत मांगना, नहीं तो वहीँ आ कर मारूँगा।"
दोनों अंदर गए।
कल्लन को मैकडोनाल्ड के भीतर अमीर लोगों का झुण्ड दिखा। वही मोटे-मोटे गोरे-गोरे लोग।
कुछ नई पता कैसे खरीदना है।
काउंटर पर लाइन लगी दिखी तो वो भी लग गया।
सब बड़े लोग उसे देख हँस रहे थे।
पहली बार वो चाहता था कि लोग उसे न देखें।
पेंट की हुई आँखों के पीछे से उसने बहन को देखा था टुकुर-टुकुर 49 रूपये वाले बर्गर का पोस्टर देखते।
उसे लगा था पोस्टर से बर्गर निकाल कर उसे पकड़ा दूँ।
उसने सोचा था मन ही मन कि एक कट्टु वो भी खायेगा बहन से पूछ कर।

काउंटर पर जब पहुँचा तो उस लड़की ने 'प्रशिक्षण वाली विनम्रता' से कहा आपको क्या चाहिए 'सर'।
उसे सर सम्बोधन से क्या लेना था।
कल्लन ने 49 रूपये वाले बर्गर की फ़ोटो दिखाई।
और सिक्कों को काउंटर पर रख बोला, "पूरे उननचास हैं दीदी।"
थकी हारी सेल्स गर्ल सिक्कों को देख मुँह-सा बना गिनती है।
पूरे उननचास रूपये थे। एक सिक्का कल्लन ने हाथ में दबा रखा था।
सेल्स गर्ल ने कहा, "सर सर्विस टैक्स के साथ 54 रूपये होगा।"
कल्लन के हाथ सिर्फ एक और रुपया था।
बहन टुकुर-टुकुर देख रही थी।
लाइन में पीछे लगे बड़े लोग चिल्ला रहे थे, "अरे जल्दी कर भाई।"
"अबे निकल।"
कल्लन बहन को लेकर बाहर आ गया था ।
उसे पता था ये चार रूपये मैकडोनाल्ड बंद होने के पहले आना आसान नहीं। ये आखिरी दिन है।
बहन को वो उननचास रूपये वाली चीज़ अब नई खिला पायेगा।
बहन के रुआंसे चेहरे को उसने देखा भी नहीं और लगा
फिर से पूँछ हिलाने, और उछल-कूद करने।

।। आइसक्रीम कैंडी ।।

दस साल का अमोल, अपने पिता का लाडला।
पिता एक जिम इंस्ट्रक्टर।
राज्य स्तर पर बॉडी बिल्डिंग प्रतियोगिता में मैडल हासिल कर चुके।
शानदार गठा शरीर।
अमोल को अपने पिता को देख बहुत गर्व होता।
वो उनसे पंजा लड़ाता अक्सर और जीत जाता।
दोस्तों से डींगें हांकता अक्सर अपने पिता की ताकत की।
रोज़ सुबह दौड़ता उनके साथ।
उसे पिता से ज़्यादा ताकतवर सिर्फ वही लगा था दुनिया में क्योंकि सिर्फ वो पंजा लड़ाने में जीत जाया करता।
बड़े-बड़े डम्बल आसानी से उठाते देखता उन्हें।
उनकी बाँहों के डोलों पर मुक्के बरसाता और पापा को कुछ भी नहीं होता।
माँ पढ़ने के लिए कहती और पापा खेलने को।
अक्सर शाम को पापा की नयी बाइक पर घूमने जाता। पहली बार खरीदी ये बाइक पापा के साथ ही उसे भी बहुत प्यारी थी। बाजार से सब्ज़ी, फल वगैरह खरीदता और कुछ खाता भी।
मिलनसार पिता के बहुत से दोस्त थे, सब पापा को सम्मान देते। उसके पिता हीरो थे, ताकतवर हीरो।
एक दिन बाइक पर पीछे चिपके वो बाजार गया था। पापा ने आइसक्रीम ले कर दी थी, उसकी मनपसंद चूसने वाली मेन्गो कैंडी।
वो बाइक पर पीछे बैठ गया था कैंडी चूसते हुए।
चौराहे के पास वो बाइक से पहुँचे ही थे कि बहुत सारी कारों का एक काफ़िला तेज़ गति से आता दिखा, लाल बत्ती कारों वाला।
वो आइसक्रीम खा रहा था पीछे सीट पर तो पापा चौराहे के किनारे ही बाइक पर रुक गए थे।
लेकिन तभी दो पुलिस वाले आये और पापा को एक तमाचा लगाया, और बाइक पर डंडा मार कर गाली दे कर बोले, "साले मुख्यमंत्री आ रहे हैं दिखता नहीं। निकल यहाँ से।"
पापा उदास से बाइक को भीड़ भरे इलाके में किनारे लगाने लगे थे। कुछ भी नहीं कहा था।
बिना गलती के मार खा वो चुप थे
उसकी कैंडी टूट कर गिर गयी थी, अनेकों खूबसूरत भ्रमों के साथ ही। उसका प्यार पिघलने लगा था सड़क पर पड़ी कैंडी-सा,आँसू बन टप-टप। डबडबाई आँखों से पापा ने उसे गले लगा लिया था।
उसे समझ आया था आज मांसपेशी वाले पापा, बाइक वाले पापा ज़्यादा ताकतवर नहीं।
वो कार वाले, लाल बत्ती कार वाले कहीं ज़्यादा ताकतवर हैं। वो जब निकलते हैं तो सब थम जाता है। या अलग-थलग हो जाता है। जैसे कृष्ण के चक्र घुमाने पर महाभारत में सब

थम गया था वैसा।
जो नहीं थमता या हटता वो पापा की तरह पिट जाता है।
लाउडस्पीकर से कुछ देर बाद आवाज़ गूंजना शुरू हुई थी, "जनता जनार्दन है, हम तो सेवक है, प्रहरी हैं। जब तक एक भी बच्चे की आँखों में आँसू हैं, मैं और मेरी सरकार आराम से नहीं बैठेगी।"
उसका मन हुआ था पापा से इन शब्दों का अर्थ पूछे, लेकिन पापा अभी खामोशी से अपमान का घूँट पी रहे थे।
कैंडी पिघल तो गयी थी लेकिन रोड़ पर अपने निशान हमेशा के लिए अंकित कर गयी थी। बाइक पर लगे डेंट से निशान। मासूम अमोल के हृदय पर अंकित खरोंचों से निशान।

।। ज़िंदगी एक स्टेशन ।।

दिसम्बर की सुबह, जबलपुर रेलवे स्टेशन की एक बेंच पर वो बैठा इंतज़ार कर रहा था।
ट्रेन आने में लगभग चालीस मिनट थे।
सुबह चार बजे कड़ाके की ठण्ड। स्टेशन के खुले रास्तों से तन में समाती हुई।
मफलर, शॉल और गर्म टोपों में लिपटे लोग ठण्ड के अहसास को और भी बढ़ाते हुए।
मोटी जैकेट, नीले जीन्स और सफ़ेद स्पोर्ट शूज को भेदती ठण्ड।
उठ कर वो एक कप चाय खरीद लाया था।
दो घूँट पीने के बाद उसे लगा था, "स्टेशन पर इतनी बुरी चाय क्यों बनाते हैं ये लोग। क्या चला जाता इनका अच्छी चाय बनाने में। लेकिन फिर भी तो हम पी रहे हैं। मोनोपोली और ठण्ड की मज़बूरी की वजह से।"
उसने देखा दो कुलियों को गप्प करते और ट्रेन का इंतज़ार करते।
बेंच से उठ कर वो चला गया था कुलियों के बीच काली जैकेट में ठंडे हाथ दुबकाये।
पूछा, "क्या बैठ सकता हूँ आप के साथ ?"
दोनों कुलियों ने उसे देखा और दिमाग में कौंधते प्रश्नों को वहीँ छोड़ बोले, "हाँ भैया बैठो काय नई।"
वो उकड़ू बैठ गया जमीन पर उनके साथ ही।
बोला, "बस टाइमपास कर लूँ आप लोगों से गपिया लूँ।"
बचपने से कुली देख रहा हूँ सोचा आप लोगों की ज़िन्दगी जानूँ। बचपने में कुली-कुली खेलता भी था।"
अरे भैया हमार ज़िन्दगी में का रखा है। बच्चन का पिक्चर देखे हो न कुली। बच्चन को चोट न लग गयी थी जै में। साला जे कुली नामऊ अभागा है।"
"तो काम कैसा चल रहा है ?"
लो जैसे दिल में दबे दर्द को किसी ने छू लिया हो।
"काम काहे का काम। जब से जे चक्का वाले सूटकेस चले हैं न पिद्दी माफ़िक बच्चा भी बड़ा-बड़ा वज़न घसीट लेत है। हमरी का ज़रूरत। भूले-भटके एक आध काम मिल जात है। अब वो बात नई रई बाबू।"
दूसरा बोला, "बीड़ी चाय का इंतज़ाम और थोड़ा बहुत बीवी-बच्चा का दाल रोटी बस निकाल लेत हैं।"
"तो ये चक्के वाले सूटकेस से बहुत नुकसान हुआ है आपका, हमें सच में ये नहीं पता था। कुछ और क्यों नहीं करते ?"
"अरे भैया का बोल रये। इस उमर में अब नओ काम कहाँ से लाएं। अब तो जो है सो है।"
इस बीच एक दूसरी ट्रेन आ गयी थी। दोनों उठ खड़े हुए थे उत्साह से।
पल भर को बने रिश्ते भी सहानुभूति पैदा कर सकते हैं। उसने सोचा था मन ही मन भगवान इन्हें अच्छा काम देना।
ट्रेन से निकलते यात्रियों ने भीड़ और चहल-पहल बढ़ा दी थी।
उसने देखा प्लेटफॉर्म से निकलते ही एक-एक यात्री पर कई ऑटो वाले टूट पड़े थे। सर

चलेंगे। सर छोड़ देते हैं। सर होटल जाना है क्या।
ज़िन्दगी में सेलिब्रिटी वाली अनुभूति लेनी हो तो एक सूटकेस लेकर जबलपुर स्टेशन से बाहर निकलिये ऑटोग्राफ न सही ऑटोवाले आपको दुनिया का सबसे ज़्यादा ध्यान पाने वाला व्यक्ति बना देंगे।
वो ऑटोवालों को देखते प्लेटफॉर्म के बाहर आ गया था।
लोग बचते, हटते, भीड़ को हटाते कार स्टैंड तक पहुँच रहे थे।
शेर कई बार प्रयास करता तब एक बार शिकार हाथ लगता। ऑटो वालों से भी ज़िन्दगी इसी सिद्धान्त पर कोशिश करवाती।
जैसे ही एक यात्री छूटता ऑटोवाले दूसरे पर झपटते।
जिस ऑटो वाले को यात्री मिलते उसके मटमैले जूतों के सोल में स्प्रिंग लग जाती। ऊर्जा की तरंग चेहरे और हाथों में फ़ैल जाती। ऊर्जा से प्रेरित हाथ खुद ब खुद चक्के वाले सूटकेस थाम लेते ऑटो तक ले जाने को।
इस रविवार वो बच्चों को पार्क ले जा पायेगा। बिना काम की चिंता किये। पत्नी को शायद एक फ़िल्म भी दिखा दे।
यात्रियों की आपाधापी ख़त्म हो गयी थी। वो बचपन में पापा से सिक्का ले कर वज़न लेता था उन रंगबिरंगी चकरी वाली मशीनों पर, और मम्मी टिकट में लिखी उसकी किस्मत पढ़ती थी। टिकट पर तो हमेशा ही किस्मत अच्छी लिखी होती। माँ की आँखों से उसे पता चलता था। लेकिन असल ज़िन्दगी में, काश वो खुद एक टिकट होता। जिस पर अच्छा ही अच्छा लिखा होता।
ट्रेन की नयी उद्घोषणा में ट्रेन 20 मिनट और लेट बताई गयी थी।
वो ऑटो वालों के पास पहुँच गया था। उन ऑटो वालों के पास जिनकी यात्री ढूँढने की जद्दोजहद बेकार गयी थी।
उस प्रश्न का उत्तर वो पिछले एक वर्ष से ढूंढ रहा था। अधीर इतना था जानने को कि मंदिरों से पूछा, पत्नी से पूछा, खुद से पूछा, दोस्तों से पूछा और अब कुलियों से पूछ कर आया था।
ऑटो वाले से पूछा, "और दोस्त काम कैसा चल रहा है ?"
ऑटो वाला गुटखा मुँह में दबाये बोला, "साब हर किसी ऐरे-गैरे के पास गाड़ी घोड़ा है अब तो। हर किसी को कार लेने आती है। धंधे में वो बात नई रई अब तो। दाल रोटी निकाल लेते हैं बस।"
हर किसी ऐरे-गैरे के पास कार। अपनी आल्टो की चाबी जैकेट में टटोलते उसने दोहराया था।
"तो कुछ और क्यों नहीं करते ?"
यही तो वो प्रश्न था जिसे वो खुद में तलाश रहा था। किसी खाली खंडहर में कुछ बोलने पर वही आवाज़ बार-बार गूंजती है। उसके मन में यही प्रश्न रोज़ सुबह गूंजता और दिन भर उसकी प्रतिध्वनि। कभी-कभी ज़िंदगी उत्तर में हमें प्रश्न ही देती चली जाती है।
प्रश्न, और फिर प्रश्न।
ऑटो वाले ने वही उत्तर दिया था जो उसे नहीं सुनना था।

"इसके अलावा कुछ और नहीं आता साब। अब तो जीना यहाँ मरना यहाँ।"
वो फिर से आकर ठंडी बेंच पर बैठ गया था। ट्रेन आने में पंद्रह मिनट बचे थे। एक चाय फिर खरीद ली थी। बेकार चाय, फिर भी खरीदी गयी। और वो एक शानदार फोटोग्राफर फिर भी खाली।
उसके पिता का बनाया फोटो स्टुडिओ। शहर में नाम था। अच्छी खासी कमाई। उसने स्नातक के बाद अपने पुश्तैनी काम को ही आगे बढ़ाने का फैसला किया था। फोटोग्राफी उसके खून में उसे महसूस होती। बचपन से ही पिता ने सिखाना शुरू कर दिया था।
लेकिन डिजिटल कैमरा और कैमरे वाले मोबाइल फ़ोन आने के बाद से ही धीरे-धीरे काम कम होता चला गया था।
उसके लिए मोबाइल कैमरे चक्के वाले सूटकेस थे। कमाई कम होने, काम न मिलने, और उसके काम की क़द्र न होने से वो कुंठित होने लगा था।
नए फोटोस्टुडिओ ज़्यादा बेहतर जगह पर खुल चुके थे।
पत्नी से खटर-पटर भी बढ़ गयी थी। समझ न आता कि काम कैसे बढ़ाऊं ? विज्ञापन पर भी खर्च किया लेकिन ग्राहक कम ही होते चले गए। ग्राहकों के प्रति अपने व्यवहार, फ़ोटो की कम कीमत, ज़्यादा मेहनत, उच्च क्वालिटी सब कर के देखता लेकिन लोगों को फोटोग्राफर की ज़रूरत ही कम हो चुकी थी। शादी-ब्याह के सीज़न का इंतज़ार करो बस।
जब भी कोई लड़की सेल्फी लेते दिखती उसे कोफ़्त होती। लगता जैसे उसे चिढ़ा रही है। दुनिया उसे पुराने कैमरों के नेगेटिव-सी दिखने लगी थी। काली।
पिछले एक बरस से उसे हार कर लग रहा था स्टूडियो बंद कर कुछ और करने लगो। लेकिन उत्तर न मिलता।
करो तो क्या करो।
कोशिकाओं में समायी फोटोग्राफी भी कैसे छोड़ दे ?
ट्रेन आ गयी थी। वो खुश भी था और निराश भी। उसका सबसे अच्छा दोस्त इंग्लैंड से आ रहा था मिलने।
दोनों दोस्त कभी एक साथ कॉलेज में थे। रूम मेट। विजय के साथ बिताये उसके वो चार वर्ष जीवन के अनमोल पल थे। भोपाल के बी.बी.ए. कॉलेज से पढ़ कर विजय एम.बी.ए. करने चला गया था जबकि वो खुद अपने शौक फोटोग्राफी को ही अपना व्यवसाय बनाने चला आया था। पिता के कहने पर स्नातक कर तो लिया था लेकिन पढ़ाई में मन बिल्कुल भी न लगा।
विजय कॉलेज का टॉपर था। बड़ा उत्साही, हट्टा-कट्टा सांवला और ऊर्जा से भरपूर।
बड़े सपने देखने और दिखाने वाला महत्वाकांक्षी।
वो न होता तो शायद मैं पास भी न हो पाता। स्नातक के बाद अपने शौक को व्यवसाय बनाने के फैसले का समर्थन सिर्फ उसने किया था।
पापा को भी उसी ने समझाया था। और कहा था देखना आपके इस स्टूडियो को आनंद और भी ऊँचाईयों पर ले जायेगा।
ट्रेन आ गयी थी। विजय वैसा ही फिट, दमकता सांवला चेहरा और उत्साह से भरपूर।
आते ही छोटे से आनंद को उसने गोदी में उठा लिया था। उसके मिलने का तरीका ही यही

था।
और पट्ठे कैसा है...चिर परिचित डायलॉग। 9 वर्ष बाद भी।
"पाँच साल से इंग्लैंड में है मुझे लगा गोरा हो गया होगा लेकिन साले कल्लू ही रहेगा तू।"
दोनों आनंद की आल्टो में बैठ गए थे। वो दोनों कुली किसी का सामान ले जाते दिखे थे। उस ऑटो वाले को भी शायद यात्री मिल ही गया था।
कार में दोनों खूब बातें करते आये।
आंनद ने पूछा था इंग्लैंड की लड़कियों के बारे में।
दोनों ने याद किया था भोपाल में शादियों में कैसे वो चले जाते थे खाली लिफाफा लिए डिनर के लिए।
दोनों ने उस नयी असिस्टेंट प्रोफेसर को याद किया था जिस पर क्रश था कितने ही लड़कों का।
कुछ दूसरे दोस्तों के बारे में पूछा था विजय ने।
कुछ बीवियों के बारे में बातें।
कैसे वो झिक-झिक करती हैं। लेकिन उनके बिना रहा भी नहीं जाता।
निष्कर्ष ये निकाला था दोनों ने कि स्त्री का दिमाग एक मैन्युफैक्चरिंग डिफेक्ट है। ज़्यादा लोड नई लेने का।

जबलपुर के आउटर में था आनंद का घर। पहुँचते-पहुँचते भोर होने लगी।
विजय को अपने सबसे अच्छे दोस्त के साथ भारत के इस छोटे शहर की सुबह खूबसूरत लग रही थी।
क्या यही वो सूरज है जो इंग्लैंड में भी उगता था लेकिन यहाँ ज़्यादा लाल ज़्यादा सुन्दर था।
दूध वालों की सायकल, चाय की गुमठियों से निकलती भाप, और चाय के इंतज़ार में खड़े आग तापते लोग, मफलर लपेटे तेज़-तेज़ मॉर्निंग वॉक करते मोटे लोग, सफ़ेद कुत्तों के साथ रंग-बिरंगे जूते वाले लोग। सुकून था, जीवन का अर्थ लिए गालों को थपथपाती ठंडी हवाएं। हल्के कोहरे से गुज़रते हुए कार आनंद के घर तक पहुँच गयी थी।

दोपहर के खाने तक विजय को आनंद के भीतर मौज़ूद ऊहापोह, करूँ तो क्या करूँ वाली निराशा और उसका कारण समझ आ गया था।

आनंद की पत्नी ने स्वादिष्ट भारतीय खाना बनाया था। इंग्लैंड में विजय अपने रिश्तों, दोस्तों के अलावा जिसे सबसे ज़्यादा मिस करता था वो था भारतीय खाना। वहाँ यूँ तो मिलता भी था लेकिन यहाँ वाली बात तो नहीं थी।

आनंद की पत्नी ने भी विजय से कहा था कि ये पूरे समय दु:खी और चिंतित ही रहते हैं अपने काम को लेकर।
खाने के बाद विजय बोला चल भाई जबलपुर घुमा
आनंद और वो भेड़ाघाट आ गए थे।
कार पार्क कर वे संगमरमर की कलाकृतियाँ, खिलौने, हैट, वगैरह की छोटी-छोटी दुकानों

के बीच बनी गली से पैदल भेड़ाघाट की ओर बढ़ चले थे।
आनंद ने देखा खेतों से कटे नए-नए दुकानदार कातर नज़रों से पर्यटकों को देखते। पर्यटक वस्तुओं को देखते ज़्यादा खरीदते कम।
दुकानें ख़त्म होते ही नर्मदा की खूबसूरती थोड़ा दूर से ही दिखने लगी थी। विजय पहली बार भेड़ाघाट देख रहा था।
धुआंधार की ओर बढ़ते हुए कच्चे रास्तों पर गाँव के लोग बेर, गुड़ में पगी बेर लबदो, खीरे, रामफल, चने वगैरह की दुकानें बोरों पर लगाये बैठे थे।
विजय ने बेर खरीद ली थी। दौने में रखी बेर खाते और खिलाते ही उसने कहा था, "ये खट्टी-मीठी बेर खाते ही हमारा मस्तिष्क बचपन में क्यों ले जाता है हमें।"

धुआंधार विजय को अभिभूत करने लगा था। नर्मदा का तेज़ वेग एक कम गहरी खाई में गिर अलौकिक चित्र बना रहा था। पानी धुंए-सा बन, तन-मन में समा रहा था। दोनों ओर सफ़ेद संगमरमर के पहाड़, दूधिया सफ़ेद पानी, पानी से बना सफ़ेद धुआं, धूप से चाँदी बनी जल धाराएं, खुला नीला आकाश और सफ़ेद बादल विजय को सम्मोहित कर रहे थे। बादलों-सा सफ़ेद पानी देख उसे लगा जैसे बादल उतर आये हों नर्मदा में पवित्र होने। जीवन-सा अनवरत, सन्यासी-सा धुनी, बेपरवाह धुआंधार जल प्रपात।
विजय ने कहा था,
"आनंद पता है यहाँ जो खूबसूरती और रोमांच का अनुभव हो रहा है न ये इस जगह को विश्व की सबसे खूबसूरत जगह में से एक बनाता है। लेकिन फिर भी ये विश्व पटल तो छोड़ो भारत में भी बहुत लोकप्रिय पर्यटन स्थल नहीं है।"
ऐसा क्यों है ?
आनंद ने हँस कर कहा था, "बस मेरे जैसा हाल है इसका भी।"
विजय ने कहा था, "मैंने कारण पूछे हैं भाई कैसा हाल है ये नहीं।"
देख लोगों को पर्यटन में खूबसूरती के अलावा आज सुविधाएँ भी चाहिए, साथ ही मार्केटिंग भी नहीं की गयी। बच्चों के लिए यहाँ बहुत कुछ शुरू किया जा सकता है, बच्चों के साथ पूरे परिवार आते हैं।
यहाँ कुछ बड़ी फिल्मों की शूटिंग भी हुई है, फिल्मकारों को आकर्षित किया जा सकता है। एक अच्छी योजना और उसका क्रियान्वयन सफलता की सम्भावना को बढ़ा देते हैं।"
"तेरे लिए भी बस हमें ऐसा ही कुछ करना है।"
आनंद ने पूछा, "क्या कर सकते हैं अभी तो कुछ सूझता ही नहीं ?"
विजय ने कहा, "पहले कुछ शानदार फ़ोटो ले, ऐसे की मेरी सारी पुरानी गर्लफ्रेंड देखते रह जाएँ।"

दूधिया धुआंधार पर आनंद ने कुछ शानदार फोटोग्राफ लिए अपने कैमरे से। कुछ अकेले, कुछ साथ में।

फिर विजय ने कहा, "चल थोड़ी बोटिंग और हो जाये।"

धुआंधार से लगभग आधा किलोमीटर दूर वो दोनों पैदल चल कर भेड़ाघाट पहुँच गए थे।
रास्ते में हस्तशिल्प और संगमरमर से बनाई गयी सुन्दर कलाकृतियों की छोटी-छोटी दुकानें थीं।
विजय ने भेड़ाघाट की संगमरमर से बनी फ्रेम की हुई एक तस्वीर खरीद ली थी। बिना मोल भाव किये।
दुकानदार के आँखों में चमक दिखी थी संगमरमर-सी।

बीच में पाँच साल की एक बच्ची अपने पिता और छोटे भाई के साथ करतब दिखाते मिली।
अच्छी बात ये थी कि कुछ लोग देख रहे थे दोनों मासूम बच्चों के करतब।
उसका डमरू की आवाज़ पर गुलाटियाँ खाना।
एक छोटे से रिंग से निकल जाना।
आनंद ने इन बच्चों की तस्वीर ली थी।
करतब ख़त्म होते ही विजय ने तालियाँ बजाई थीं और छोटे भाई को गोद में ले लिया था।
जाते समय पाँच सौ का नोट दिया था।
आनंद ने कैमरा स्क्रीन पर उनके करतबों की तस्वीर उन्हें दिखाई तो बच्ची बहुत खुश हुई।
मासूम-सी चमकती आँखों से पिता को देखा और मुस्कुराई।
आनंद पाँच वर्ष की उम्र पर इसकी प्रतिभा और परिवार के प्रति लगन देखी। इंग्लैंड में होती तो इसे जिमनास्ट कहा जाता और देश के लिए मैडल जीतने वाली एकेडमी में भेज दिया जाता।
विजय ने उसके पिता से पूछा था, "स्कूल क्यों नहीं भेजते इसे।"
"अरे साब बंजारे लोग हैं, एकउ जगह थोड़े न रुकते हैं। फिर इनई मोड़ा, मोड़ी, से तो हमरा पेट पलत है। हमरे बाप दादा येई करत मर खप गए, हम भी येई करत बचपन गुज़र गओ। जे भी जेई करत जी जायेंगे।"

भेड़ाघाट पर नर्मदा हरी-सी थी। लकड़ी की नावें किनारों पर खड़ी थीं।
कुछ बड़ी नावों को बड़ा सुन्दर सजाया गया था।

हल्की धुप, खुला आसमाँ, संगमरमर की सफ़ेद चट्टानों के बीच से बहती नर्मदा, गाँव के लोग, सुन्दर-सुन्दर नावें, परिवारों के साथ घूमने आये लोग, और बच्चे एक खुशनुमा माहौल बना रहे थे।
गाँव के बच्चे नर्मदा किनारे तैर रहे थे, निश्चिन्त, न तेज़ बहाव का डर न डूबने का, अपनी कुशलता पर पूरा भरोसा। कुछ तैरते बच्चे तो इतने छोटे थे कि लगता जन्म से ही तैराकी सीख कर आये हों।
लोग नदी में सिक्का फैंकते दिखे और बच्चे गहरे में कूद कर सिक्का निकालते। बीच-बीच में हरे पानी से छोटी मछलियों का झुण्ड ऊपर आता दिख जाता मानो इंसानों को देखने आया हो और फिर गुल।

बोटिंग के दौरान दोस्त का साथ, विहंगम दृश्य, तीनों और से संगमरमर के सफ़ेद विशालकाय पर्वत और बीच में नर्मदा के गहरे जल में बहती छोटी-सी नाव, और गाईड के

मज़ेदार तुकबंदी भरे वर्णन ने विजय को उल्लासित किया था।
विजय को खुश देख आनंद को तो अच्छा लगना ही था।
लौटते समय विजय ने अचानक कहा, "मेरे दिमाग में आईडिया आ गया है बॉस।"
"देख जबलपुर को फोटोग्राफी में कुछ नया देना होगा।
कुछ ऐसा करना होगा जिसकी चर्चा हो, जो अलग लगे, जिस पर कुछ लोग हँसे, जहाँ लोगों को फ़ोटो स्टूडियो न आना पड़े फ़ोटो के लिए, अलग से पैसे न खर्च करने पड़ें फ़ोटो के लिए।"

"तो कमाई कैसे होगी जब उन्हें पैसे न खर्च करने पड़ें तो ?"
"देख शुरू में आइडिया तुझे हास्यास्पद लगेगा, फनी लगेगा। लेकिन मुझे लगता है हम इसे यदि अच्छे से कर पाये तो ये चल निकलेगा।"
"घर चल कर बात करते हैं, भाभी जी का भी मत और साथ चाहिए होगा।"

रात के खाने पर विजय ने दोनों से कहा।

"देखो मुझे लगता है आपके स्टूडियो में एक बड़ा हाल बनाने लायक जगह है।
और एक छोटा-सा आधुनिक साफ सुथरा किचन।"
दोनों ने कहा, "ये क्या पूछ रहे हो ?"
वैसे हाँ जगह इतनी तो है।
और ऊपर भी निकल आएगी।" आनंद ने बेमन से बताया।
विजय ने समझाना शुरू किया।

"देखो हम एक छोटा, सुन्दर रेस्टोरेंट शुरू कर सकते है, साथ में तुम्हारी फोटोग्राफी और रचनात्मकता का बेहद अच्छा उपयोग हम ऐसे करेंगे कि लोग चकित हो जायेंगे। देखो आज लोग स्टूडियो में फ़ोटो काम ही खिंचाते है, लेकिन रेस्टॉरेंट में जाना तो बढ़ा है, वो भी बहुत।
लोग नए रेस्टोरेंट और खाने में नए प्रयोग पसंद करते हैं।
एक बार ज़रूर परखते हैं, और यदि अच्छा लगा तो जुड़ जाते हैं।
तो मैं जो सोचता हूँ वो ये कि हम भारत के अलग-अलग राज्यों से एक एक सर्वश्रेष्ठ व्यंजन चुनें अपने रेस्टोरेंट के लिए और रेस्टॉरेंट का नाम रखें
'डिश एंड क्लिक'

हर आने वाले परिवार की फ़ोटो उनके परिवार के साथ खाना सर्व होने के पहले ही क्लिक करें और जाते समय उन्हें ये शानदार फ़ोटो निःशुल्क गिफ्ट करें।
यदि वो और कॉपी चाहें तो पैसे लें।

इससे तुम्हारी फोटोग्राफी औरों से अलग और बेहतर है लोगों को पता भी चलेगा और इस अज़ीब प्रयोग की चर्चा भी होगी।
हम विज्ञापन में भी क्लिक एंड डिश के नयेपन के विषय में लोगों को बतायेंगे।
हम नियमित कस्टमर्स की यादों का एक एल्बम बनाएंगे।

साथ ही हम इंटीरियर तुम्हारे खींचे शानदार फोटोग्राफ्स से करेंगे।"
दोनों आशंकित से सुन रहे थे।

विजय लौट गया था, इंग्लैंड कुछ उम्मीदें जगा कर। रास्ता बता कर। पथ प्रदर्शक भले ही साथ न चले, लेकिन मंज़िल तक पहुँचाने में अहम् मददगार होता है।

एक वर्ष बाद आनंद, विजय को फ़ोन करता है, और कहता है, आईडिया बेहद कामयाब रहा। मुझे बेहतरीन फोटोग्राफर के रूप में भी ज़्यादा से ज़्यादा लोग जानने लगे हैं।
जल्द ही डिश एंड क्लिक की कुछ और ब्रांच खोलूंगा।

आनंद स्टेशन गया उन कुलियों से मिलने और उस ऑटो वाले से मिलने जो उस सुबह स्टेशन पर मिले थे। उन्हें वो अपने साथ काम करने का ऑफर देने गया था, अच्छी पगार पर। उसने ऑटो वाले को ऑटो में पानी, संगीत और अख़बार रखने की भी सलाह दी थी।

ज़िंदगी के स्टेशन पर रुकी उसकी गाड़ी चल पड़ी थी।

।। मेरा चैंपियन ।।

सुदूर ब्राज़ील के एक राज्य का फुटबॉल कप्तान था मुगामू।
22 वर्षीय हट्टे-कट्टे मुगामू को ब्राज़ील की राष्ट्रीय टीम के चयनकर्ता एक उभरते सितारे के रूप में देख रहे थे।
घर में धनाभाव होने की वजह से उसे क्लब फुटबॉल खेलने का मौका देर से मिला था। लेकिन जब मिला तो उसके सीखने की ललक, तेज़ सुधार, जोश, ज़ज़्बे और तेज़ी ने उसे बहुत जल्द राज्य टीम का कप्तान बना दिया था।
कितने ही हारे हुए मैच वो ड्रा में बदलवा देता या जितवा देता।
कभी हिम्मत नहीं हारता। न ही अपनी टीम को हिम्मत हारने देता।
फुटबॉल उसका प्यार था, जूनून था।
वो सबसे पहले मैदान आता, और सबसे बाद जाता।
बेहद सख्त कप्तान। आलसी खिलाड़ी को बहुत डाँटता।
कई बार साथी खिलाड़ी उसके इस रवैये से परेशान भी हो जाते और पीठ पीछे बुराई भी करते।

आज एक अहम् मैच था। अन्तर्राज्जीय फुटबॉल का फ़ाइनल। इस मैच को जीत उसकी टीम राष्ट्रीय चैंपियन बन सकती थी पहली बार। साथ ही मुगामू का चयन राष्ट्रीय टीम में होना पक्का हो जाना था।
आज उसने अपने पिता को बुलाया था बड़े प्यार से अपना मैच दिखाने। पिता बिल्कुल भी आना नहीं चाहते थे लेकिन वो माना ही नहीं।
उनका पुराना पसंदीदा काला कोट जो वो माँ की मृत्यु के बाद पहनना छोड़ चुके थे मुगामू ने निकाला था और प्रेस कर उन्हें पहना दिया था।
काले जूते पॉलिश कर उन्हें पहनाये थे।
दारू की बोतल उनके हाथ से छीनकर अलग रख दिया था।
मुगामू ने कहा था, "डैड आज मुझे मेरे पहले कोच की ज़रूरत है, दुनिया का सबसे अच्छा कोच।'

उसके पिता एक असफल फुटबॉलर और असफल फुटबॉल कोच थे। लेकिन क्लब फुटबॉल के पहले जो भी फुटबॉल उसने सीखी थी अपने पिता से ही सीखी थी। जब वो उनके साथ खेलता छोटे-छोटे पैरों से छोटे से मैदान पर तो वो जानबूझ कर हार जाते और बच्चा मुगामू इस जीत से बहुत खुश होता।
शायद दुनिया का हर पिता अपने बच्चे से हार कर खुश होता होगा। ये एक ऐसी सार्वभौमिक हार है जो जीत से लाख गुना ज़्यादा मज़ेदार है। और वो हारने के बाद मुगामू का माथा चूमते और आसमाँ देख चिल्लाते
'मेरा चैंपियन।'

जब भी वो और बच्चों के साथ खेलते हुए अच्छा खेलता चिल्लाते
'मेरा चैंपियन।'

वो मेरा चैंपियन सुनने को ही और मेहनत करता।

उसे याद है उसके पिता ने अब फुटबॉल खेलना छोड़, सिखाना शुरू किया था ।
उसकी माँ बताती थी कि उसके पिता एक बेहतरीन फॉरवर्ड खिलाड़ी थे, लेकिन एक चोट के बाद वो अच्छा नहीं खेल पाये थे। वो उनकी पुरानी तस्वीरें दस नंबर की जर्सी वाली देख खुश भी होता, और दु:खी भी कि काश उन्हें मैच खेलते देख पाया होता।
वो अब फुटबॉल सिखाते छोटे बच्चों को लेकिन उनकी फुटबॉल कोचिंग भी ज़्यादा नहीं चली।
और फिर वो धीरे-धीरे शराब की गिरफ्त में आते चले गए। दिन-रात पीते।
किशोर मुगामू देख सकता था कि
पिता इतने कुंठित हो गए थे फुटबॉल से कि मुगामू को फुटबॉल नहीं खेलने देते अब। वो घर में फुटबॉल छुपा कर रखता। वो नहीं चाहते थे कि उनका बच्चा भी उनसा बने।
अब वो चुपचाप प्रैक्टिस करता।
वो कितने ही मैच अब जीतता, लेकिन उन्होंने 'मेरा चैंपियन' कहना बंद कर दिया था।
एक दिन स्कूल फुटबॉल टीम का कप्तान बन कर आया था।
एक दिन चैंपियन ट्राफी लेकर भी आया था लेकिन पिता ने नहीं कहा था, 'मेरा चैंपियन।'
मुगामू को चाहे जितने मैडल मिलें लेकिन उसे अपने पहले कोच और पिता से सुनने वाला 'मेरा चैंपियन' जैसी खुशी कभी नहीं मिलती।
और वो उसे ये खुशी नहीं देने वाले थे। शायद कभी नहीं।
मुगामू के खून में पिता से मिली फुटबॉल पिता के खून में मिली दारु और कुंठा नाम के 'डिफेंडर्स' से कहीं ज़्यादा तेज़ थी।

दर्शकों से खचाखच भरा स्टेडियम। उमंग, उल्लास और जीवन के नशे में चूर युवक, युवतियाँ।
छोटे-छोटे बच्चे, बूढ़े सब आये थे फाइनल मैच देखने।
आत्मविश्वास और ऊर्जा से लबरेज़ मुगामू। दस नंबर की पीली जर्सी में चीते-सा लगता।
पिता को उसने सबसे आगे वाली दर्शक दीर्घा में बिठा दिया था।
मैच का फर्स्ट हाफ बेहद रोमांचक चल रहा था।
मुगामू को एक पास मिला था, और
मुगामू तेज़ी से चार खिलाडियों को छकाते हुए फुटबॉल को गोल के करीब ले गया था, सारे दर्शक खड़े हो गए थे रोमांच से बस पिता को छोड़।
और मुगामू ने गोल कीपर के बायीं ओर से फुटबॉल गोल पोस्ट में डाल दी थी। जब साथी खिलाड़ी खुशी से दौड़ रहे थे उसकी ओर मुगामू की नज़र काले कोट वाले पिता पर थी।
हाँ वो भी खड़े दिखे थे कांपते हाथों से हाथ लहराते।
दूसरे हाफ की शुरुआत में ही मुगामू ने एक तेज़ आक्रमण किया था। मैदान के बीच से गेंद को ले कर गोल पोस्ट के करीब पहुँच गया था फिर सारे दर्शक खड़े हो गए थे, इस बार वो काला कोट भी। लेकिन जैसे ही शॉट लगता मुगामू अचानक गिर पड़ा ।
सब अवाक् थे।

गोल नहीं हो पाया था।
एक सन्नाटा....।
साथी खिलाड़ी दौड़ कर गए थे मुगामू के पास, तुरंत मेडिकल टीम पहुँची थी।
वो काले कोट और कांपते हाथ टकटकी वाली आँखों से देख रहे थे मुगामू के छाती पर बार-बार प्रेशर दिए जा रहे। और कुछ ही देर में उसे मेडिकल टीम एक स्ट्रेचर में लेकर चली गयी थी।
मैच फिर से शुरू हो चुका था। दर्शकों का सबसे चहेता खिलाड़ी मैच में नहीं था, लेकिन मैच तो था। दुनिया किसी के लिए नहीं रूकती, मैच भी दुनिया-सा लगा था उस काले कोट वाले को, उसके हाथ अब और भी कांप रहे थे।

मुगामू को स्टेडियम में ही बने बड़े से आकस्मिक चिकित्सा के कमरे में लाया गया था।
एक डॉक्टर ने बाहर आ कर समझाया था कि मुगामू को सडन कार्डियक अरेस्ट हुआ है। जिसमें अचानक हृदय गति रुक जाती है।
उसे तीन बार शॉक दिए जा चुके है, कुछ देर और कोशिश की जायेगी। उसकी सासें और धड़कन दोनों रुक चुकी हैं, उसे होश भी नहीं है।
काले कोट वाले ने कांपते हुए पूछा डॉक्टर से, "ये फुटबॉल खेलने से हुआ है न"।
जब भी वो फुटबॉल बोलता दुनिया की सारी नफरत इस एक शब्द में समा जाती।
डॉक्टर ने कहा, "नहीं सडन कार्डिएक अरेस्ट किसी को भी कभी भी हो सकता है। मुझे भी हो सकता था इसका उनके खेलने से सीधा सम्बन्ध नहीं। यदि ऐसा घर में होता तो तुरंत इतनी कोशिश का मौका भी नहीं मिल पाता।
इधर मैच में मुगामू की टीम मुगामू के जाते ही हारना शुरू हो गयी थी। तीन- एक से दूसरी टीम जीत चुकी थी।
दोनों टीमों के खिलाड़ी भी आकस्मिक चिकित्सा के बाहर खड़े थे।
काले कोट वाला कुर्सी पर बैठे बैठे बाजू में रखी एक फुटबॉल को उधेड़ रहा था कांपते हाथों के नाखूनों से।

गोल फुटबॉल बहुत पहले ही उन्हें एक बड़ा शून्य लगने लगी थी, आज गोल दुनिया उससे भी बड़ा शून्य लग रही थी। मानो ये दुनिया भी फुटबॉल हो.....वही दु:खदायी फुटबॉल।

तभी एक डॉक्टर बाहर आया, और कहा, 'वो बच गया।
आप सब को बुला रहा है। समझिये वो मरकर ज़िंदा हुआ है। बहुत कम लोग ही इस स्थिति से बाहर आ पाते हैं।"
मुगामू के दोस्त और टीम के कोच ने काले कोट वाले को पहले साथ लिया फिर पीछे पीछे दोनों टीम के खिलाड़ी अंदर गए।
मुगामू बिस्तर पर पड़ा, ऑक्सीजन मास्क लगाया हुआ था।
पिता और कोच आजू -बाजू थे।
उसने पहला प्रश्न जो पूछा उसे सुन सबकी आँखों में आँसू थे।
और वो प्रश्न था..... टीम जीती कि नहीं ??
पिता उससे लिपट गए थे।

माथा चूमा।
फिर कांपते हाथों को ऊपर उठाया
और ऊपर देख चिल्लाये
'मेरा चैंपियन' |

।। तीसरी-बेग़म ।।

बादशाह, चौथी दुल्हन ले आये थे। कमसिन, ख़ूबसूरत।
पर इत्ती भी नहीं जितनी 'वह तीसरी दुल्हन' खुद को समझती थी। खुशामदीद तो करनी ही थी चौथी बेगम की । जैसे उसकी की गई थी बाकी दो बेगमों के द्वारा।

महल में शहनाई, ढोल नगाड़े, मिठाईयां, खूबसूरत नचनियों का नाच, सोने, हीरे पन्नों से जड़े फूलदानों पर नए ताज़े फूल रखे गए थे।
बंदियों, कनीज़ों, लौंडियों को कपड़े दिए गए थे।
सुगंधित इत्रों से लबरेज़ शमादानों से रोशनी महल के भीतर नया उजाला भर रही थी।

यह तीसरी बेग़म, नई नवेली दुल्हन को कनखियों से देख लिया करती। हौले हौले से वह तख़्त की ओर चल रही थी जहां बादशाह पहले से ही विराजमान थे। चिकन का भारी लहंगा, बड़े बड़े मोतियों वाला,सुर्ख लाल ओढ़नी से ढका आधा चेहरा दूध में गुलाब को घोंट कर बनाया लग रहा था। बड़ी बड़ी आंखें पूरे महल को ख़ुद में डुबा दें कुछ ऐसी थीं।

पहली दो बेगमें इस अज़ीब जज़्बातों की आदी हो गई थीं। आज इस तीसरी बेगम को अहसास हो रहा था कैसा लगा होगा उन दोनों को, मेरी खुशामदीद करते हुए।

तीनों बेगमों को तुर्की से मंगाए गए ख़ास कारीगरी के हीरे के हार दिये गए थे। पहली दो बेगमें बड़ी खुश थीं। यह तीसरी
अपने आराम गाह में हीरे के हार को बिस्तर पर पटक, अपना मुखड़ा निहार रही थी। नीली आंखों में आंसू की बूंदें थीं।

बांदी शरबत ले आयी थी, चांदी के गिलास में, ताज़े गुलाब
की पंखुड़ियों को डाल।
"सरकार, उदासी है न ? मैं समझ सकती हूँ।"
तीसरी बेग़म ने आईने से पलट, बांदी को सीने से लगा लिया था और फफक, फफक कर रो पड़ी थी।
अब बादशाह, यहां महीनों नहीं आएंगे, वैसे ही जैसे मेरे आने पर पहली दो बेग़मों के पास न जाते थे।
बादशाहों की बेग़म होना कौन कहता है ?
अच्छा होता है, सोने के पिंजड़े में कैद चिड़िया।

"हुज़ूर, ऐसा न कहें । कहाँ हम जैसे लोग, कहाँ आप।" बांदी ने ढाढस बढ़ाते कहा था।

हवामहल के हरम को तो उसने कभी जोड़ा भी नहीं था। वह तो बादशाहों की शान थी। ताकत, मर्दानगी, जीत का सबूत।
हरम में जितनी लौंडिया उतना ताकतवर बादशाह।

यूँ वह महल के उस आलीशान कमरे में है, जहां ईरानी कालीन था, हीरे जड़े झूमर, पंखा

झलती कनीज़ बांदियाँ, मखमली मुलायम बिस्तर जिस पर रोज़ बांदियाँ गुलाब की पंखुड़ियां बिखेर जातीं। कमरे से बाहर को खुलती खिड़की, जिससे हरे भरे बड़े बागीचे में रंग बिरंगी चिड़िएं उड़ती दिखतीं, हिरण अटखेलियां करते। हवा उसके बालों को छू कर , सहला कर चले जाती। लेकिन अकेलापन , निरुद्देश्य जीवन और त्याग दिए जाने का अहसास उसे खाये जाता। ऐसा नहीं कि बादशाह नहीं आते कभी। माह दो माह में आते। हाल चाल पूछते, कभी बाली कभी पन्ने जड़ी ओढ़नी दे जाते। लेकिन
वह समझ नहीं पाती कि, हरम में मौजूद लौंडियों और उसमें क्या फ़र्क है। यही न कि वो एक साथ रहती हैं, उनके कमरे आलीशान नहीं हैं।

खिड़की की पट्टी पर बैठे बाहर ताकते,
पंखा झलती बांदी से उसने कहा था

"सफीना, तुझे कब मैंने बांदी माना है, तू मेरी सहेली है। मैं
उन हिरणों सी, उन चिड़ियों सी उस हवा सी आज़ाद होना चाहती हूं।"
"हुज़ूर, अल्लाह रहम करे, ऐसा न बोलो। बादशाह मार डालेंगे। काल कोठरी में डाल देंगे।"
"सफीना, मौत, इस ज़िन्दगी से अच्छी ही होगी शायद।"

यूँ दिन कट रहे थे। वो खिड़की, हवा, हिरण, बांदी, चिड़ियां उसके साथी थे।

बाकी दोनों बेगम भी उससे मुँह ही फुलाई थीं। वैसे ही जैसे वो चौथी से मुंह फुला कर बैठी थी। चौथी बेगम कभी आई भी, दोस्ती करने तो इस तीसरी बेग़म ने नीली आंखों में सुर्ख़ पलाश से खिला लिए थे। तल्ख़ लहज़े में बिना कुछ कहे भगा दिया था। उसके दिल को ठंडक भी पंहुची थी।

खिड़की से बाहर एक दिन उसे बलिष्ठ, तीख़ी मूछें ताने सफ़ेद घोड़े पर तलवार बाजी करते एक युवा योद्धा दिखा था।
महीनों से तन, मन से अतृप्त जिस्म में सिहरन दौड़ गयी थी।
दिल धक धक कर कुछ कहने लगा था। हिरणों की मासूम आँखें खिड़की से झांकती रानी पर ठहर गई थीं। जैसे जो कुछ अभी घटा था वो आँखें समझ गयी हों।

"सफ़ीना, देख ये कौन है। मर्द ऐसे भी पुरकशिश, हसीन हो सकते हैं।"
"अल्लाह रहम करे, सरकार पराए मर्द को ऐसे न देखें। वो बादशाह के सेनापति उमर हैं।"

तभी सेनापति ने एक तीर निकाल हवा में उड़ती चिड़िया पर चलाया था। दूध सी सफेद चिड़िया पंख फड़फड़ाती गिर पड़ी थी। खून के लाल छींटे लिए।
"हुज़ूर, सरकार का निशाना क्या ज़बरदस्त था न।"
बेग़म ने चिड़िया का यह हश्र देख धड़ाक से खिड़की बंद कर ली थी।
स्त्री शरीर से आकर्षित हो तो सकती है, लेकिन पुरुष में मौज़ूद करुणा उसे पिघलाती है।

अब रोज़ शाम उन्हें हिरणों, चिड़ियों, हवाओं के साथ साथ उस बलिष्ठ योद्धा उमर का

इंतज़ार भी रहने लगा।
कभी वह अकेले आता, कभी सैनिकों के साथ।
उद्धान में युद्धाभ्यास, शिकार, युद्ध रण नीति जैसी मज़ाकरात चला करतीं।

तेज़ उमर की आंखों ने देख लिया था खिड़की से तीसरी रानी को निहारते। कुछ देर को आंखें मिली थीं। तीसरी रानी, को लगा था आज़ादी या मौत दोनों ही इन बलिष्ठ भुजाओं से होकर गुज़रेंगे। और दोनों ही उसे अभी की ज़िंदगी से ज़्यादा मंज़ूर हैं। उन्होंने पलकें नहीं झपकी थीं।
उन्हें अहसास था बादशाह का डर सेनापति को पहल न करने देगा। उसे ही पहल करनी होगी।

"सफीना, कल तू एक संदेशा दे सकती है, उनको ?"
मैंने बुलाया है ।
लेकिन ज़रा 'संभल' कर आयें।
बादशाह 1 हफ़्ते से शिकार पर गए हैं सुना है। कुछ दिन और लगेंगे आने में।

अगले रोज़ ही अल्लाह रहम करे, रब्बा ख़ैर करते करते चहेती बांदी सफ़ीना उन्हें चुपचाप कह आई थी। सेनापति की तीखी मूंछों पर ताव और बढ़ गया था। एक मुस्कुराहट थी।

अगले दिन महलों से सभी लौंडों, तातारी औरतों, सैनिकों को
मैदान में बुलाया गया था सेनापति द्वारा, जंगी खेल के लिए।
महलों में सिर्फ़ बांदियाँ रह गई थीं।
तीसरी रानी मुस्कुराई थी इस आदेश पर। मैदान में सब एकत्र हो रहे थे।

सूरज डूबने को था, हल्की मद्धम लालिमा आसमान पर बिखेरते हुए। हवा शांत थी। ख़ुशगवार शाम में सोने के शमादान सुगंधित तेलों वाले रानी साहिबा ने बांदी को बोल महीनों बाद जलवाए थे।

बलिष्ठ भुजाओं, और छाती पर कवच, बगल में तलवार, दूसरी ओर कटार लिए सेनापति उमर सामने खड़ा था, उस आलीशान कमरे में।

"उड़ती चिड़िया पर भी इत्ता अच्छा निशाना लगाते हो। लेकिन, मासूम का कत्ल क्यों ?
"रानी साहिबा, क्या यही कहने बुलाया था ?"
नहीं, तुम्हें ईनाम देने । ज़लते शमादान के पास पंहुच रानी ने कहा था। शमा से आती लौ उसके यौवन, सौंदर्य, को
आफ़ताब सा रौशन कर रही थी। नीली आंखों में वो सब था, जिसकी उम्मीद में सेनापति वहां तक आया था। महल को खाली करवा।

"क्या ईनाम दोगी रानी साहिबा
"बादशाह ने पहले ही सल्तनत का दूसरा सबसे बड़ा ओहदा दिया हुआ है मुझ नाचीज़

को।"

"बादशाह की एक और चीज़ है, बड़ी कीमती। इतनी कीमती जिसके लिए जान देने की कसमें खाते थे बादशाह।
तुम्हें हम वो देना चाहते हैं। क्योंकि अब बादशाह को उसकी जरूरत नहीं।"

"रानी साहिबा सैनिकों को ज़ल्द भेजना होगा। आप सीधे बोलें।"

"उमर नाम है न आपका, इतने भी न समझ नहीं हैं आप कि इतना भी न समझें।
"हम तुम्हें हमीं को देना चाहते हैं। ईनाम में।"

उमर के दिल में वह हुस्न, सुर्ख लाल होंठ, नीली आंखें, रोशनी से दहकता रंग भीतर तक समा गया था।
"बादशाह को पता चला तो ?"

रानी जम से खिलखिला कर बोली तो क्या हुआ
"मर जायेंगे...दोनों।"

उमर आगे बढ़ गया था।

तीसरी बेग़म बलिष्ठ भुजाओं के आगोश में थी।
सफीना ने बाहर की रोशनियां मद्धम कर दीं थीं। जिसका मतलब होता था, रानी आराम कर रही हैं,या बीमार हैं।

शमादान ख़ुशबू और रोशनी बिखेरते बुझ चले थे।
महीनों से लगी बदले की आग को रानी ने कुछ यूं बुझाया था।

अगले दिन ख़ामोश बांदी से उसने पूछा था, "सफ़ीना मैंने ग़लत किया न यही सोच रही है न तू।"
"अल्ला कसम हुज़ूर ये नहीं सोच रही। बस आपकी फिक्रमंद हूँ। कहीं किसी मरदूद की नज़र न लग जाये।बादशाह को चुगल न दे।"

रही बात आपकी तो सरकार, औरत इरतकाब कर ले एकबार भी तो ज़िनाह है, मर्द चाहे जो करे। हुज़ूर, धोख़ा खाया मन बग़ावती हो जाता है, वो फ़िर जायज़, नाज़ायज़, हराम, हलाल नहीं देखता। अल्लाह जानता है आप पाक हो। अल्लाह की बनाई ख़ूबसूरत जेहनियत की मालकिन सुल्ताना हो।"

बांदी ने तसल्ली भर को यह कहा था या सच में वो ऐसा सोचती थी क्या पता...
लेकिन हवा सी उड़ते रहना था, रानी को तो।
उमर, बादशाह जब जब बाहर जाते किसी न किसी बहाने से आ जाता। कभी भेष बदल ज़्यादातर खिड़की से। रस्सी के सहारे।

रानी इस नई मोहब्बत से खिल उठी थीं। अब दिनभर हंसा करतीं। पिंजड़ों में बंद सारी चिड़ियों को वो उड़ा आई थीं।

बांदी ने कहा भी रानी साहिबा आसमान में इन चिड़ियों को गिद्ध पकड़ के मार देंगे। न ही दूसरी चिड़िये उन्हें अपनाएंगी। न इन्हें खाना मिलेगा। मर जाएंगी। दो दिन में।

"रानी ने दोनों हाथों से, उस पीली, छोटी चिड़िया को छोड़ते हुए कहा, देखो फ़िर भी तो ये उड़ रही है। देखना वो फिर इन सोने के पिंजड़ों में लौट कर नहीं आएगी। हां शायद वो मर जाएंगी। आज़ादी, दो पल की ही सही मौत और ग़ुलाम ज़िन्दगी से बेहतर।

उमर उस रात खिड़की के रास्ते आया था। महल में उस ओर घुप्प अंधेरा होता था जहां खिड़की खुलती थी। उस ओर से उमर ने सैनिकों को भी हटाया हुआ था। जिससे वह बिना नज़रों में आये आ सके।
महल में हल्की काना फूसी होने तो लगी थी, तीसरी बेग़म को लेकर। लेकिन किसी की हिम्मत न थी कि ज़्यादा ज़ोर से कुछ बोल जाए।
उमर ने बादशाह के लिए बहादुरी से अनेकों लड़ाइयां जीती थीं। होशियार, बलिष्ठ, चालाक और बहादुर। तभी बादशाह का चहेता था।

उमर ने आज अज़ीब बात कही थी, "शमा, क्या हम यूँ ही छिपते छिपते मिलते रहेंगे हमेशा।"
हां वह रानी साहिबा को शमा ही कहने लगा था।
तो क्या करें उमर ?

"सुनो, किसी से न कहना, मेरे साथ तीस फ़ीसदी फौज़ और
वज़ीर हैं। हम बादशाह को ख़त्म कर तख़्ता पलट सकते हैं।
बादशाह के मरते ही, बाकी की फ़ौज मेरे मातहत आ जायेगी। कोई चूं न करेगा। लेकिन बादशाह को मारना आसान नहीं। तुम उन्हें किसी तरह यहां बुला लो, और मुझे पहले से पता हो, ये खिडक़ी खुली हो तो हमारा काम हो जाएगा। और तुम मेरी पहली बेग़म बन कर रहोगी।"

"पहली बेग़म, उमर मेरे पद में इज़ाफ़ा करने वाले हो। तीसरी से पहली,है न?
आख़िरी बेग़म बोलते तो ख़ुशी होती।"
बादशाह को मारना चाहते हो। तरीका तो अच्छा है।
और कौन है जो साथ देगा...

"वज़ीर, यूसुफ़, आसिफुतुल्लाह, उदयभान, ये सब मेरे साथ हैं। अंदर ही अंदर सारी तैयारियां हो गई हैं। आराम तलब, जिस्म फ़रोश बादशाह को खत्म करने का वक्त आ गया शमा जान। बोलो साथ दोगी?"

बस ये बताओ "कहीं तुमने मुझसे मोहब्बत सिर्फ़ इसलिए तो नहीं की ? सिर्फ इसलिए तो

इस खिड़की के पार के सैनिक और मशालें तो नहीं हटवाई। कहीं इसलिए तो खिड़की से चढ़ कर बार बार नहीं आते हो, कि आखिरी दिन कोई गलती न हो ?

उमर ने गोरे मुलायम गालों को अपने दोनों हाथों से थाम लिया था। शमा जान, मैं आपसे मोहब्बत के लिए ऐसा कर रहा हूँ। जिससे मुझे छुप छुप कर आपसे न मिलना पड़े। आप मेरी रहो, बस मेरी।

ठीक है, अमावस की रात को मैं बुलवाऊंगी हर हाल में उन्हें,
देखो ये लाल शमा बुझी रहे तो समझना कि वो नहीं आये हैं। जली रहे तो समझ जाना सब ठीक है और तुम्हें आना ही है। तुम्हारे साथ शामिल सैनिक किधर रहेंगे ?

वो महल के सभी खम्बों में तैनात होंगे, दरवाज़े के बाहर पूरी टुकड़ी होगी। बादशाह के वफ़ादार सैनिकों को कानों कान ख़बर न होगी।
"देखो, कोई चूक हुई तो दोनों मारे जाएंगे।"
"शमा जान मुझसा लड़ाका हो और तुम साथ हो तो कोई चूक न होगी।"
अमावस की काली, घनी रात आ गयी थी। रानी ने खिड़की खोल कर देखा था। घुप्प अंधेरा था। बागीचे में लगे पेड़ तक न दिख रहे थे।
खिड़की के दोनों किवाड़ खोल दिये थे, रानी ने।
बांदियों को पहले ही छुट्टी पर भेज दिया था।
बादशाह महल में मखमली कमरे में मौजूद थे।

तीसरी बेग़म ने ख़ुद लाल शमा जलाई थी।
हल्की मद्धम रोशनी नक़्क़ाशी दार दीवारों छतों पर अनेकों आकृतियां बना रही थी। तीसरी बेग़म के चेहरे पर दृढ़ निश्चय, धोख़ा, बदला जैसे अनेकों भाव शमादान की लौ की तरह, झिलमिलाते और चले जाते थे।

तभी खिड़की पर अंधेरे से निकल कोई तेज़ आकृति भीतर आई थी।
जिसके पदचाप की आहट मात्र से 50 मशालें उस बड़े कमरे में जल उठी थीं।
मशालों और शमा की रोशनी से विस्मित उमर
के गले पर 50 चमकती तलवारें रखी थीं।

बादशाह को सामने देख, अपनी शमा को ज़रा भी उद्वेलित होते न देख वो बेहद अचंभित था।

बादशाह की आवाज़ गूंजी थी
"उमर तुमसे ये उम्मीद न थी। मुझे मारना चाहते थे ?
भला हो, बांदी और मेरी इस प्यारी रानी का जिन्होंने तुम्हारी
कुछ बातें जाने कैसे पता कर लीं।"

गले पर चुभती तलवारों के बीच उमर ने कहना चाहा,

तीसरी बेग़म, साज़िश में शामिल थीं और मुझसे उनके नाज़ायज़ संबंध थे। बादशाह कई बार इस बिस्तर पर मैं इसी खिड़की से आया हूँ।

लेकिन पहला शब्द निकलता, इसके पहले ही तीसरी बेग़म ने
कटार बिजली सी तेज़ी से उमर के गले पर चला दी थी।

"मेरे शौहर को खत्म करोगे ? तख़्ता पलटोगे ?”

पूरी सल्तनत में इस घटना की ख़बर पंहुच चुकी थी। तीसरी बेग़म की बड़ी तारीफ़ हो रही थी।

रानी की कंघी करते, सफ़ीना बांदी ने कहा,
सरकार आपने ये क्या किया, और क्यों ? अपनी ही मोहब्बत का गला रेत दिया ? अपनी ही आज़ादी को फ़िर सोने के पिंजड़े में कैद कर लिया। क्यों ?

सफ़ीना उस रात जब उमर ने मुझे यह साज़िश बताई तब पूरी शिद्दत से उसने कहा था वह मेरी मोहब्बत के लिए यह कर रहा है।
जबकि, मोहब्बत के रंग में डूबी औरत उन जज़्बातों को भी पहचान जाती है जो मर्द ढंक रहा होता है।
जब उसने मेरा माथा पकड़ आंखों में आंखें डाल, वह सब कहा था तब मुझे सिर्फ और सिर्फ झूठ दिखा था।

मुझे मोहब्बत के जाल में फंसाना उसकी साज़िश का एक हिस्सा था। साज़िश पहले बनी होगी, मुझे अपना बनाना बाद में। पूरा नाटक सल्तनत के लिए था। सोचो कितना बड़ा धोखा था। मैंने बादशाह और उमर दोनों से बदला लिया है।

लेकिन सल्तनत, देश, प्रजा से धोखा मैं नहीं कर सकती थी।

।। खज़ाना ।।

(बच्चों के लिए)

200 वर्षों पूर्व की बात है। एक राजा थे छोटा सा, संपन्न राज्य था। हरा, भरा प्राकृतिक सम्पदाओं से भरपूर। राजा का महल भी बड़ा ही सुंदर था।
दरबार में शानदार सिंहासन, झूमर, नक्काशी। मंत्री, दरबारी, सेनापति, नौकर,चाकर, नर्तकी,दासियाँ। मनोरंजन को कवि,नट सभी आया करते जब तब।

राज़ा लंबे, अच्छी कद काठी के, सांवले, लंबे घुंघराले बाल और तावदार मूंछों वाले थे।
रानी भी बड़ी सुन्दर, मीठा बोलने वाली, हंसमुख थी।
राजा कठोर न थे सब को साथ लेकर चलने वाले, तो उनकी प्रसिद्धि भी बहुत थी । उनके लिए सम्मान दिल से था लोगों में।
अंहकार विहीन ह्रदय ।
डर से मिला सम्मान सिर्फ सम्मान का आभास देता है जबकि दिल पर जीत हासिल कर मिला सम्मान
प्रेम का ही एक रूप होता है। दिल से मिला सम्मान व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति में समाहित सा कर देता है।

लेकिन एक समस्या थी, राजा कुछ दिनों से महसूस कर रहे थे कि सबकुछ होते हुए भी वे दुखी थे। उन्होंने बहुत सोचा कि सबकुछ तो है मेरे पास फिर क्या दुःख है। शायद उनका राजकुमार उन सा प्रतिभाशाली नहीं ये चिंता कि पड़ोसी राज्य आक्रमण कर देगा ये चिंता। कुछ न समझ आये। सबकुछ होते हुए भी दुःखी।
रानी ने भी कहा कि "पूरे राज्य और आसपास के राज्य भी मिला लें तो आपसा जीवन तो किसी का भी न होगा राजन। सबकुछ तो है आपके पास। छोटी मोटी आशंकाएं तो हर जीवन में निहित होती हैं।"

जब बात का असर न हुआ तो राज़ा के हितैषी राज़मंत्री ने कहा "राजन इस बार कुश्ती प्रतियोगिता न रख सबसे सुखी इंसान को ढूँढने की प्रतियोगिता रखते हैं और यह काम हम चुप चाप करेंगे। जिससे कोई नकली अभिनय न करने लगे।"

"हम अपने विश्वसनीय गुप्तचरों को लगाएंगे अगले एक माह में सबसे सुखी व्यक्ति को खोजने। दैनिक सूचना हम स्वयं लेंगे। साथ ही आपकी यह समस्या हम किसी को भी नहीं बता सकते,राज़ वैद्य को भी नहीं। जनता में बुरा सन्देश जायेगा और जो महामानव सी आपकी छवि है उसे भी नुकसान पंहुचेगा।"

राज़ा ने कहा "ठीक है।"
"फिर उस व्यक्ति से राज़ हम पूछेंगे खुशी का और उसे सम्मानित भी करेंगे। और उसके उस खुशी के राज़ से आप अपनी समस्या शायद हल कर पाएं।"

और यूँ रोज़ रात राजमंत्री, रानी और राज़ा को विश्वसनीय गुप्तचर खुश दिखने वालों की जानकारी देने लगे। राजमंत्री उनका नाम, पता और लेखा जोखा भी रखने लगे।
लेकिन रोज़ाना लगभग एक से ही किस्से सुनने मिलते तीनों को।
गुप्तचर बताते "संसार में बड़ा दुःख है राजन, कोई स्वयं बीमार है। किसी की फसल बर्बाद है। किसी का रोज़ पत्नी से बहुत झगड़ा होता है। किसी का बालक स्वस्थ नहीं। किसी पर बड़ा लगान है। किसी की जाति की वज़ह से बड़ा शोषण है। किसी को अच्छी नौकरी नहीं। तो सभी को समस्या है लेकिन ऊपरी तौर पर ये लोग बड़े खुश दिखते हैं। जब हम छद्म दोस्ती कर इनकी अंदरूनी परिस्थितियां समझते हैं, तब ये समस्यायें वे दुखी हो कर कहते हैं।"

फिर एक दिन एक गुप्तचर ने बताया कि, "दो व्यक्ति ऐसे मिले राजन जो बिना बात के और बात, बात पर दुखी हों।"

रानी, राज़ा की तरफ देख मुस्कुराई, मानो कहना चाह रही हों "कि लो तुमसे और भी लोग हैं। जैसे राज़ा वैसी प्रजा।"

लगभग एक माह बीता जा रहा था,पूरी तरह खुश एक भी व्यक्ति न मिला। सन्यासियों को भी टटोल आये थे जासूस लेकिन न मिला। राज़ा और निराश होने लगे। सभा में भी अब न आते। राजमहल में अब एक उदासी सी छाने लगी थी।

लेकिन तीसवें दिन एक जासूस जिसने अब तक एक भी व्यक्ति की सूचना न दी थी ने झुक कर प्रणाम किया। राज़ा,रानी और मंत्री तीनों अपने सिंहासनों पर बैठे सुन रहे थे।

गुप्तचर ने कहा राजन, एक नाई मिला। जो कि गाँव के छोटे से कच्चे मकान में रहता है। एक पत्नी है,दो बच्चे हैं। मैंने पूरे एक माह सिर्फ उस पर नज़र रखी।
वो घर घर जा कर और एक पेड़ के नीचे गमछा बिछा कर बाल काटता है। मैंने भी उससे बाल कटवाए और दोस्ती कर ली और बड़ी खुशी,हंसी की बातें करता है। घर पर भी खुशहाली है ,थोड़ी सी कमाई में भी। मैंने उसे एक माह में कभी दुःखी और निराश नहीं देखा।
मैंने उससे अंत में पूछा "कि भाई तुम अमीर नहीं फिर भी इतने खुश कैसे। तुम्हारा बेटा भी शायद तुमसा नाई ही बनेगा कोई राजकुमार नहीं।"

"तो राजन उसने जो कहा वो मैं आपको बताने से डर रहा हूँ कि कहीं आप उसका सर न कटवा दें,कारागार में न डाल दें। वो छद्म ही सही मेरा मित्र बन गया है। बड़ा ही अच्छा इंसान है राजन।"

राज़ मंत्री ने तेज़ स्वर में पूछा,"बोलो क्या कहा उसने।"

गुप्तचर डरते डरते बोला "राजन उसने कहा, मैं राज़ा से कहीं ज़्यादा अमीर हूँ और मेरा बेटा राजकुमार से ज़्यादा हुनरमंद।"

रानी और राज़ा ने एक दूसरे को देखा। मंत्री बोले "गुप्तचर तुम्हें हमने खुश इंसान को ढूँढने कहा था विक्षिप्त को नहीं।"
गुप्तचर बोला "महामहिम विक्षिप्त तो नहीं लगता। मैंने उससे पूछा कि भाई कैसे अमीर हो ज़्यादा, तो हंसकर बोला अपनी संपत्ति क्यों बताऊँ।"
रानी ने कहा,"फिर तो इससे मिलना होगा। शायद यही वो व्यक्ति हो जिसके पास कोई राज़ या खज़ाना छुपा हो ? उसे बुलवाओ।"

राजन बोले "नहीं काम हमारा है उससे तो हम स्वयं जायेंगे मिलने।"

और वे नाई के उस पेड़ के पास पंहुच गए। सुबह दस बजे होंगे। हल्की धूप थी।
राजा और मंत्री का घोड़ा नाई के पास रुकते देख गाँव वाले दंग थे। बच्चे दूर से छुप छुप लंबे चौड़े राजा को देख रहे थे।

नाई भी उठ खड़ा हुआ। उस समय कोई ग्राहक नहीं था उसके पास। लेकिन उसका 5 वर्ष का बच्चा सहम कर उससे चिपट गया था।

राजा ने पूछा "क्या तुम्हीं ने कहा था तुम मुझसे ज़्यादा अमीर हो ?"
नाई को उस गुप्तचर दोस्त का चेहरा याद आया।
लेकिन वो संयत रहा। उसमें सच्चाई का आत्मविश्वास था।
कहा हाँ राजन कहा था।
मंत्री ने कहा "तो बताओ अपना खज़ाना कैसे हो राजन से ज़्यादा संपन्न।"

"देखिये राजन ये जो सूरज आप देखते हैं न इसकी किरणें रोज़ मुझे आपसे ज़्यादा मिलती हैं। ये हवा हम सबके लिए बराबर है
लेकिन मेरे लिए ज़्यादा है,क्योंकि आप महल में होते हैं।
ये धरती भले आपके राज्य में हैं,लेकिन मेरे संपर्क में ज़्यादा है। अनाज, फल, जो आप खाते हैं, इन्हें रोज़ में उगते देखता हूँ।
तो प्रकृति ने मुझे भरपूर दिया है, आपसे ज़्यादा, आपको विरासत ने दिया है। राजन बस इसलिए कह दी ऐसी बात, आपका अपमान करना उद्देश्य न था।"

"तुम हमेशा खुश कैसे रहते हो ?"

"राजन, क्योंकि मनुष्य के रूप में सारी आवश्यकताएं जैसे खाना,पानी ,प्यार,सुरक्षा और पहचान रोज़ मिल जाती है।"
लोग मेरे काम से मुझे जानते हैं। अपने पुत्र को भी इस काम में पारंगत कर दिया है। बाकी ये प्रकृति मुझे खुशी देती है।
वो उड़ती चिड़ियाँ, बगुले,खेलते बच्चे,हवा, पत्नी की मुस्कराहट,मेरे ग्राहकों का खुश होना। मेरे पास इतना कुछ तो है।

राजन वहीँ बैठ गए उसके गमछे पर और कहा,

मुझे तुम्हारी ज़रूरत है,क्या सहायता करोगे?

"अरे राजन कैसी बात ??”

"नहीं,देखो मैं बिना बात ही दु:खी हूँ शायद। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तुम सहायता करो।"
और उस दिन से राजन रोज़ अकेले, आम आदमी बन उस नाई के साथ बाहर घूमते। उनके राज्य की धूप, हवा, पानी नदियां, खेत, बच्चे, पशु, पक्षी, मिट्टी, सब अब उनके थे सही मायनों में। वो खुश होने लगे थे। वो अपनी सांसों को मस्तिष्क में जाते महसूस करते। रुक जाते और हवा समाहित होने देते स्वयं में।
और उनके राजकुमार को तो मानो इसी की प्रतीक्षा थी, महल के बाहर की हवा। ओहदे को उतार, मनुष्य बन सैर कर पाने की स्वतंत्रता, मिट्टी में लोट पोट हो मित्र बनाने,चिड़ियों को दाने देने,कुत्तों संग खेलने की आज़ादी।

राज़ा घूमने के बाद, अच्छे से सभा करते। और उन्होंने उस नाई को अपना मित्र बता राज्य की प्रजा में खुशी का संचार करने मंत्री पद दे दिया था। आखिर उसने उन्हें स्वयं उनसे मिलवाया जो था।

।। अनगिनत आँखें ।।

वो आज फिर स्कूल से लौट, पढ़ने की कोशिश कर रहा था।
लेकिन रह, रह कर आँखें आंसुओं से डबडबा जाती थीं।

वो आठवीं में था, शांत, गंभीर, मासूम और प्यारा सा दिखता 12 वर्ष का बच्चा आदित्य।

पढ़ने में बहुत अच्छा था, शिक्षकों का चहेता। सभी शिक्षक बहुत तारीफ करते। उसके अनुशासन, याददाश्त, पढ़ाई, उत्तर लिखने और बोलने का तरीका, भाषण, सबकुछ विलक्षण सा। उसके शिक्षक कम उम्र में जीवन के प्रति उसकी गहराई से अभिभूत थे।

साथी छात्र उससे हमेशा उत्तर पूछते, कैसे और क्या पढ़ना है पूछते। टेस्ट होने पर उसके आसपास बैठना चाहते जिससे वो नक़ल करवा सके।

लेकिन फिर भी लगभग रोज़ वो शाम 4 बजे लौट, घर के बाहर एक बड़े से टीले पर अकेला बैठ, आसमान निहारता, पेड़ों को हिलते देखता। महसूस करता उनमें भी जान है। महसूस करता नहीं वो अकेला नही, हवा, आसमान, पेड़, दो पहाड़ों के बीच डूबता सूरज सबकुछ तो हैं उसके पास, उसके अपने।

आँखे तब भी डबडबा जातीं जैसे इस खूबसूरत सीनरी में बस एक झील की कमी हो। उसे अपने आंसू पसंद थे, उसे पता था जब भी ये निकलते हैं वो बेहतर महसूस करता है। ज़्यादा अच्छे से पढ़ पाता है।

उसकी दुनिया में उसकी माँ थी। वो भी 5 बजे तक घर आती, थक कर और आदित्य चाय बना कर ले आता माँ के लिए। वो रेडियो लगा लेती, घर घर की आवाज़ के साथ पंकज उधास की ग़ज़लें, गुलाम अली की ग़ज़लें और कुछ मोहम्मद रफ़ी, आशा के नग़मे उसके सरकारी घर के आँगन में कमरों में गूंजते रहते। वो इस आवाज़ के साथ पढ़ने का आदी था।

आखिर क्या था जो उसे रोज़ यूँ रुलाता था, ये प्रश्न दूर चुपचाप खड़े पहाड़ रोज़ पूछते, शाम 5 बजे का नारंगी सूरज उत्तर तकते तकते, थक कर सो जाता था रोज़। कभी कभार आसमान बादलों के साथ कुछ और आंसू भी भेज देता धरती को भिगोने।

क्यों ये मासूम बच्चा रोज़ अकेला आंसू बहाता है ये उत्तर भीगी धरती को भी न पता था।

पिता की मृत्यु अच्छा ही है 2 वर्ष की उम्र में हो गयी थी, इसलिए उसे अपने प्यारे पिता याद नहीं। पिता की याद का दुःख तो न था कमसे कम, हाँ पिता का न होना एक अहसास मात्र था। फिर माँ ने जॉब करते हुए भी, अकेले ही उसे अच्छी परवरिश दी थी।

हालांकि उसने माँ को कई बार परेशां, चिड़चिड़ाते और रोते भी देखा था। जब वो थोड़ा और छोटा था, माँ अपने स्कूल ही ले जातीं, जहाँ वो पढ़ाती थीं।

उसे याद है,
कैसे आदित्य की तारीफ़ मम्मी के साथी करते थे।

"बहुत सुन्दर है आपका बेटा, कितने सुन्दर बाल, सुन्दर आँखें बिल्कुल 'आप पर' गया है मीनाक्षी जी।"

और न जाने क्यों माँ को उसकी इन तारीफों से खुशी नहीं होती थी।" कभी हमें भी तो मौका दीजिये घर आने का।"

"यूँ अकेले रहते हो, क्या आपकी कोई ज़रूरतें नहीं" ?? समझ रही हैं न आप ??

माँ को अज़ीब नज़रों से घूर कर देखती उन आँखों में उसे कुछ अज़ीब लगता था, अज़ीब सा बुरा, अनजाने भय सा, अनजान भय महसूस किया है कभी ?? बुरा होता है न ?तब वो ज़ल्दी से बड़ा और ताकतवर हो जाना चाहता था।

एक बार उसने सुना था "माँ की सहेली के मुँह से अकेली औरत का समाज में रहना आसान नहीं मीनाक्षी।"

और मीनाक्षी ने दरवाज़े के उस तरफ बैठे बैठे आदित्य पर नज़र डाली थी बस। मीनाक्षी कहना चाह रही हो मानो, आदित्य के साथ मुझे कौन अपनाएगा!! और आदित्य ही तो उसका सबकुछ है।

" लोग तो मिलते हैं बहुत लेकिन क्यों मिलते हैं, क्यों पास आना चाहते हैं, क्यों मदद करना चाहते हैं, तुझे भी पता है।

फिर अब तक कोई ऐसा भी न मिला कि समाज की परवाह ख़त्म कर जुड़ जाऊं।" मीनाक्षी ने कहा था, धीमे से यूँ कि उसका बेटा आदि न सुन पाये।

"नहीं इतने वर्ष कट गए कुछ और कट जाएंगे।"

फिर भी सब ठीक ही था एक वर्ष पहले तक। बचपन खुश रहना जानता है और आदित्य का वो बचपन ही तो था, वो खुश था।

जब क्या मिल सकता था, इसका अहसास नहीं होता तो जो मिला होता है वही काफी होता है। और आदित्य को पिता के रहते क्या मिल सकता था और न होने से क्या न मिला इसका कोई अहसास न था, उनकी मृत्यु आदित्य के बहुत छोटे रहते जो हुई थी।

एक वर्ष पहले जब वो बीमार हुआ, ज़िन्दगी बदली थी, उसका बचपन ख़त्म हुआ था।

उसे तेज़ बुखार हुआ था, रात को सुनसान से घर में यूँ बीमार बच्चे को देख माँ परेशान थी, अकेलापन ऐसी परेशानियों में बढ़कर अंधेरी, लंबी सुरंग सा हो जाता है। ब्लैक होल सा। और मीनाक्षी ने एक फ़ोन किया था किसी को।

आधे घंटे में ही वो आ गया था। और रात 2 बजे बाइक पर पीछे आदित्य और मीनाक्षी को बैठा वो अस्पताल ले गया था।

आदित्य चार दिन भर्ती रहा था, और उसने माँ के साथ ही आदित्य की बहुत सेवा करी थी। रोज़ शाम वह फल, बिस्किट, जूस ले आता और आदित्य के पास बैठ जाता स्टूल पर। माँ संतरे की खट्टी मीठी फांकें आदित्य के मुँह में डालते जाती।

मीनाक्षी ने बताया था आदित्य को "बेटा ये अशोक अंकल हैं।
मेरे साथ ही शिक्षक हैं।"

उसे अशोक अंकल बहुत अच्छे और देखभाल करने वाले लगे थे। बड़े मज़ाकिया भी। किसी भी बात पर हंसा सकने वाले।

और माँ भी तो वर्षों बाद यूँ खुल कर हंसने लगी थी। माँ को भी शायद अशोक अंकल अच्छे लगे होंगे, अपने बेटे की यूँ देखभाल करने की वज़ह से ?? इस तरह साथ देने की वज़ह से।

अस्पताल से छुट्टी के बाद भी अशोक अंकल अब रोज़ शाम आने लगे थे घर। और देर तक बातें करते। माँ का घर -घर रेडियो अब नहीं बजता था।

आदित्य ने महसूस किया था, कितने ही वर्षों बाद माँ बड़ी खुश नज़र आने लगी थी। आईने के सामने बार बार बैठती। खुद को निहारती और आदित्य से भी कभी कभी पूछ लेती। आदि, कैसी लग रही हूँ मैं ??

"अच्छा बता आदि मैं कितने साल की लगती हूँ ??"

अशोक अंकल आते तो माँ उसे कभी शक्कर लेने, कभी पत्ती लेने कभी पास की डेयरी से दूध लेने भेज देती। यूँ तो वो अपनी साइकिल से राशन की दुकान भी जाया करता था सामान लेने पहले से ही, गेहूं पिसवाने भी। लेकिन छुट पुट सामान माँ आजकल ज़्यादा मंगवाती ।

आदि ने कहा भी "माँ रविवार को list दे दिया करो, सब ले आया करूँगा।"

और अशोक अंकल रोज़ शाम आते रात खाने के बाद जाते। यूँ लगभग 6 माह बीत चुके थे।

वो अब भी खुश था, बचपन वाली आंतरिक खुशी।माँ और अशोक अंकल उसका ख्याल भी रखते।

लेकिन छह माह पहले की एक शाम जब वो खेलने गया था, पड़ोस की आंटी ने उससे पूछ लिया था ?? "क्यों कोई चक्कर है क्या तेरी माँ का" ???

उसे नहीं पता था ये एक प्रश्न इस टॉपर बच्चे के जीवन का सबसे कठिन प्रश्न होगा ??

तब तक उसे चक्कर का मतलब समझ आने लगा था। लेकिन दो लोगों के चक्कर से किसी और को क्या परेशानी ? उसे नहीं पता था।

वो बिना कुछ कहे आगे बढ़ तो गया था लेकिन पीछे से आती एक तीखी हंसी उसके अस्तित्व को भीतर तक भेद गयी थी।

माँ ने जब शाम अगले दिन दूध लेने भेजा तो पास के डेयरी मालिक ने दूध देते समय कहा "और आदि, आज भी आ गए दूध लेने, लगता है अंकल आये हैं"!!?

ये दिन पहला दिन था आदि के अकेले बैठ आंसू बहाने का।

अब वो बदल गया था। पहले से ज़्यादा गंभीर, अकेला और गुमसुम। जैसे अचानक बड़ा हो गया हो। रिश्ते, बातें, आंसू, मनोभाव सब समझ से आने लगे थे। बचपन के मानसिक दुःख तेज़ी से बचपन ख़त्म कर बड़ा बना देते हैं।

उसे अशोक अंकल अब बुरे लगने लगे थे।
स्कूल में आये दिन कोई न कोई ईर्ष्यालु छात्र उसकी माँ के विषय में कुछ कह उसकी पढाई और बाक़ी की उपलब्धियों को खुद की असफलताओं से संतुलित करता।

छोटी जगहों पर इस तरह की अफवाहें, मनोरंजन का काम करती हैं। लोगों को रस आता है, इन चर्चाओं में।
मर्द इस मौके की तलाश में होने लगते हैं कि वो अशोक अंकल ही क्यों ?? मैं क्यों नहीं!

आंटियों को, खुद को हाई मोरल का दिखाने का एक अच्छा मौका देती हैं मीनाक्षी सी महिलाएं। जिनका अवचेतन खुद उन्हें इनाम देता है, इस अहसास का कि देखो मैं कितनी अच्छी।

"देखो बच्चे के होते दूसरा मर्द रख ली", चरित्रहीन...

"पति मरा नहीं कि ढूँढने लगी।"

"मुझे तो पहले ही इसके रंगढंग ठीक न लगे थे।"

"अच्छा ये तो बता इसका मरद मरा कैसे था ?? ऐसी औरतों का कोई भरोसा नहीं।"

मेकअप देखा है उसका ??

क्या पता सामाजिक मान्यताओं की कई परतों में दबी भावनाओं को खुद उन्मुक्त जीवन न जी सकने का मलाल हो ??

उन बेहद चरित्रवान महिलाओं के गॉसिप सुनते उनके बच्चे इस गॉसिप को स्कूल तक ले आते, शिक्षकों तक ले आते। और वही वाली खुशी लेते जो उन्हें विकलांग को लंगड़ दीन या अबे अंधे कह कर मिलती।

मानवीय मस्तिष्क दूसरों को गिरता देख इसलिए हँसता है कि
ये सन्देश जाता है उसे कि लो मैं बच गया, मैं भी गिर सकता था।

अब आदि को उस छोटे से हिल स्टेशन पर आँखें पीठ पर चुभती सी लगतीं। अनगिनत आँखें.....शूल सी चुभती, रेंगती आँखें। मोहल्ले में, स्कूल में... हर तरफ पीठ पर चुभती अनगिनत आँखें। ये आँखें पीठ पर चुभती, गपती सीने तक पंहुच गयी थीं। उसे लगता वो कहीं गायब हो जाये, मर जाये। वो पहाड़ी पर खड़ा नीचे खाई को देखता रहा था, क्या वो कूद जाये?

उसके पिता की मृत्यु या माँ के सम्बन्ध दोनों ही वज़ह से वो क्यों सामाजिक हिकारत का हिस्सा था उसे पता नहीं।

आज शाम जब वो आया था और उन्हीं डबडबाई आँखों से पढ़ने की कोशिश कर रहा था, ऐसा ही कुछ सुन कर आया था।

वो बाहर की पहाड़ी पर आसमान और पेड़ों से बातें भी रोज़ इसलिए करने लगा था कि माँ को उसे डेयरी या दुकान न भेजना पड़े।

पीठ पर चुभती अनगिनत आँखों को वो आज झटकार देना चाहता था।

डूबता सूरज आज कुछ संतुष्ट सा डूबा था।
पेड़ तेज़ी से लहलहा थम गए थे। बादल उमड़े तो थे लेकिन बूँदें नहीं गिराई थीं। हवाओं ने आदित्य में आज एक अज़ीब शक्ति भर दी थी।

और अनगिनत आँखें पल भर में झड़ गयी थीं। कुछ खरोंच के निशान ज़रूर छूटे थे लेकिन आँखें अब नहीं थीं। आत्मबल के आगे बड़ी कमज़ोर होती हैं ये अनगिनत चुभती आँखें। उसने अपने ही घर का अंदर से बंद दरवाज़ा खटखटाया था, अशोक अंकल ने खोला था।

आदित्य अंदर आया था और सिर्फ ये कहा था आज, "मम्मी आप शादी कर लो इनसे। अब

न तो मैं दूध लेने जाऊंगा, न राशन, न पहाड़ी पर बैठूंगा।"

डबडबाई आँखों से रुंधे गले से वो कहता जा रहा था, "आपकी बेइज़्ज़ति करने, आप पर उंगली उठाने का मौका भी किसी को नहीं दूंगा। मम्मी आप कुछ गलत नहीं कर रहे। मेरे सभी दोस्तों के पापा हैं, उनकी मम्मियों के पति, फिर आपका पति क्यों नहीं हो सकता। लेकिन मम्मी, इस तरह और नहीं।"

मीनाक्षी हतप्रभ सी देखती रह गयी थी उसे। आँखों में आंसू लिए गले से लगा लिया था आदित्य को। मीनाक्षी खुद नए प्यार, एक सहारे, समाज, बेटे, अपराधबोध, ग्लानि जैसे अन्तर्द्वंदों से गुज़र रही थी, कबसे आदित्य से बात करने हिम्मत न जुटा पायी थी। बेटे को गले लगा पीठ पर हाथ फेरा था प्यार से। चुभती आँखों से बनी खरोंचें माँ के स्पर्श से पिघल गयी थीं।

।। अंधेरी रोशनी ।।

मैं उसका फेसबुक पेज़ रोज़ पढ़ा करती।
उसकी छोटी छोटी प्रेरक कहानियाँ मेरे मन में गहरा असर करतीं।सुकून मिलता।सम्बल मिलता।अशांत मन ठहर सा जाता।
जिस दिन वो कोई नई कहानी नहीं लिखता मैं वही
पुरानी कहानियाँ ही पढ़ लेती बार बार।
आखिर इतनी गहराई शब्दों में वो कैसे लाता था।वही आम शब्द जो मैं रोज़ सुना करती ,रोज़ कहा करती, लेकिन यही शब्द जब वो लिखता तो न जाने कैसे जादू होता। आखिर वो ये कैसे समझ पाता कि आज मैं क्या पढ़ना चाहती हूँ।कैसे समझ जाता कि क्या चल रहा है मुझमें।कभी मैं निराश होती अपने काम से तो वो काम को कैसे मनपसंद बना लिया जाये पोस्ट कर देता।
कभी प्यार में धोखा खाये जब आंसू बहा रही थी तब ही उसने पहली बार एक अद्भुत प्रेम कहानी लिख दी थी।
इतनी मार्मिक प्रेमकहानी,आंसू तो बहे थे झर झर लेकिन मन हल्का हो गया था।
हज़ारों फैन थे उसके वो जो भी था।
वो कौन था,जो इतना नाम हो कर भी गुमनाम था।
उसने अपने पेज़ का नाम भी अज़ीब रखा था, 'अंधेरी रोशनी'।
ये भी कोई नाम था भला।अंधेरी भी रोशनी भी। लेकिन होगा कोई मतलब गूढ़ सा।मुझे क्या पता।
मुझे तो बस ये पता था कि कुछ आदत सी कुछ लत सी हो गयी थी इस अंधेरी रोशनी की।
यदि वो कोई लड़का है तो हाँ मुझे अब प्यार सा है उससे।
और यदि क्यों, वो है तो कोई लड़का ही।
इतना पढ़ा है उसे तो ये तो पक्का है कि न तो वो कोई लड़की है, न कोई बूढ़ा।

उसकी हर पोस्ट में सकारात्मकता कूट कूट कर भरी होती।लोग हज़ारों की संख्या में उसे पढ़ते।तारीफ करते।
लोग कई बार कहते आप अपनी तस्वीर तो डालिये।अपने विषय में कुछ तो बताइये लेकिन वो बस प्रेरणा देता, अनाम और गुम हो जाता।

रोशनी दे कर लौट जाता।

जैसा उसने जीवन को देखने का नज़रिया हमें समझा दिया था उससे ये तो तय है कि वो खुद कोई बेहद सुखी, बेहद अच्छा जीवन जीने वाला शख्स था।समुद्र सी गहराई थी और झील सी सरलता।

देखो जब उसे सोचती हूँ, खुद को भूल जाती हूँ।

मेरी पहचान सफ़ेद साड़ी में लिपटी एक स्टाफ नर्स।ट्रेनिंग समाप्त हुई और जल्द ही जॉब भी मिल गया मेडिकल में।

हाँ सुन्दर तो हूँ।तब ही तो साथ पढ़ते डॉक्टर ने प्यार का ढोंग किया और छोड़ दिया था। उन्हीं दुःख के पलों में ही तो ये अंधेरी रोशनी की कहानियां मिलीं थीं।

आई सी यू में पोस्टिंग। तकरीबन रोज़ ही रुदन, मौत। ज़िंदगी सबसे दुखद रूप में मौज़ूद होती यहाँ। मौत माँ की तरह गोद में सर थामे रहती जिंदगी को।

जब उसकी पोस्ट पढ़ी थी तब ही देख पायी थी ज़िंदगी और मौत का ये रिश्ता वर्ना इसके पहले तो ट्रेनिंग वाली रोबोट थी बस।

मैं ज़्यादा सुदृढ़,ज़्यादा देखभाल करने वाली थी अब।
एड्स के मरीज़ को देख अब ये मन में नहीं आता था कि "जैसी करनी वैसी भरनी"।

मैंने ये पोस्ट उन मरीजों और परिजनों को पढ़वानी शुरू की जो लंबे समय से झूझ रहे थे किन्हीं बीमारियों से।

उनमें से बहुत से अच्छा महसूस करते।
उसके फैन बढ़ते देख मुझे खुशी होती।मेरा मन करता उसकी किताब छपे।
टूटा दिल ज़ल्द ही जुड़ जाना चाहता है।कैसे भी।
कभी कभी तो.... किसी से भी।

आई सी यू में ही बीचों बीच बने मेरे नर्सिंग स्टेशन, जहाँ हम नाइट ड्यूटी पर काम ख़त्म कर सर झुका कर आराम भी कर लेते थे,कुछ गपशप भी और कुछ फ़ाइल वर्क भी, के एक ओर स्पाइन में चोट लगने से अपंग हुआ व्यक्ति एक माह से वेंटीलेटर पर था।सांस नली के रास्ते में वेंटीलेटर लगा हुआ।होश पूरा लेकिन उंगली भी नहीं हिला सकता।बोल भी नहीं सकता।यही कोई 30 वर्ष का युवा करण ,कार एक्सीडेंट के बाद।

तो दूसरी ओर मौज़ूद पलंग पर इंटरस्टीशिअल लंग डिसीस का एक मरीज़ लगभग दो माह से पड़ा था ऑक्सीजन पर। 25 वर्ष का युवा विशाल। यह लाइलाज बीमारी न तो उसे किसी एक्सीडेंट से हुई थी न ही किसी नशे से। होश पूरा,सारे अंग सामान्य।

बस फेंफड़े धीमे धीमे ख़राब होते जाने थे।
बस प्रकृति ने चुन लिया था उसे।
1 लाख में किसी एक को होनी ही थी तो, उसे हुई।
जैसे प्यार में धोखा किसी को मिलना ही था तो मुझे मिला था।
ये गूगल सर्च भी बड़ा ख़राब है।उसकी हो जाने वाली मौत की भविष्यवाणी बिना सोचे समझे कर दी थी गूगल सर्च ने।खुद विशाल ने पढ़ लिया था कि ये बीमारी लाइलाज है।

मैं उनकी दवाएं, बिस्तर, नाखून, ब्रश सबका ख्याल रखती।
मुझे ये काम अच्छा लगता। सेवा...। हर स्त्री में माँ होती जन्म से ही। बड़ी बहन छोटे भाई की माँ ही तो होती है। और नर्सिंग मुझे इसलिए पसंद था। मातृत्व के लिए कितने मौके रोज़।

मैंने देखा था ऑक्सीजन के पीछे से झांकती उन आँखों में कृतज्ञता।रोज़ कृतज्ञता देखते देखते कब प्रेम सा दिखने लगा था उन आँखों में।

मैंने उसे भी कहा था अंधेरी रोशनी पढ़ने को।
जिनके पास मोबाइल नहीं होते खाली समय में उन्हें पढ़ कर ही सुना देती।
जिनके पास मोबाइल होते उन्हें भेज देती पोस्ट या फॉलो करने कहती।
विशाल तो बस लगा रहता मोबाइल पर, जब देखो चैस खेलते। मैंने उसे प्रिंटआउट भी दिए तो उसने पढ़े तक नहीं।

मैं वेंटीलेटर पर पड़े करण को कभी कभी ये छोटी छोटी प्रेरक कहानियां सुनाती, वो आँखों से शुक्रिया कहता।आँखों से मुस्काता।

विशाल जो मोबाइल पर अक्सर लगा होता, ने मुझसे धीमे से कहा था, मुझे भी सुननी है कहानी।

और रात ग्यारह बजे सारे इंजेक्शन्स लगा कर मैंने उसे कहानी सुनायी थी।उस अंधेरी रोशनी की।
जब उठने लगी तब उसने हाथ पकड़ लिया था मेरा। उसका कमज़ोर हाथ चुम्बक सी शक्ति लिए हुए था।उस छुअन में मेरा स्त्री मन समझ गया था निश्चल प्रेम को।

मैंने कहा था अभी आती हूँ। और धीरे से किसी तरह हाथ हटाया था उसका।
एक दिन उसने धीमी सी आवाज़ में मुझसे पूछा,
आप किसे प्यार करती हो जो काउंटर पर आंसू बहाते रहती हो,जब भी अकेले और खाली रहती हो?

मैंने हंस कर उस वेंटीलेटर वाले करण की ओर उंगली
दिखाई थी और कहा था उसे।
विशाल का मस्तिष्क हंसा था लेकिन फेंफड़े साथ नहीं दे पाये थे।

उसने हाँफते कहा "बताओ न सच।"
इस बार मैंने उसे प्यार से देखा था। उसे कुछ पलों की खुशी चाहिए थी।पता था।
मैंने कहा था 'तुमसे।' आखिर मेरा काम ही तो था बीमारों को खुश रखना।
उसके होंठ हल्का सा मुस्काये थे।

मैं उसे खुशी दे कर खुश थी।असहाय पुरुष को अक्सर प्यार हो जाता है। हालाँकि शायद मैं प्यार अब करती थी तो अपने उस गुमनाम लेखक से।अंधेरी रोशनी से।जिसने मुझे अवसाद से उबारा था। वो भले ही दिखता न था।

ईश्वर कौन सा दिखता है, लेकिन कहते हैं वही सब कुछ करता है।
वैसे इतना अच्छा और इतना बड़ा लेखक कौन सा उसे प्यार करने लगेगा।उस नर्स को जिसे नर्स होने की वज़ह से डॉक्टर ने ठुकरा दिया था।वो न ही दिखे तो अच्छा।

मैं नर्सिंग स्टेशन पर आ गयी थी।
प्यार के उसके प्रश्न ने फिर से आंसू ला दिए थे।
थक कर सर नीचे किये सो गयी थी।
कि तब ही पल्स ऑक्स के अलार्म की बीप सुनायी दी।

विशाल सांस नहीं ले पा रहा था। ऑक्सीजन लगे होने के बावज़ूद उसका ऑक्सीजन का

स्तर गिरता जा रहा था।डॉक्टर ने तुरंत वेंटीलेटर पर रखना चाहा तो पास बैठे पिता ने कहा।नहीं डॉक्टर उसने मना किया था वेंटीलेटर पर रखने से।उसे पता था कि वो कभी ठीक नहीं होगा।ऐसे में वो और शारीरिक तकलीफ नहीं चाहता था।

कुछ देर बाद विशाल नहीं था।
एक अज़ीब से खालीपन से वो लौट कर आयी थी नर्सिंग स्टेशन।
अच्छा हुआ बारह बजे उसने कह दिया था उसे कि वो प्यार करती है उसे।

दुखी थी। हर मौत के बाद ही वो ढूंढती थी अंधेरी रोशनी की एक पोस्ट। 4 बजे सुबह उसने मोबाइल फिर खोला था।

और उसे एक नई पोस्ट मिल भी गयी थी।दो बजे रात को पोस्ट की गयी थी
लिखा था...

"प्यारे पाठकों
अंधेरी रोशनी की आज ये आख़िरी पोस्ट है।
फिर ये रोशनी समां जायेगी कहीं और।
मुझे जो प्यार दिया अब तक उसके लिए दिल से शुक्रिया।
हाँ आज कुछ घटा है किसी के जीवन में।
आज किसी ने कहा है किसी से एक प्यारा सा झूठ।

झूठ ये कि वो उससे प्यार करती है जो उसे बस दे सकता है अपने कुछ और ज़िंदा पल।और ऑक्सीजन मास्क के पीछे से देखती प्यार भरी आँखें। वो भी कुछ और पल। फिर वो कह गयी थी उससे ऑक्सीजन से भी प्यारा झूठ कि वो प्यार करती है उससे।

हाँ, सच ये है कि वो प्यार करती है मुझसे। यानी अंधेरी रोशनी से।
अंधेरी रोशनी बुझने से पहले उसे कहना चाहती है कि एक डायरी है, तकिया के नीचे जो वो सिर्फ उसके लिए है।"

वो पोस्ट पढ़ते तेज़ी से जाती है मृत विशाल की तकिया के नीचे लगी डायरी उठाने।

डायरी के पहले पन्ने पर ही लिखा था

"रोशनी तुम हो। मैं अंधकार।हम दोनों मिल बनते हैं अंधेरी रोशनी। तुम्हें सेवा करते देख, खिलखिलाते देख,आंसू बहाते देख इतना कुछ लिख गया। मेरी सारी कहानियां तुम्हें देख कर ही बनीं।
अब तुम्हें किसी बाहरी रोशनी की ज़रूरत नहीं। अंधेरी रोशनी बुझ नहीं रही तुम में समा चुकी है, हमेशा के लिए।"

तुम्हारा
विशाल..... अंधेरी रोशनी।"

।। जंगल बुक ।।

(सच्ची घटना पर आधारित)

मेडिकल कॉलेज के बच्चा वार्ड की वही अफरातफरी।
हाँ चहल पहल और अफरातफरी देखने में एक सी होती हैं, लेकिन चहल पहल के भीतर खुशी अदृश्य सी तैरती है, जैसे पहले के ज़माने में होती थी मेलों की चहल पहल।
आज मॉल की चहल पहल।

जबकि अफरातफरी में तैरते है बैचैनी, हड़बड़ाहट, रुदन, बुझे चेहरे, थके शरीर।

रोज़ाना की तरह राउंड पर डॉक्टर अमित हर बच्चे को अपने एम् डी स्टूडेंट्स के साथ देख रहे थे।डॉ अमित प्रोफेसर थे। मेडिकल कॉलेज में। ऊर्जावान, विनम्रता, ज्ञान, देखभाल की भावना, मेडिकल की किताबों के परे भी ज़िंदगी पढ़ाने की वज़ह से छात्रों में लोकप्रिय। डॉक्टर्स के प्रचलित मानदंडों के विरुद्ध, बड़े फिट दिखते थे। टाई, वाई लगाने में यकीन नहीं था।
कई बार तो टी शर्ट और जीन्स पर आ जाते राउंड लेने।

मलेरिया, टाइफाइड, पीलिया, निमोनिया से बीमार पड़े सारे बच्चे कुछ दिनों में ठीक होने वाले थे।

लेकिन वार्ड दो के सात नंबर बेड पर जो था वो था अंकित।
पिछले पंद्रह दिनों से भर्ती। सांवला सा, दस वर्ष का धीर गंभीर सा दिखने वाला बच्चा। क्लास थर्ड में सभी विषयों में A प्लस मिला था। बेहद अच्छा चित्रकार था।
लेकिन फिर जो बीमार पड़ा तो रेफेर हो कर डॉ अमित तक आया था।
बिस्तर पर लेटे लेटे पूरे वार्ड की तस्वीर बनाई थी।
चिड़चड़ाती इंचार्ज सिस्टर, हंसमुख ट्रेनी सिस्टर, आजू बाजू के मरीज़, रोती माँ, डॉक्टर सबकुछ बनाता।

उसे लगभग हर रोज़, खून, प्लेटलेट्स और प्लाज्मा चढ़ता, ढेरों इंजेक्शन्स। जब तब उसे खून का स्त्राव होता। कहीं से भी कभी भी।

आज तक सारी जाँचें हो चुकी थीं।
उसे फेनकोनी एनीमिया था।
लाइलाज। डॉ. अमित को पता था अब उसकी ज़िंदगी अधिकतम कुछ और हफ्ते ही है। उन्होंने उसके पिता को भी समझा दिया था। अलग से।
पिता के लिए इकलौते, बुद्धिमान बच्चे को इस तरह खोते चले जाना धीमे धीमे जीवन ख़त्म होने जैसा था।

आज राउंड पर डॉ अमित ने पूछा था अंकित से

फ़िल्म चलोगे मेरे साथ। घूमेंगे, खाएंगे, फ़िल्म देखेंगे।मेरे दो बच्चों के साथ। वो ऐसा किया करते कभी कभी।
लाइलाज़ बीमारियों वाले बच्चों के लिए।
अपने छात्रों को कहते, लाइलाज़ बीमारियों के बच्चों को फ़िल्म दिखाना, घुमाना भी इलाज़ का ही एक हिस्सा है।
क्योंकि जब हम उनकी ज़िंदगी लंबी नहीं कर सकते
उनके बचे पलों को खूबसूरत बना सकते हैं।

फ़िल्म और घूमने की बात सुन उसने आँखें ऊपर कर उन्हें देखा था और कहा "मैं तो फ़िल्म नहीं देखता"।

डॉ. अमित ने कहा "तो क्या हुआ आज देखना"। जंगल बुक। मोगली की कहानी। बहुत से जानवर, जंगल और उनसे मोगली की दोस्ती तुम्हें बहुत मज़ा आएगा।
'मोगली' ???? उसने पूछा था

डॉ .अमित हंसे ठहाका लगा कर।

हाँ मोगली एक बच्चा है तुम्हारे जैसा, तुम्हारी उम्र का।
बस वो जंगल में रहता है।

अंकित ने बस इतना पूछा था
"उसे ब्लड नहीं चढ़ाना पड़ता' ??

ऐसे प्रश्न सन्नाटा पैदा करने वाले होते हैं।शोर और अफरातफरी में भी मन के भीतर तक शोर करता समां जाने वाला सन्नाटा।

डॉ अमित उसके बिस्तर पर ही बैठ गए थे और सर पर हाथ फेर कर कहा,
9 बजे तैयार रहना।क्लिनिक ख़त्म कर आऊंगा।

उसकी पीली सी आँखों में एक चमक आयी थी।
बुझा चेहरा थोडा सा खिल गया था।
"क्या ऐसा भी कोई बच्चा हो सकता है, मोगली ? "जंगल में रहने वाला ?

अंकित ने पिता की ओर नज़र घुमाई, स्वीकारोक्ति के लिए।
पिता ने सर हिला कर, हाँ कहा। माँ ने उसे इतने प्यार से देखा। माँ की आँखों में वही भाव थे जो स्कूल रेस में जीते बच्चे की माँ की आँखों में होते हैं। इस समय माएं
प्रकृति की सबसे खूबसूरत रचनाएँ कैसे बन जाती हैं पता नहीं। अथाह प्रेम, वात्सल्य सबसे अच्छा कॉस्मेटिक।

डॉ अमित चले गए थे।

अब इस कहानी में दो अलग -अलग पात्र अलग जीवन जी रहे थे ।

वे 11 बजे सुबह कह कर गए थे अंकित को, 9 बजे रात को आने कह कर।

वे अपने लेक्चर, मीटिंग्स, क्लीनिक, अपने घर में बच्चों से बात करना, पत्नी से बात करना,शाम पांच बजे बच्चों को स्विमिंग ले जाना फिर सात से 9 बजे तक क्लीनिक के अपने रोज़ के ढर्रे में व्यस्त होने वाले थे।

वहीं अंकित, वार्ड 2 के 7 नंबर पलंग पर, वार्ड की अफरातफरी, इंजेक्शन्स, खून के सैंपल्स, सफ़ेद नर्सेस
की प्यार भरी मुस्कुराहटों और अपने माता पिता की खुशी से परे कहीं और खोया हुआ था।
हाँ जंगल में।
कब उसका सैंपल लिया गया उसे पता ही नहीं था। कोई दर्द नहीं। क्योंकि वो अब अस्पताल की अफरातफरी में नहीं। जंगल की चहल पहल में था।खुद मोगली था।
बिस्तर से उठ, बंदरों सा पेड़ों पर चढ़ते हुए।
शांत अंकित हर पल इंतज़ार कर रहा था, वार्ड की जेल से निकल, पैरोल पर बाहर जाने। खुली हवा में।

अंकित के लिए पिता अस्पताल के बाहर बने फुटपाथ से नयी पीले रंग की टी शर्ट ले आये थे।
पैंट, माँ बाहर के हैंडपंप से ज़ल्दी से धो कर ले आयी थी और धूप में सुखाया था।
शाम तक हल्का गीला रह गया था पैंट, तो माँ ने पिता को प्रेस करवाने भेज दिया था।

7 बजे टी शर्ट पैंट तैयार हो गए थे।
माँ ने अंकित को हलके बुखार में गीली पट्टी से पोंछ दिया था।नहलाने की जगह।
मुँह साबुन से धुला कर, पोंछ कर, हल्का सा पाउडर लगा दिया था।
उधर डॉक्टर अमित अपने क्लीनिक में मरीज़ देख रहे थे।
उन्होंने भी अपने दोनों बच्चों को कहा था तैयार रहने।
एक नए दोस्त के साथ जंगल बुक देखने जायेंगे कहा था।
दोनों बंदरों से उछले थे। हुर्रे कहा था। चालाक छोटे बेटे ने कहा था पापा बहुत अच्छे है।वो सभी लड़कों की तरह पक्का माँ का चमचा था।बस काम के समय कहता पापा बहुत अच्छे हैं।

आठ बजे ही अंकित तैयार हो गया था। उसका दिन भर.....

शेर,चीते,मोर,बन्दर ,हिरण, के सपने देखते बीता था।
कभी वो हिरन की पीठ पर बैठता।कभी शेर उसे जीभ से दुलारता।
कभी मोर उसे नृत्य दिखाता कभी कोई बन्दर कंधे पर चढ़ जाता।
सपनों में समय पता नहीं चला था।
लेकिन अब एक घंटा मुश्किल से कट रहा था।

उधर डॉ अमित ज़ल्दी, ज़ल्दी मरीज़ देख रहे थे।
क्लिनिक के लड़के से उन्होंने कहा था 8.45 तक सारे मरीज़ दिखवा देने को।

अपने बच्चों से उन्हें आलू, कचालू बेटा कहाँ गए थे जैसी पोयम सुनवाने वाली माओं को आज वो ये मौका नहीं दे रहे थे।

न ही आज वो छोटे, मोटे, गब्दू बच्चों को गोद में ले रहे थे। न ही आज वो माओं के सास बहू और पति पत्नी के बच्चों की परवरिश सम्बंधित विरोधाभासों पर कोई काउंसलिंग दे रहे थे। बस ज़ल्दी से पर्चा लिखा और भेजा।

उन्हें याद था 9 बजे अंकित को ले कर जाना है।
9.15 पर फ़िल्म का शो है।

और आखिर उन्होंने 9 बजे से पांच मिनट पहले ही आख़िरी बच्चा भी देख लिया।
ठीक 9 बजे कार में बैठे ही थे बच्चों को घर से लाने कि एक परिवार बदहवास सा गोद में 4 साल के बच्चे को ले कर आया था।

उन्हें कार से उतर कर आना पड़ा।

बच्चे को गंभीर झटके आ रहे थे।
तुरंत हालत स्थिर करना ज़रूरी था। अस्पताल रेफेर करने के पहले।

और उन्होंने तुरंत ऐसा शुरू भी कर दिया था।

45 मिन बीत चुके थे।

उधर तीन बच्चे अपनी अपनी जगह पर मायूस होने लगे थे।

अंकित की माँ ने अंकित के सर पर हाथ रख कहा था।

"भूल गए होंगे डॉक्टर साहब। बड़े लोग हैं। ऐसे ही कह दिया होगा सुबह दया खा कर।"

लगभग 10 बजे बच्चे को रेफेर कर वो तेज़ी से कार में बैठे थे और बच्चों को घर से लिया था।

"छोटे बच्चे ने कहा था, क्या पापा आप हमेशा ऐसा ही करते हो।'

उन्होंने दोनों बच्चों को लिया और अस्पताल पंहुचे थे।
बच्चों को कार में ही छोड़ वार्ड दो बेड 7 पर गए थे।

अंकित पीली टी शर्ट पहने लेटा हुआ था, आँखों में आंसू थे।

देखते ही उठ बैठा।

डॉ अमित ने सॉरी कहा और उसका हाथ थामे कर नीचे ले आये थे।

दोनों बच्चों ने हाय अंकित कहा था।
बड़े बेटे ने छोटे से कहा था तू भैया बोल।
छोटा बोला चल हट मैं किसी को भैया नहीं बोलता।

रास्ते में कार चलाते डॉ अमित ने पूछा अंकित क्या खाओगे।
अंकित ने कहा 'आलूबण्डा'।

डॉ अमित हंसे थे।कहा आलूबण्डा तो तुम कहीं भी खा सकते हो आज तुम्हें कुछ नया खिलाएंगे।

फिर उन्होंने कहा था वैसे अंकित तुम मुझे मोगली से ही लगते हो।
इसलिए मैं तुम्हें मोगली ही बुलाऊंगा।

दोनों बच्चों ने चिल्ला कर कहा था..... मोगली।

वो तीनों मॉल पंहुचे थे।
पंहुचते पंहुचते 10.30 हो गया था।
अब जंगल बुक का कोई शो नहीं था।
वो टिकट खिड़की गए थे शायद 5डी मूवी मिल जाये लेकिन वो भी नहीं थी।

तीनों ने किसी रेस्टोरेंट में खा कर लौटने का निर्णय किया था।

अंकित को मोगली न दिखा पाने का दुःख था उन्हें।
अंकित की आँखों में दौड़ते हिरण थम गए थे।
आँखों के चल चित्र जड़ पोस्टर बन गए थे।
उधड़े पोस्टर।

डॉ अमित ने कहा बच्चों आज मुझे माफ़ कर दो।
परसों पक्का।
मैं परसों क्लिनिक बंद रखूँगा।कल एक लेक्चर लेने बाहर जाना है।

अंकित एक बार फिर परसों के सपने बुनने की कोशिश कर रहा था।
लेकिन सपने जब टूट जाते हैं तो फिर कहाँ बनते।
दरअसल सपने तोड़े तो जा सकते हैं लेकिन बनाये नहीं जा सकते।
डॉ अमित ने भी सपना तोडा था और बनाने की असफल कोशिश की थी।

डोमिनो में खा कर चौको लावा केक पैक कर लिया था
अंकित ने।

डॉ अमित को पता था अंकित का जीवन ज़्यादा नहीं।
उन्हें लगा इससे बेहतर तो उसे ये वादा ही न किया होता।
जंगलबूक दिखाने का।

अस्पताल में उसे वो छोड़ आये थे।

अगले दिन पास के शहर वो चले गए थे।

और जब लौटे तो पता चला अंकित को ब्रेन में ब्लीडिंग हो गयी है।
वेंटीलेटर पर है।

उसकी मम्मी ने एक कॉपी दी थी आंसू बहाते, ऊपर लिखा था जंगल बुक।
जिसमें कई चित्र बने थे,
शेर, हिरन, बन्दर, मोर, चीते, पीली टी शर्ट वाला एक बच्चा जिसके शरीर पर नीले नीले निशान थे, दो और बच्चे,
पिज़्ज़ा, चौको लावा केक।

और...
बना था...
एक स्टेथो टांगे डॉक्टर।

नीचे लिखा था।

माफ़ करना डॉक्टर अंकल आपको मैं, मुझको जंगल बुक दिखाने का मौका नहीं दे पाया।
आपका मोगली....
दुखी मत होना।

।। प्रेम पत्र ।।

(लव स्टोरी 1981)

तुम्हें याद हैं वो रंग बिरंगी पतंगें, जिन्हें मैं उड़ाया करता था अपनी छत से और तुम तुम्हारी छत पर आ जाती थीं, उन्हें दूर ऊपर उड़ता देख। तुम उन्हें देखती रहतीं बस। हमारे मन सी होती हैं न पतंगें ऊपर उड़ती, उड़ती ही जाती हैं जब तक कोई खींच न ले।

हम साथ पिट्टू भी तो खेले थे। छुपन छुपाई भी। तुम मेरे घर आ जाती थीं और मैं तुम्हारे। कहाँ कोई बंदिशें थीं। हम लड़ते भी तो बहुत थे, लेकिन तुरंत दोस्त भी बन जाते थे।
फिर न जाने क्या हुआ तुम और मैं बड़े हो गए। तुम्हारा और मेरा पड़ोस तो नहीं बदला लेकिन हम बदल गए थे। न तुम् मुझसे बात करतीं न मैं तुमसे।

लेकिन तुम जब हाई स्कूल की वो आसमानी कुर्ती वाली ड्रेस पहने घर आती दिखती तो बड़ा अच्छा लगता था।
मैं मोहल्ले में क्रिकेट खेलते समय जानबूझ कर कोशिश करता कि बॉल तुम्हारी खिड़की पर लग जाए और तुम बाहर निकल आओ। लेकिन कभी बॉल लगी भी तो तुम्हारी मम्मी ही निकलीं वो भी डांटने। "ठीक से नहीं खेल सकते आदित्य, अब बॉल आयी तो बॉल नहीं मिलेगी"।

लेकिन एक दिन मैंने देखा जब मैं साइकिल चला रहा था नीचे, तुम अपनी छत से मुझे देख रही थीं। सच बताऊँ तुमसे नज़र मिलते ही दिल धक् से किया था। जैसे दिल रुक गया हो अचानक और फिर धड़क गया हो तेज़। तुम नज़र हटा कर कहीं और देखने लगी थीं। और फिर छत से हट गयी थीं।

पता है उस दिन मैंने 50 चक्कर लगा लिए थे सायकल के कि तुम फिर दिख जाओ। और तुम नहीं दिखी थीं लेकिन तुमने मुझे बाद में बताया था कि तुमने भी छुप कर देखा था, मुझे इतने चक्कर लगाते।

और उस दिन से मेरा प्रिय खेल क्रिकेट न हो कर साइकिल चलाना हो गया था। रोज़ स्कूल से आ कर साइकिल चलाता। साइकिल को साफ़ करना सुन्दर रखना भी पहले कभी नहीं किया था।

और अब तुम भी छत पर आती तो रुकी रहती। बिना नज़रें हटाये। लेकिन तुम्हें देखते देखते साइकिल को मैंने उस दिन बोम्बे की मिठाई वाले के ठेले से टकरा दिया था।

"अबे, कहाँ देख के चला रहा है ??"

चोट लगी थी लेकिन फिर भी ऊपर छत पर तुम्हें देख रहा था और तुम खिलखिलाकर हंसी जा रही थीं। मुझे गिरा कर हँस रही थीं तुम लेकिन फिर भी बड़ी सुन्दर लगी थीं। दर्द गायब हो गया था। सिर्फ नज़रें मिलने से आगे तो बढ़ी थी बात, तुम्हारे इस तरह

खिलखिलाने से।

तुम कितनी सुन्दर थीं, लंबे बाल, बड़ी बड़ी आँखें, प्यारी सी हंसी।

फ़िल्म लव स्टोरी देख आया था मैं, और बाल भी कुमार गौरव से रख लिए थे। माँ को कहते सुना था पिताजी से आजकल आईने में लगा रहता है, पढाई पर ध्यान नहीं। 12 वीं है, क्या करेगा पता नहीं।

अब स्कूल से आ कर मैंने पढ़ना शुरू कर दिया था। लेकिन अपनी छत पर, हाँ तुम्हारी छत से लगी मेरी छत। पन्नों में अक्षर नहीं तुम दिखती थीं।

और कुर्सी पर बैठे, उड़ते पंछियों को देखते मैं पढता रहता अँधेरा होने तक, वही पन्ने जिनमें तुम दिखती। लेकिन तुम्हें सच में न देख पाने की अज़ीब सी तलब लगी होती। पता नहीं ये क्या था। कुछ था जो तुम आदत बन गयी थीं। लवस्टोरी की मानें तो कुमार गौरव सा ही कुछ था। लेकिन तुम विजेता पंडित से सुन्दर थीं, बहुत सुन्दर।

आखिर सिर्फ दो दिन बाद ही तुम आ गयी थीं, तुम्हारी रस्सी पर सूखते कपड़े उठाने। और तुमने कितने धीमे धीमे, नज़ाकत से उठाये थे वो कपड़े। मुझे बस ऐसे देखा था कपड़ों के बीच से मानो देखा ही न हो। मैंने भी तो किताब के किनारे से ऐसे ही देखा था तुम्हें कि मैंने भी देखा न हो। लेकिन हम दोनों ने ही फिर देख लिया था एक दूसरे को देखते हुए, इस चोरी का पकड़ा जाना बड़ा मीठा था। मैं हल्का सा मुस्काया था और तुम शर्म वाली मुस्कराहट से देख अपने लंबे काले बाल लहराते चले गयी थीं।

लेकिन एक कपड़ा गिरा गयी थीं, शायद अनजाने। लेकिन लेने आओगी पता था और तुम आयी थीं। झुक कर उठाया था और फिर से देखा था मुझे, कैसा लगा था क्या बताऊँ। वो अहसास, गर्म गर्म सा कुछ दिल में पिघलता सा, एक नशा, तुम्हारा और आदी बना गया था।

फिर तुम छत पर कभी आलू के चिप्स तो कभी गेहूं सुखाने भी आतीं। तुम कितने रंगबिरंगे कपडे पहनती थीं। लाल स्कर्ट में तो बहुत ही सुन्दर लगती थीं।

और यूँ ही देखते मुस्कुराते हफ़्तों बीत गए थे। किताबों में तुम दिखतीं, ब्लैकबोर्ड पर तुम। हवाओं में तुम घुली लगतीं।

लेकिन तुमसे बात करने की हिम्मत करता, छत पर तुम्हें देख पास भी आया तुम्हारी छत के लेकिन फिर मुड़ गया। कभी न कह पाया था।

पता नहीं फिर क्या हुआ कि तुम अब जब भी आती छत पर तुम्हारी मम्मी साथ होतीं। रही सही उम्मीद और हिम्मत भी गयी।

लेकिन एक दिन मेरा छोटा भाई गुड्डू एक कागज़ ले कर आया था, और मुझे दिया था। और बोला था "बाज़ू वाली दीदी ने दिया है। बोला भैया के अलावा किसी को मत देना।

मुझे एक टॉफी और पप्पी भी दी थी"।

मैंने ज़ल्दी से उससे चिट्ठी छीन ली थी। गुड्डू आठ वर्ष का था और मुझे पता था कि ये बोल कर उसने बड़ी गलती की है कि गुड्डू किसी से मत कहना। क्योंकि गुड्डू को जब भी ये कहो वो कहे बिना नहीं रहने वाला था।

मैंने चिट्ठी ले कर उससे कहा "अरे नोट्स देने में छुपाने वाली क्या बात थी गुड्डू "। शायद कुछ डैमेज कण्ट्रोल हुआ हो सोचकर।
लेकिन गुड्डू अपनी टॉफी चबाते भाग लिया था।

एक खूबसूरत, गुलाबी, केसर की खुशबू वाला कागज़ था वो जिस पर बेहद सुन्दर अक्षरों में बस इतना लिखा था.....

"तुम बहुत बुद्धू हो आदित्य".....

यूँ तो तुम बुद्धू हो यह मैं बचपन से ही पिताजी, और गुरूजी से सुनता आ रहा था, इस वाक्य में कुछ भी नया नहीं था लेकिन
इस बार बड़ी खुशी हुई थी। इतने प्यार से लिख कर दिया गया था वही वाक्य तुम बहुत बुद्धू हो आदित्य.....आह्। तब पहली बार समझ आया था शब्दों से ज़्यादा किस तरह और किसने कहा इसका महत्त्व होता है।

फिर मैं इतना भी बुद्धू नहीं था कि ये भी न समझूँ कि क्यों बुद्धू कहा गया। आखिर लवस्टोरी मैंने भी देखी थी और दिनरात टेम्पो, लाउडस्पीकर, नौदुर्गा में बजते उसके गाने भी तो सुने थे। .....देखो मैंने देखा है ये एक सपना....
फूलों के शहर में हो घर अपना...

मैंने भी आखिर एक प्रेम पत्र लिखा, गुड्डू की हिंदी की कॉपी से बीच के दो पन्ने फाड़े और उस पर खूब लिखा। लवस्टोरी के गाने भी.....टेप रेकॉर्डर में घिसा हुआ कैसेट कई बार सुना था लिखने को....

कैसा तेरा प्यार कैसा गुस्सा है तेरा
तौबा सनम, तौबा सनम

इक दिल्लगी मैं ने की थी
तू ने क्यों दिल से लगा ली
तू भी मुस्कुरा दे
मुझे भी हँसा दे
ओ मेरे अच्छे बलम
तौबा सनम, तौबा सनम

मैं इक तेरा दीवाना

देखे तुझे क्यों ज़माना
देखे मेरे नैना
दिल में छुपे रहना
रखना न बाहर कदम
मेरी क़सम, मेरी क़सम.....

लेकिन फिर सब फाड़ दिए और एक छोटे से टुकड़े में लिखा था,

"प्रिय....
अच्छा मैं बुद्धू ? क्यों ? तुम बताओ न कैसे ?? अच्छा पतंग उड़ाओगी साथ ??....
तुम्हारा आदित्य"

तुम्हारा गुलाबी खूबसूरत पत्र, मेरे चिंधी से पत्र के बाज़ू में रखा बता रहा था हम दोनों के व्यक्तित्व का अंतर।

और उस चिंधी को फिर से गुड्डू को ही थमा दिया था। कह कर कि ये नोट्स दे आ उसको।

गुड्डू बोला "दीदी ने तो टॉफी और पप्पी दी थी तुम क्या दोगे" ??

मैंने कहा, भाई से मोल भाव करता है ??

वो बोला ज़्यादा मत बनो भैया, सब पता है नोट्स वोट्स नहीं है।

मैं 3 ओवर बैटिंग करूँगा, बिना आउट माने। बोलो मानते हो ??
और इस तरह गुड्डू के भविष्य में बैट्समैन बनने की तैयारी हुई। क्योंकि तुमसे उसे टॉफी और पप्पी मिलती रही और मुझसे रोज़ बैटिंग। मोहल्ले में मैं बदनाम हो गया कि अपने अपने भाई को बेटिंग कराता है और उसे आउट नहीं मानता।

गुड्डू को बिन मांगे मिल गयी थी मुझे तो कितना इंतज़ार करना पड़ा उस पप्पी का। जब तुम एक दिन आ गयी थीं जब कोई नहीं था।

और हम हाथ में हाथ थामे बैठे रहे थे।
"तुम्हारे हाथ कितने ठन्डे हैं" तुमने कहा था छूते ही, और कुछ देर बाद मैंने कहा था "देखो अब दोनों हाथों का तापमान एक ही है। तुम मुझमें मिल गयी हो, धीरे धीरे समां गयी हो।"
फिर हमने क्या क्या किया था, तुमने मना किया था, कसम दी थी किसी को न कहने की तो आज भी नहीं कहूँगा।

फ़िल्म लवस्टोरी जीवन का अहम् साहित्य लगी थी मुझे। आश्चर्य था कभी प्यार जैसे जादुई विषय पर स्कूल में नहीं पढ़ाया गया था।
मुझे तो याद नहीं कि इससे ज़्यादा मज़ेदार अहसास कुछ और मिला हो जीवन में।
मैंने कहा था तुमसे, भले मर जाएँ लेकिन साथ जिएंगे साथ मरेंगे।

लेकिन तुमने लवस्टोरी कहाँ देखी थी। तुमने कहा था हम दोनों अभी छोटे हैं, आत्मनिर्भर भी नहीं। अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। मेरे मम्मी पापा जात पात भी बहुत मानते हैं, इसलिए जितने समय साथ हैं खुश रहो। और मेरी नाक खींच कर बड़े प्यार से कहा था तुमने,"ज़्यादा बड़े बड़े सपने मत देखो।"
न जाने तुम में आज के युवाओं की सोच कैसे थी, 1981 में।

मैंने पूछा "पतंग सी नहीं उड़ना चाहती मेरे साथ"।
तुम खूब खिलखिलाई थीं मेरी इस कल्पना पर और कहा था
"पतंग न कटने की गारंटी हो तो, हाँ।"

और आखिर हमारी प्रेम कहानी का इंटरवल हो गया था, तुम कहीं पढ़ने चली गयीं और फिर मैं भी। तुम मुझे अपनी डायरी, ढेर सारा प्यार और भविष्य के लिए शुभकामनाएं दे गयी थीं। हाँ पता था तुम्हारे मम्मी पापा नहीं मानेंगे।

इंटरवल हाँ इंटरवल, अंत नहीं वरना ये इतना लंबा ख़त क्यों लिख रहा होता।

मेरी किस्मत में तुम्हारी छत मेरी छत से जो जुडी थी।
अब छत तो नहीं, मोहल्ला वही है।
मैं किसी तरह बारहवीं, फिर BA कर क्लर्क बन गया था।
तुम ऑफिसर्स क्वार्टर में मेरे अधिकारी की पत्नी बनी दिखती हो। सफ़ेद कुत्ता बाहर घुमाते। अभी अभी नए बॉस जो आये हैं शर्मा सर ट्रान्सफर ले कर।

ये जो बॉस हैं न मेरे शर्मा सर जब जब किचिर किचिर करते हैं, मन करता है गुड्डू के दिए सारे प्रेमपत्र उनके मुँह पर मार आऊँ। और वो डायरी भी जो तुमने लिखी थी मेरे लिए और मेरी डायरी से बदल ली थी।

वैसे तसल्ली बस ये है कि तुम बहुत मोटी हो गयी हो।
और तुम्हारे पतिदेव को ऑफिस में कोई पसन्द नहीं करता।
गंजा, मोटा। तुम्हारे सफ़ेद पामेरियन को काला, भद्दा और बिना बाल का बना दो कुछ वैसा। ये कुछ बातें हैं जो जीवन में सुकून भरती हैं।

गुड्डू क्रिकेट कोच है। और उसे सब याद है। कहता है वो रास्ते में हमारे नोट्स पढ़ लेता था। ज़्यादा तो समझ नहीं आता था उसे लेकिन वो दिल और लाल होंठ वगैरह जो बने होते थे समझ आते थे। लेकिन उसने कभी किसी और से नहीं कहा, आखिर भाई था मेरा। लेकिन सोचता हूँ काश वो पूरे मोहल्ले में कह देता।

अब मैं पतंग नहीं उडाता न साइकिल चलाता हूँ।
लेकिन अब भी तुम्हारी छत और वो गुलाबी ख़त निहार लेता हूँ।
ज़माना बदल गया पूरा लेकिन बाल जितने भी हैं अब भी कुमार गौरव से ही रखता हूँ। हाँ तुम बढ़ गयी आगे, मैं रुक गया था 1981 की लव स्टोरी में।

तुम्हारा नहीं ...कभी नहीं.....आदित्य

।। गोरी मैम ।।

वो रात ही कुछ ऐसी होती थीं। अगस्त की बारिश। हल्की हल्की बूँदें, स्ट्रीट लाइट की रोशनी से चमकीली हो ज़ातीं, तेज़ हवा उन्हें कुछ यूँ धकेलतीं कि बूँदें लहराती दिखतीं, लहराती बूँदें, शराबी बूँदें..... खाली अंधकार भरी सड़क पर लड़खड़ाते लहराते चलते उस शराबी की तरह जो रोज़ रात दिख जाया करता। हाँ वह शराबी काले, चिकटे कोट में रोज़ दिखता... ग़र, भूत पुलिया के पास से गुज़रो तो।

जो भी था वह, नियमित बहुत था। वही लड़खाती चाल। बारिश मूसलाधार हो या धीमी वह दिख जाता। काली बरसाती पहने, घने काले अँधेरे में वह और भयावह दिखता। अंधकार में चमकतीं लाल आँखें और सफ़ेद दांत। अँधेरे में उसकी काली त्वचा उसके चेहरे पर सिर्फ़ लाल आँख और सफ़ेद दांत रहने देती।

आख़िर कौन था वो। भूत पुलिया का नाम भूत पुलिया न जाने किसने रखा था। बरसों से यही नाम था उसका। और इससे जुड़े किस्से भी तो मशहूर थे।

कोई कहता पचमढ़ी में एक अँगरेज़ मेम की हत्या उसके नौकर ने कर दी थी और यहाँ लाश फेंक गया था। तबसे वह गोरी मेम यहाँ दिख ज़ाती। कुछ लोगों को दिखी तबसे ही सैनिकों की बर्की कंपनी के सामने बनी इस पुलिया को भूत पुलिया कहा जाने लगा था।

पुलिया केंटोनमेंट को ज़ाती मेन रोड पर थी। दिन भर आवाजाही रहती लेकिन रात में कोई भी नहीं निकलता।
अकेले तो बिल्कुल भी नहीं।

तीन ओर के जंगल से घिरा मेरा घर खपरैल वाला था।
अँगरेज़ वहां ऐसे ही घर बना कर गए थे।

बारिश में पचमढ़ी बेहद खूबसूरत बन जाती। कोहरे से ढंकी।
कोहरा ज़ैसे किसी गाँव की सुन्दर नयन, नक्श की नवविवाहिता ने पाउडर पोता हो अपने दूल्हे को रिझाने,मेले जाने हरे रंग की चमकीली साड़ी के संग। लाल जंगली फूलों की लिपस्टिक और
छोटी छोटी पीली खिन्नी के छींटे हरी साड़ी पर।

मेरे घर के तीन ओर पहाड़ थे पहाड़ों पर जंगल, हर पहाड़ ध्यान से देखो तो एक आकृति बनाता हुआ। एक पहाड़ का नाम मैंने राक्षस पहाड़ रखा था। उसके दांत, नाक दो आँखे सर पर हरे घुंघराले बाल दिखते।

बस एक ओर की कच्ची पगडंडी रोड से जा मिलती। जिससे हम स्कूल जाते या बाजार।

घर के सामने साल के बड़े वृक्ष, घनी झाड़ियां और आगे पहाड़ों की श्रृंखला थी। पहाड़ों के पहले ही गहरी जंग से रंगे टीन की छत वाला चीड़ घर था। चीड़ घर मतलब पोस्टमॉर्टम

हाउस।

सिविल अस्पताल से लगा हुआ था चीड़ घर। पचमढ़ी में झगड़े, अपराध न के बराबर होते। लेकिन कभी कभार हत्याएं हो ज़ातीं। कभी जंगलों के बीच रहते आदिवासी भालू से लड़कर लहूलुहान हो जाते और 10 किलोमीटर पहाड़ी,जंगली रास्ता
एक लाठी में चादर लटका कर पालकी सा बना कर मरीज़ को सिविल अस्पताल लाते। सुबह के चले, लाते लाते शाम हो जाती चादर खून से रंग चुकी होती। बादल रो रो कर उन्हें रास्ते भर भिगाते जाते।

घर की जाफरी से बाहर आते ही ये सारे नज़ारे दिख जाते थे।
जंगल,खिन्नी के पेड़, सिविल अस्पताल, लाल जंगली फूल,खट्टे देशी आमों की कैरियाँ।

दिन में खूबसूरत दिखते वृक्ष, पहाड़ और वो छोटा सा चीड़ घर
रात में भुतहा हो जाते। सांय सांय आवाज़ करती हवा की आवाज़ सन्नाटे की आवाज़ को और भी बढाते हुए।

रात की मद्धिम रोशनी जहां भी पड़ती वहां एक आकृति उभर आती दीवारों पर। इंसानी सी आकृतियां।मैं डर कर चादर ओढ़ लेता। कभी कभार पास आ कर छूता तो गायब हो ज़ातीं। तभी जाना डर से छुटकारा डर के सामना करने में है। डर को छू लो और वो छु मंतर..
लेकिन क्या हमेशा?...

80 के मोहल्लों में बतियाते भारत में ब्लैक एंड वाइट टीवी आ चुके थे। लेकिन फिर भी मोहल्लों में कुर्सियों पर स्वेटर बुनती आंटियों,किसका किस्से चक्कर है के गॉसिप, दद्दा जी की कहानियों, सड़कों पर क्रिकेट खेलते बच्चों का ज़माना तो था ही। रात 8 बजे के चित्रहार से पहले की शामें इन मोहल्लों,कालोनियों में बीतती ।

दद्दा अक्सर उस अँगरेज़ गोरी मेम का बताते।

जब अँगरेज़ भारत से चले गए मेम और उनके पति यहीं रुक गए।
कहते हैं मेम बड़ी सुन्दर थी, बड़ी दयालु। और भारत को पसंद करने वाली। पचमढ़ी उन्हें बड़ा पसंद था। उनका बंगला आज भी है, पांडव केव्स के पास। खपरैल वाला बहुत बड़ा बागीचा, सूरजमुखी के फूल आज भी खिलते हैं जहाँ। गोरी मेम की कांच के फ्रेम में जड़ी तस्वीर आज भी है, सफ़ेद कपड़ों में।

गोरी मेम के पति कुछ साल में चल बसे। अँगरेज़ सरकार में अधिकारी थे बड़े। पैसा वैसा,नौकर चाकर तो थे ही। इस अस्पताल को बनवाने में गोरी मेम और उनका ही योगदान था । चीड़ घर जो आज है पहले नहीं था।

मेम अकेले रह गईं। लेकिन आदिवासी बच्चों को पढ़ातीं, खिलातीं। उनके कुपोषण का ख्याल रखतीं। पचमढ़ी के ख़ूबसूरत चर्च ज़ातीं तो शिव मंदिर भी चले ज़ातीं। दद्दा बताते जंगलों

में घूमने, जंगलों से खिन्नी खाने का उन्हें बड़ा शौक था। अक्सर अपने किसी नौकर को ले ज़ातीं। हालाँकि वे सर्वेन्ट शब्द के उपयोग से नफ़रत करती थीं। वे कहतीं "सर्वेन्ट कोई नहीं है सब एक दूसरे के हेल्पर हैं। मैं आपकी हेल्पर आप मेरे हेल्पर"।

पचमढ़ी के लोग उन्हें प्यार करते।

लेकिन एक दिन उनकी लाश जंगल में मिली, सफ़ेद कपडे ही पहने हुए थे उन्होंने। वे अक्सर यही पहनतीं अपनी वेडिंग ड्रेस सा कपड़ा। सफ़ेद, खून से लथपथ लाश। चाकू से गोदी हुई।

पुलिस को नौकर पर ही शक़ था । फ़रार नौकर पकड़ा गया।

इसके बाद ही यहाँ पहले चीड़घर को सरकार ने बनवाया था।

नौकर कहता ज़रूर रहा वो देवी सी थी, मैंने नहीं मारा। लेकिन सारा शक़,पोस्टमॉर्टेम और परिस्थिजन्य साक्ष्य उसी के ख़िलाफ़ थे। वो ही था जो साथ जंगल जाता। वो ही था जिसके पास से कुछ ब्रिटिश पाउंड भी मिले थे।

हालाँकि वो कहता रहा ये उन्होंने खुद मुझे दिए थे।
उनकी मृत्यु के बाद उनका बंगला वैसे ही बंद कर दिया गया था। सब नौकर चले गए थे।

कोई भी रिश्तेदार है उनका कहीं किसी को न पता था। तो कोई आया भी नहीं था।

कुछ दिनों बाद बंगले का ताला तोड़ लोगों ने घर में मौजूद चीज़ें लूट ली थीं।

कोई ब्रिटेन के बेहद सुन्दर पर्दे ले गया तो कोई चाय के कप कोई उनकी ड्रेसिंग टेबल में मौजूद मेकअप का सामान और कपड़े तक । दद्दा बोले भाई झूठ नहीं बोलूंगा मैं भी तो चाय के कप ले आया था। 30 साल पहले न तो मुझे ज़्यादा अकल थी न ही यहाँ ज़्यादा पुलिस वुलिस थी।

गोरी मेम की लाश पुलिया में नहीं जंगल में मिली थी। दद्दा तो ऐसे बताते ज़ैसे गोरी मेम को अच्छे से जानते हों।

जिस दिन भी दद्दा से हम बच्चे गोरी मेम की ये कहानियां सुनते रात को और डर लगता।

मोम बत्ती जलाए सफ़ेद ड्रेस में कोई मुझ तक चली आ रही है लगता।

खिन्नी, अचार और आम लेने हम लोग जंगल जाया करते।

चीड़ घर के इर्द गिर्द खिन्नी के कुछ ज़्यादा ही पेड़ लगे थे। और छोटी, पीली, पकी हुई खिन्ननी ख़ूब लदी थीं। लोग कहते खिन्नी के पेड़ों पर सांप खूब आते हैं। लेकिन अब तक तो न दिखा था कोई सांप।

आज़ हम चीड़ घर के पास ही पंहुच गए थे । शाम 5 बजे अँधेरा तो न था। लेकिन बादलों ने पचमढ़ी को अपनी आगोश में पूरी तरह ले लिया था। हम सब ज़ैसे बादलों में समां गए हों इतना कोहरा था। सूरज और बादलों की छुपन छुपाई में सूरज छुप गया था। मौसम की खूबसूरती, स्कूलों की छुट्टियां, बचपन की बेपरवाही, खिन्नियों का स्वाद हम चारों को लौटने से कुछ देर और रोक रहा था।

खिन्नी के पेड़ छोटे छोटे होते हैं। आराम से चढ़ा जा सकता है। एक पेड़ पर एक ही बच्चा आम तौर पर चढ़ता।

मैं दोस्तों के पास ही दूसरे पेड़ पर था। खिन्नियों को चुनने की एक आदत सी लग जाती है। ठीक वैसे ही ज़ैसे आपके सामने पॉपकॉर्न रखे हों या मूंगफली..... आप खाते ही जाओगे। सोचोगे अब आख़िरी लेकिन हाथ फिर वहीं चले जायेंगे।

मैं खिन्नी तोड़कर एक पन्नी में रखते जा रहा था। बहन के लिए घर ले जाने।
तभी जिस डाल पर मैं बैठा था उसी पर एक काला बड़ा सांप लिपटा हुआ मेरी ओर जीभ लपलपा रहा था।

मैं बुरी तरह डर गया था। उन अंधेरों में बनी आकृतियों को छूने से गायब हो जाने वाला काल्पनिक डर नहीं था यह।

मैं नीचे कूद भी नहीं सकता था नुकीले पहाड़ थे।

उतर कर लौटने के रास्ते पर सांप था फन फैलाये। वह गुस्सा था मुझपर। मैं उसके घर जंगल में डाका डालने आया हूँ ज़ैसे।

मेरे दोस्त कुछ दूर अनभिज्ञ मस्त थे। मेरी आवाज़ निकलना बंद हो चुकी थी अचानक आये इस खतरे से।

सांप पास आता जा रहा था...बिल्कुल पास
खिन्नी के तने पर रेंगने की उसकी किसकिसी आवाज़ मेरे दिल को ज़ैसे धीमे धीमे छील रही थी।

तभी सफ़ेद कोहरे के एक टुकड़े ने सफ़ेद कपड़ों में लिपटी एक आकृति का रूप लेना शुरू किया।

धीरे धीरे वो वैसी ही आकृति थी...गोरी मेम जैसी। ज़ैसी मेरी कल्पनाओं में थी।
मेरा डर और बढ़ कर थम गया था।

उस आकृति के दिखते ही सांप अचानक मुड़ कर उतर गया था।

आकृति मुझ तक आती गयी और कान में फुसफुसाई "मेरी हत्या उस हेल्पर ने नहीं उस डॉक्टर ने की थी जो उस शाम इस अस्पताल में ड्यूटी पर था। वो औरत को वस्तु समझता

था।
विडम्बना देखो पचमढ़ी में पदस्थ एक मात्र डॉक्टर होने के नाते मेरा पोस्टमोर्टम भी उसी हत्यारे,रेपिस्ट ने किया था।
लेकिन तुम्हें कुछ नहीं करना है उसे सज़ा मैं न सिर्फ दूंगी बल्कि देती ही रहूंगी।"

मैंने अगले दिन दद्दा से उस डॉक्टर के विषय में पूछा था।बिना उन्हें बताये कि मुझे क्या पता चला था

दद्दा बोले हाँ उस नए अस्पताल में सरकार ने एक चिकित्सक भेजा तो था। कहते हैं बाद में वह पागल हो गया था, शराब के नशे में धुत्त दिन रात पड़ा रहता था। घर बार भी उसे छोड़ कर जा चुके थे।

मैंने पूछा वो कैसा दिखता था।

दद्दा बोले ये तो याद नहीं लेकिन काला सा रंग था उसका और काला कोट हमेशा डटाये रहता था।

गोरी मेम की आकृति ने मुझे कहा था इस बारे में तुम किसी को मत कहना वरना मैं रोज़ तुम्हें दिखने लगूंगी।

इतने वर्षों तक नहीं कहा लेकिन शायद आज से वो बादलों से आती दिखने लगेंगी।

।। वो ग्रीटिंग कार्ड ।।

एयरपोर्ट की कुर्सी पर बैठे वो थका हुआ था, यात्रा शुरू होने के पहले ही।
चेकइन हो चुका था कुछ ही देर में प्लेन आना था। यह पहला जॉब था उसका जो उसके अहमदाबाद आय एम् एम् से निकलते साथ ही उसे मिला था। ऑस्ट्रेलिया में।

जब चयन हुआ, कितना ख़ुश था वो। वो ही क्यों मम्मी, पापा, श्रुति सभी तो बेहद खुश हुए थे। लेकिन आज वह अब तक ऊहापोह, अनिर्णय की स्थिति में था। भीतर का तेज़ घूमते चक्र सा अंतर्द्वंद उसे बेचैन किये हुए था।रह रह कर उसे वो ग्रीटिंग कार्ड याद आ रहा था।

श्रुति और वो दोनों कॉलेज में साथ पढ़े थे। दोनों का कैंपस सेलेक्शन हुआ था। एक ही मल्टी नेशनल कंपनी में दोनों का चयन अच्छी तनख्वाह पर हुआ था।

पोस्ट ग्रेजुएशन के बाद नौकरी लगते ही दोनों की बरसों की दोस्ती और प्रेम संबंधों को शादी में बदलने का वक़्त भी आ गया था।

श्रुति ने कुछ बेहतर कंपनी और पैकेज छोड़ इस शर्त पर इस कंपनी को चुना था जहाँ विशाल को भी जॉब मिलना था।

दोनों की लव स्टोरी में कोई ख़ास घटना नहीं थी। दोस्ती थी सीधी सादी सी। दोनों पढाई में अच्छे थे। अलग अलग ब्रांच में
एम् बी ए कर रहे थे। दोनों दिखने में सौम्य, पढ़ाकू, महत्वाकांक्षी और परिश्रमी थे।

प्रपोसल भी तो कोई फ़िल्मी सा नहीं था कि वर्णन किया जाये।
विशाल था भी तो नहीं औपचारिक और फ़िल्मी टाइप।
हर बात में तार्किक दृष्टि रखता और निर्लिप्त भाव भी।

बस कह दिया था एक दिन वो भी ईमेल किया था उसने
"श्रुति बड़ा लंबा समय हो गया है दोस्ती का। तुम लगती भी अच्छी हो मुझे। मतलब...तुम्हारे साथ बात करना पसंद है मुझे। समय पता नहीं चलता। अस्वाभाविक ख़ामोशी नहीं होती हमारे बीच। हम दोनों खामोश भी हों साथ बैठे, तो वो बड़ा स्वाभाविक, एक समय के प्राकृतिक बहाव सा लगता है मुझे। जहाँ सिर्फ़ कहने के लिए ही कुछ न कहना पड़े।
ख़ामोश रहने को ही ख़ामोश न रहना पड़े।

तुम्हारा साथ सुकून भरा है। तुम्हारे बिना एक कमी भी लगती है।
तुम आदत हो या ज़रूरत पता नहीं। प्यार है यह, मुझे नहीं पता। बस ये पता है कि किसी के साथ जीवन गुज़ारना है तो वो तुमसा ही कोई होना चाहिए...हूबहू तुमसा। अब जब तुम सामने हो तो तुम्हारी हूबहू नक़ल क्यों ढूँढूँ।

श्रुति मुझे नहीं पता कि तुम क्या सोचोगी अचानक मेरे इस ईमेल पर। लेकिन कॉलेज ख़त्म

होने कुछ ही वक़्त रह गया है, मेरे मन में जो था वह बिना बताए जाना भी ठीक नहीं था।

क्या ये मेरा प्रेम पत्र है पहला....

पता नहीं।

लेकिन जो भी है मेरे दिल से निकले सच्चाई भरे विचार हैं...

बोलो बनोगी मेरे जीवन की सी ई ओ...
विशाल"

अगले दिन जब विशाल मिला था सफ़ेद जीन्स में और सफ़ेद टी शर्ट में बड़ा ही हैंडसम लगा था श्रुति को किसी भी और दिन से ज़्यादा। कॉफी हाउस में बैठे, एक दोस्त के साथ। चेहरे पर कोई तनाव, ऊहापोह, इंतज़ार नहीं दिखा था उसके। क्या ऐसे ही कोई प्रोपोज़ करता है? और क्या ऐसे ही अप्रभावित दिखता है ? क्या ये ड्रामा करता है कूल दिखने का या भीतर से है भी इतना ही कूल।

ईमेल श्रुति ने कल शाम को देखा था। और देखते ही विश्वास नहीं हुआ था उसे। कई कई बार पढ़ा...
विशाल की ही आई डी थी।

मुस्कुराई थी,फ़िर खूब हंसी थी। फिर उसकी प्रोपोज़ करने में भी वही लॉजिक ढूंढने की कोशिश पर सर झटक कर खिलखिलाई थी। फिर उसकी ज़िंदगी की सी ई ओ बनने के विचार में खो गयी थी तकिए पर कोहनी रख।

विशाल जहाँ तार्किक सा,व्यावहारिक सा था श्रुति वहीं फ़िल्मी सी थी। सबकुछ उसे ज़िंदगी से बड़ा ,फ़िल्मी परदे सा बड़ा कैनवास ,रंग, खूबसूरती,घटनाओं से भरा चाहिए था।

विशाल को सबकुछ मोनोटोनस, एकांगी, एक ढर्रे पर चलता चाहिए था।
श्रुति ने तकिए को गले से भींचते कहा था, विशाल आ रही हूँ मैं तुम्हारी ज़मी सी ज़िंदगी को पिघलाने...तुम्हारी व्यवस्थित ज़िंदगी को बिखराने। मुझे सी ई ओ बना कर पछताओगे तो नहीं।
श्रुति कॉफी हाउस की दूर की टेबल पर बैठ गयी थी। ऐसे दिखाते ज़ैसे उसने विशाल को देखा तक न हो।

उसका अपने ही प्रपोजल से बैचेन न होना उसके व्यक्तित्व से हालाँकि मेल तो खाता था लेकिन फिर भी कहीं विशाल ने ये तो नहीं समझ लिया न क़ि मैं तो ज़ैसे मरी ही जा रही हूँ उसके साथ रहने को। कहीं वह अप्रभावित न होकर पूर्ण आश्वस्त तो नहीं।

ऐसे में श्रुति को बहुत मन कर रहा था अपनी सबसे क़रीबी सहेली ऋचा को सबकुछ बताने और सलाह लेने का। लेकिन फिर वह रुक गयी थी।

कॉफीहाउस की टेबल से उसने कई बार देखा कि विशाल शायद अब देखेगा लेकिन वह तो अपने दोस्त से बतियाने में ही लगा था। 10 बार देखा होगा उसने पलट कर लेकिन एक बार भी फिल्मों जैसी आँखें नहीं मिली थीं दोनों की ।

वैसे लड़कियाँ हाँ करने वाली हैं इसके चिन्ह अपने मेकअप में ज़रूर लगा कर आती हैं। उस दिन वे ज़्यादा सुन्दर दिखना चाहती हैं। उस तारिख उस पल को वे आजीवन सहेजना चाहती हैं। पता है क्यों...जिससे लड़ सकें वे पल याद दिला कर कि देखो तुम्हें तो वह भी याद नहीं।

तुमने नीली शर्ट पहनी थी… बताओ मैंने क्या पहना था ?

पाँच रंग नीला, लाल, पीला, सफ़ेद, काला रंग पहचानने वाले लड़के कहाँ से मैरून, ऐश कलर,ग्रे,ब्रॉउन, वग़ैरह वगैराह पहचानते और याद तो कहाँ से रखते।

फिर श्रुति को नीरस सा प्रपोसल बिना फूल का, नहीं.... मज़ा ही क्या था । ये महत्वपूर्ण पल और वे भी और सभी पलों से मोनोटोनस।...नहीं यार। "मेरे हीरो कुछ तो कर"...

श्रुति ने कहा था एक तो न तो मेरे मम्मी पापा न उसके, इस रिश्ते से मना करेंगे न ही कोई मामा, फूफ़ा, जीजा, भाई जैसा विलेन ही आयेगा। विशाल की तो कोई परीक्षा ही न हो पाएगी मुझे पाने की।
न इससे कोई कहेगा तमिल, हिंदी, गुजराती कुछ सीख कर आ फ़िर मिलेगी श्रुति तुझे... न कोई पिता दाढ़ी पर हाथ फेरते कहेगा कुछ हासिल करके कुछ बन के बता फिर मिलेगी श्रुति तुझे।

अरे यार ये क्या...ऐसे ही आसानी से सबकुछ...इतने भी अच्छे नहीं हो विशाल तुम।
जब भी श्रुति कहती थी उसे कि "विशाल कितनी एक सी ज़िंदगी जीते हो तुम…एक ढर्रे पर बोर नहीं होते"

विशाल कहता, "बार बार का बदलाव भी तो कितना मोनोटोनस होता है। बदलाव तो है लेकिन बदलाव स्वयं ही ढर्रा बन जाये तो वह भी तो बोरिंग है।
इसलिए मैं बदलता हूँ। लेकिन जीवन का पैटर्न नहीं जीवन को महससू करने के तरीके बदलता हूँ।

पृथ्वी लगातार एक ही धुरी पर हजारों बरसों से घूमती रहती है एक ही ढर्रा लेकिन फिर उस एक ही पैटर्न से कितने ही मौसम बनते हैं न बदले बदले से। बाहर से एक सी भीतर से विविधता भरी।"

और जब भी विशाल ऐसी दार्शनिक बातें करता वह गालों पर दोनों हाथ रखे ध्यान से सुनती। हंसती भी। और जानबूझ कर ऐसे विषय छेड़ भी देती क्योंकि विशाल ये दार्शनिक बातें सिर्फ़ उससे करता। उसे लगता कि शायद मैं समझ जाऊंगी या शायद कम से कम इस भौतिक ज्ञान के कॉलेज में कम से कम उस पर इन बातों के लिए हंसूंगी नहीं।

आख़िरकार विशाल कॉफ़ी हाउस में बतियाता रहा लेकिन आया नहीं श्रुति के पास।

फूल, गुलाब, चॉकलेट तो छोड़ो वो उत्तर पूछने तक नहीं आया।

आख़िर श्रुति ने लिख ही दिया था उसी दिन, मेल करिप्लाई बॉक्स में।

"ओके विशाल, शादी भी ई मेल करके ही कर लेना और हनीमून भी। और बच्चे भी ईमेल पर ही हो जाएंगे। लेकिन किससे कर रहे हो और कौन तुमसे कर रही है एक बार बता देना।"

टाइप करके ई मेल वो पोस्ट करने उंगली ले ज़ाती लेकिन बार बार रुक जाती यह सोच कि, वो समझ जायेगा मैं अधीर हो रही हूँ। "बात तो उसे ही करनी होगी,तू नहीं करेगी....लड़कियों की कुछ इज़्ज़त भी होती है....."। उसने खुद से वादा लिया था। अपना मन कड़ा किया था।
दोनों अपनी अपनी क्लासेज में चले गए थे ।

"विशाल एक फोन, एक मैसेज तो कर सकता था"..... लेकिन उसने नहीं किया।

बड़ा बनता है। वैसे तो रोज़ आ जाता था....लिखता है तुम्हारी कमी खलती है। याद हो चुके ईमेल को फिर से खोलकर पढ़ने लगी थी श्रुति। कितनी ही बार....
ज़ैसे हर शब्द से उनकी गहराई और सच्चाई पूछना चाह रही हो।

बस यही फ़िल्मी था कि प्रोफ़ेसर कुछ पढ़ा रहे थे और उसका दिमाग़ कहीं और था....

विशाल के संग... बर्फीली वादियों में...

विशाल की बोरिंग फॉर्मल बेरंग शर्ट को उतार कर लाल ट्रेक सूट, लंबे बाल, लंबे बूट, हैट, कल्पनाओं में ही सही उसने अभी अभी पहना दिए थे।
खुद बर्फ़ीले पहाड़ों पर स्लीवलेस कुर्ती और जीन्स पहने यहाँ वहां दौड़ते।

कितना फ़िल्मी था यह भी कि प्रश्न भी उसी से पूछा था प्रोफेसर ने और वो कुछ भी नहीं सुन रही थी। उसका मस्तिष्क तो कोई गीत रच रहा था, बर्फ़ीले सफेद पहाड़ों, सफेद बादलों, चीड़ के हरे पेड़ों, गालों से टकराती ठंडी हवा, नशीला प्यार, बर्फ़ में विशाल संग वो थर्मस की गर्म कॉफी...और कहाँ ये प्रश्न..

बाजू में बैठी जयोत्सना ने कोहनी मारी थी फुसफुसा कर कहा था, "तुझसे प्रश्न पूछ रहे हैं पगली"।

श्रुति चोंक कर उठ खड़ी हुई थी। पूरी क्लास में ठहाका लग रहा था। लेकिन उसे बड़ा अच्छा लग रहा था यह सब...फ़िल्मी जो था...

अरे कुछ तो होता जब मैं बता सकती अपने नाती पोतों को कि कैसे तुम्हारे दादा जी और मैं मिले थे...हम न मिलते तो बच्चू तुम भी न होते। तुम छोड़ो तुम्हारे मम्मी पापा भी न

होते...

"तो दादी आप दोनों के मिलने से मम्मी पापा कैसे हो गए" ?

"और मैं एक चपत लगाती अरे भागो यहाँ से, कहानियां यहीं तक जो सुनायी जाती हैं।"

शाम को अलग अलग कमरों में क्लास ख़त्म होने के पहले कॉलेज कैंपस में लगे एक बड़े से पीपल के पेड़ के नीचे रखी सीमेंट की कुर्सी पर कुछ देर के लिए विशाल बैठता था। उसे पता होता था श्रुति भी यहीं आयेगी। और जब श्रुति की क्लास ख़त्म होती वो वहां बैठती। बरसों से किसी कॉलेज के अनूठे साहित्यकार ने इस पेड़ को ये नाम दिया हुआ था। दरअसल ये अनूठे गुमनाम साहित्यकार छात्र इसी तरह के कालजयी नाम और जुमले आने वाली पीढ़ियों के छात्रों को दे जाते हैं। ये नाम वे शिक्षकों, पेड़ों, संबंधों , लड़कियों, लड़कों सबके रखते, और कुछ तो असल नाम से ज़्यादा प्रचलित हो जाते। ज़ैसे टेंपो मैम का नाम दीक्षित मेम भी है कुछ ही लोगों को पता था।

इस पीपल के पेड़ का नाम उस अनूठे गुमनाम साहित्यकार ने रखा था 'पिया मिलन ट्री'। जिसे अब, सभी कुछ ज़ल्दी करने वाली डिस्पोज़ल रिश्तों की पीढ़ी ने शार्ट फॉर्म बना कर इसे पीएमटी कहना शुरू कर दिया था।

पीएमटी सच में पिया मिलन ट्री था। कितने ही प्रणय प्रस्ताव, स्वीकार, अस्वीकार होते, इसके बड़े बड़े पत्तों ने देखे थे। शाम के बाद के कुछ देर के अंधेरे में आलिंगन देखे थे। हाँ यहाँ रिश्ते बनते थे , टूटते थे, टूट कर फिर जुड़ते थे, प्रगाढ़ होते थे। कुछ था जो यह विशाल वृक्ष प्रेम का संरक्षक सा बन गया था। अपनी विशाल भुजाओं से आभास देता कि चिंता न करो मैं हूँ न। न मैं ज़ात पात मानता हूं, न मैं उंच नीच मानता हूं। न मैं मोरल पोलिसिंग करता हूँ। मुझे खुशी है दो लोग प्रेम में पिघल रहे हैं और मिल रहे हैं तो। वृक्ष के ऊपर का चाँद, तेज़ चमकता चाँद खुद को बादलों से ढँक लेता शर्माकर। और फ़िर चोरी से आधा निकल विशाल तनों और पत्तों के झरोखों से देख लेना चाहता दो आत्माओं का मिलन।

उस दिन श्रुति जानबूझ कर ज़ल्दी आ गयी थी और वृक्ष से कुछ दूर बैठ गयी थी एक दीवार की आड़ में।

विशाल वृक्ष के नीचे घास पर,बेंचों पर लड़के लड़कियां रोज़ की भांति बैठने लगे थे। हाथों में कॉफी मग, कोल्ड्रिंक, पॉपकॉर्न लिए खिलझिलाहटों की धीमी आवाज़ें उस तक आ रही थीं। उसे इंतज़ार था कि उसका हीरो आ कर बैठे पहले, फिर वो जाये। विशाल के बैठने का अर्थ होता..., हाँ वह उत्तर सुनना चाहता है। "बेचैन न सही लेकिन उसे मेरा इंतज़ार तो है"।

और यूँ विशाल की क्लास ख़त्म होते वो दिखा था। सीधे बाल, काला पेंट,हाथ में काला फोल्डर फॉर्मल सफ़ेद शर्ट परफेक्ट सा जेंटलमैन...ज़ैसे अभी अभी कोई प्रेजेंटेशन देने जा रहा हो।

वो बाहर आ कर सीधे पेड़ की और बढ़ा था। श्रुति का दिल आज वाक़ई तेज़ धड़कने लगा था। इस धड़कन के गाने उसने कितने ही सुने थे। यूँ महसूस पहली बार किया था।

खुद को संभाल बोली यार मज़ा तो आता है इस दिल के धड़कने में।

उसका मन किया विशाल के कदम स्लो मोशन में आगे बढ़ें, तेज़ हवा चलने लगे और कितना अच्छा हो तेज़ बारिश हो जाये लेकिन बूंदों से तरबतर वो आगे बढ़ता रहे स्लो मोशन में।
"लेकिन बारिश होने से कौन सा ये आगे बढ़ता रहेगा स्लो मोशन में ये तो फ़ास्ट फॉरवर्ड हो कर छुप जायेगा किसी शेड के नीचे। कहीं इसकी शर्ट ख़राब न हो जाये।"

"जो भी है, फर्क है जीने का हमदोनों में लेकिन है विशाल बेहद अच्छा, सकारात्मक इंसान। उसे न पता हो लेकिन मुझे तो पता है क़ि मुझे उससे प्यार है।"

"एक बार भी क्या आँखों की तारीफ़ नहीं कर सकता था मेरी। ये क्या कि तुम्हारे साथ कम्फर्ट ज़ोन है मेरा।"

"क्या हॉट नहीं बोल सकता था मुझे... कूल तो मैं हूँ ही पता है मुझे।"
और बारिश तो नहीं हुई लेकिन विशाल जा कर बैठ गया था पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर। बेंच पर कोई और जोड़ा बैठा था। चबूतरे पर बैठने के पहले उसने एक अख़बार बिछा लिया था फोल्डर से निकाल।
"अरे हो जाने दे न पेंट गन्दा। क्या क्या सहेजोगे विशाल।"

श्रुति छुप कर देखती रही। 20 min तक नहीं गयी। उसकी भी क्लास छूटते विशाल ने देख लिया था।
ज्योत्सना को श्रुति ने जानबूझ कर कहा था क्लास के बाद वहां मिलना। ज्योत्सना को देख विशाल ने पूछ ही लिया। हाय जयोत्सना श्रुति कहाँ है?...

श्रुति बड़ी खुश हुई कि, देखा हुई न तुम्हें बेचैनी।

ज्योत्सना कुछ कह कर चले गयी। तब श्रुति निकल कर पी एम टी की ओर बढ़ी। ग़ुलाबी सलवार सूट पर...पहली बार हल्की लिपस्टिक भी लगाई हुई थी। कहा था न लड़कियां हाँ या न के निशान बनाती हैं मेकअप से। और फिर चाहती हैं इन निशानों को वो पहचान ले। होठों पर हैं तो वो उसे मिटा दे।

संयत चाल से धड़कते दिल से उत्पन्न मनोभावों को छुपा वो विशाल के पास पंहुच गयी थी।

विशाल उठ कर खड़ा हुआ, हाथ मिलाया। "और कैसी हो"? बैठो...

अख़बार छोटा था, मिट्टी के चबूतरे पर उसकी ओर अख़बार सरका दिया था विशाल ने। बैठो प्लीज।

दोनों के बैठने के कुछ देर तक ख़ामोशी थी, दो शब्दों के बीच का यह ख़ालीपन युगों से होता है उन दो दिलों के लिए जो प्रतीक्षारत हों
दूसरे दिल से कुछ सुनने।

दोनों एक साथ बोले थे "कुछ बोलो न...
एक साथ एक ही बात एक अंतराल के बाद बोलने से दोनों हंसे थे। इसका अर्थ साफ़ था, दोनों दिल एक ही दौर से गुज़र रहे थे। जीवन के सुखद ,यादगार रह जाने वाले लम्हें। इन्हें धीमे ही गुजरने दो। पीपल के पत्ते कुछ ज़्यादा हिलने लगे थे,वातावण में मौजूद हल्की हवा एक संगीत रच रही थी। श्रुति के बालों को बार बार उड़ा कर गालों और आँखों पर ले आती ज़ैसे विशाल को हिंट दे रही हो ,लट को ठीक कर दे न। श्रुति भी उन्हें बस हटाती और फिर उड़ जाने देती। डूबता सूरज आश्वस्त सा बादलों पर नारंगी ब्रश चलाता डूबता जाता। दो दिल बस मिल ही जायेंगे अब।

वो दोनों ख़ामोश बैठे रहे थे बहुत देर। कुछ न पूछा था विशाल ने और न ही श्रुति ने। हाँ विशाल ने हाथ पकड़ कर रख लिया था अपनी गोद में। डूबता सूरज चाँद और कुछ घने काले बादलों को भेज गया था। आख़िर बादल गरज़ उठे थे, कुछ बिजलियाँ चमकी थीं, बारिश की बूँदें पीपल के पत्तों से पवित्र हो कर दोनों तक आने लगी थीं।

"विशाल बारिश हो रही है...भीग जाएंगे...चलें"...
विशाल ने श्रुति को खींच लिया था कंधे पर अपनी ओर। अपने कंधे पर सर रख हाथ पकड़े दोनों बैठे रहे थे।
"बारिश कितनी अच्छी ही न। विशाल मैं चाहती थी आज हमें यह भिगाये।

और हाँ तुम मुझे अपनी ज़िंदगी की सी ई ओ बनाना चाहते हो न...

तो सोच लो…

बेतरतीब हूँ मैं सब व्यवस्थित सा है तुम्हारा बिखरा दूंगी मैं।"

"श्रुति एक बात बताऊँ ये लगातार परफ़ेक्ट रहना बोरिंग है बड़ा।
अब एक काम करो मुझे गोवा ले चलो। इस पेंट की जगह शॉट्स, सीधे बालों की जगह पोनीटेल और हाथ में एक ब्रेसलेट, खुली रंगबिरंगी शर्ट पहना दो मुझे। हाँ बेतरतीब बना दो मुझे।"

और यूँ श्रुति विशाल दोनों एक साथ घूमते,बैठते,पढ़ते,सपने देखते भविष्य के। प्लान करते आगे का कैरियर। दोनों ने अपने
अपने घरवालों को बता दिया था। दोनों के घरवाले ख़ुश थे। ज़ात पात वे मानते नहीं थे और कोई कारण था नहीं कि, श्रुति की इक्छा अनुसार कुछ फ़िल्मी होता।

कॉलेज कैम्पस में दोनों का चयन हुआ था। एक ही कंपनी में दोनों ने जॉब ऑफर क़ुबूल लिया था।

एक माह में ऑस्ट्रेलिया शिफ़्ट होना था

घरवालों ने तय किया था क़ि दोनों शादी करके ही जाओगे।

तेज़ी से शादी की तैयारी रस्मे पूरी कर ली गयी थीं।

विशाल को शादियां तो फिजूलखर्ची लगती थीं। "उसका बस चले तो कोर्ट मैरिज करके ले जाये मुझे।"

रोड ब्लॉक कर बारात जाते और सड़कों पर पटाखे फोड़ते लोगों को देखता तो दूल्हे को चिल्लाकर कहता "भाई मत कर ऐसा, लोगों की बद्दुआ लग गयी तो बीवी भाग जायेगी तेरी।"

मैं चुप कराती उसे।"

लेकिन श्रुति को फ़िल्मी सी वो महंगे लहंगे, महिला संगीत, वरमाला, फेरे, पंडित जी, घोड़ी,बाराती, जूता चुराई, सालियों, देवरों की चुहल, मिठाइयों और विदा पर फूट फूट कर रोने वाली शादी चाहिए थी।

ज़ोर शोर से तैयारियां चल रही थीं। दोनों ओर से। विशाल की बहन, मौसी, मम्मी वग़ैरह उसके सूट बूट वग़ैरह तैयार करवा रही थी।

उधर ऑस्ट्रेलिया के टिकट वीसा वग़ैरह दोनों तैयार हो चुके थे।

शादी के 2 दिन बाद ही दोनों को निकलना था।
श्रुति खुद लगी हुई थी स्कूटी से दौड़ भाग कर सारी तैयारियां करने।

और फिर जो मोड़ आया था ज़िन्दगी में उनकी, उसे लिखते भी मेरे हाथ कांप रहे हैं।

विशाल को फ़ोन पर बताया गया श्रुति का एक्सीडेंट हो गया है।

सब बदहवास से श्रुति के शहर पंहुचे थे। अस्पताल के आई सी यू में वह वेंटिलेटर पर थी।

उसे गंभीर स्पाइनल कॉर्ड इंजुरी हुई थी जिससे उसके दोनों हाथ पैर काम करना बंद कर चुके थे और साँसे भी वो खुद नहीं ले सकती थी। उसके मस्तिष्क पर चोट न होने से वह होश में तो थी लेकिन अभी नींद के इंजेक्शन दिए गए थे।

स्पाइनल कॉर्ड इंजुरी को गूगल सर्च पर बहुत पढ़ डाला था विशाल ने।

आई सी यू में डॉक्टर ने किसी एक सदस्य को रुकने की इज़ाज़त दी थी। श्रुति की माँ ने डबडबाई आँखों से विशाल को कहा था पास रहने।

विशाल दिन रात रुका रहता। चिकित्सकों से हर संभव कोशिश करने कहता रहता। बाहर कहीं ले जाना ठीक होगा क्या यह भी पूछा।

इस समय ऑपरेशन से फायदा नहीं होगा चिकित्सकों ने बताया।

8 दिन बाद नींद का असर ख़त्म होते ही विशाल को सामने देखा था श्रुति ने। वेंटीलेटर सांस की नली से जुड़ा था। स्पाइनल कॉर्ड इंजरी की वजह से श्रुति बोल भी नहीं सकती थी। बोलती तो सबसे पहले यही बोलती कि, "देखा विशाल हमारी कहानी में कुछ भी फ़िल्मी सा न था। मज़ा नहीं आ रहा था।"

डॉक्टर ने बताया था क़ि श्रुति लंबे समय तक् वेंटीलेटर पर रहेगी शायद, और उसके हाथ पैर शायद ही कभी काम आ पाएं

दोनों के ऑस्ट्रेलिया के टिकट कैंसिल कर दिए गए थे लेकिन फिर भी कंपनी ने एक्सीडेंट की बात सुन 3 माह का समय दिया था। तीन माह हम आपका इंतज़ार करेंगे उनका ज़वाब आया था।

दिन रात सेवा, फिजियोथेरेपी, विशाल करता रहा श्रुति के पास बैठे। नींद आ ज़ाती तो बिस्तर पर सर रख ज़मीन पर बैठ सो जाता।

3 माह बीत गए थे। श्रुति की सांसें लेने की क्षमता तो ठीक हुई थी लेकिन हाथ पैर सब वैसे ही शिथिल थे। वेंटिलेटर अलग कर दिया गया था। हाथ पैर के ठीक होने की संभावना अब बेहद कम है डॉक्टर ने कहा था। घर तो आ गयी थी श्रुति लेकिन बिस्तर पर पडी हुई। चम्मच से बमुश्किल कुछ पी पाती थी।

ऑस्ट्रेलिया की कंपनी ने और इंतज़ार करने में असमर्थता दिखाई थी।

माँ, पिता भाई बहन सब कह रहे थे अब तुम चले जाओ अपना भविष्य मत ख़राब करो । हम देखभाल कर लेंगे।

आँखों और होठों को हिलाकर श्रुति ने भी यही कहा था बार बार, दिल से तीमारदारी करते लोग आँखों, होठों की भाषा समझने लगते हैं। । कि जाओ। मैं चाहती हूँ कि जाओ। बड़े आदमी बनो।

आख़िरकार वो एयरपोर्ट पर आ गया था। लेकिन थका, हारा, अंतर्द्वंद से दिमाग चकराता बैठा था।

उसे बार बार एयरपोर्ट की एक दीवार पर लगी ये अंग्रेज़ी में लिखी पंक्तियां दिख रही थीं...जिसका अर्थ था।

देखिये आपका कुछ छूट तो नहीं गया....

लेकिन करे तो क्या करे। उसकी ब्रांच में इससे अच्छा अवसर अभी फिर मिलना बहुत मुश्किल था।

आख़िरकार वो तेज़ी से लौट गया था, घर पंहुच कर वही पुराना ग्रीटिंग कार्ड निकाला था, जो कि उसकी प्रिय मैडम ने स्कूल में टॉप करने पर उसे दिया था। एक समय कितना अहम् था यह कार्ड उसके लिए।

उस पर लिखा था,

प्रिय विशाल
तुम बहुत प्यारे बच्चे हो, बहुत आगे जाओगे। लेकिन आगे जाने में कोई तुम्हारा कोई पीछे न छूटे तब मैं तुम्हें सबसे आगे और सबसे बड़ा मानूंगी ।

वह तुरंत श्रुति के शहर की ओर निकल गया था।

माँ को फोन पर कहा, "माँ जॉब तो मैं फिर से करूँगा ही लेकिन पहले एक अधूरा काम पूरा करना है।

आप श्रुति से मेरी कल ही शादी की तैयारी करो। सारी रस्मे जो भी संभव हो सब करनी हैं।"

उसने माँ को कुछ भी कहने का मौका नहीं दिया था।

पास पंहुच उसके बिस्तर पर पंहुच उसका हाथ पकड़ कहा था। "मेरी ज़िंदगी में कोई सीईओ नहीं चलेगा तुम्हारे सिवा।

और हाँ सच कह रहा हूँ, स्पाइनल कॉर्ड इंजुरी का नया इलाज स्टेम सेल से ढूंढ लिया गया है। वादा करता हूँ हम दोनों मिल कर तुम्हें ठीक करके रहेंगे।"

।। मैं ही क्यों ।।

वो छत पर आ जाया करती थी। भुवन
और वो दोनों साथ ही तो बड़े हुए थे। एक दूसरे के घर खेलना,
पिट्टू से लेकर क्रिकेट तक । अरुंधति प्यारी सी छोटी, गोलमटोल चुलबुली लड़की थी।

भुवन उससे लड़ता भी बहुत था। एक बार मार दिया तो वो बहुत रोई थी। लेकिन अपनी मम्मी से नहीं कहा था, भुवन को डांट पड़े उसने कभी नहीं चाहा। अरुंधति को सब अरु कहते ।

भुवन की माँ नहीं थी। क्या हुआ था उन्हें न ही उसके पिता ने और न ही भुवन ने कभी कहा। भुवन ने कभी ज़िक्र भी नहीं किया था उनका। कोई कुछ पूछता तो बस शांत, एक टक कुछ देर तक शून्य में देखता रहता। अरु ने पूछा कभी तो उसे भी एक टक देखता रहा था।

कभी कभार जब पापा ड्यूटी से ज़ल्द नहीं आ पाते, चाबी अरु के घर में दी हुई होती। भुवन स्कूल से लौट कर चाबी तो ले लेता लेकिन घर में खाना नहीं होता। अरु की मम्मी ऐसे में उसे अरु के साथ ही प्यार से खाना खिलाती।

अरु मम्मी से कभी पराठे, कभी हलवा कभी पकौड़े बनवा कर दे जाती थी टिफिन में। भुवन और उसके पापा के लिए।

धीमे धीमे दोनों बड़े हो गए थे। अब पहले ज़ैसे आना जाना नहीं होता। बातें भी औपचारिक सी थीं । एक बात और थी अरुंधति बड़े होते होते बहुत मोटी हो गयी थी। उसका इलाज भी करवाया, अंकल आंटी ने लेकिन वो दुबली नहीं हो पाई।
वो खाती भी बहुत कम, व्यायाम भी करती, सब हॉर्मोन की जांचें भी सामान्य थीं लेकिन वज़न था कि कम न होता।

17 साल की खूबसूरती गोर गालों, बालों, अल्हड हंसी, सब तो था लेकिन उसका वज़न आंटी की चिंता का बड़ा कारण बन गया था। अरु को खुद तो समझ न आया था, लेकिन दुनिया ने स्कूल में सहेलियों ने, लड़कों के तंज़ ने बताना शुरू कर दिया था कि वो न सिर्फ मोटी है बल्कि मुटल्ली, भैंस, टुनटुन है।
जब वो चलेगी तो ज़मीन कराहेगी, पिछला भूकंप दिल्ली में उसके रस्सी कूदने से ही आया था।

उसने सुना था माँ से "अरु का कुछ करो न, कोई दवा, ऑपरेशन कुछ भी करवाओ। कैसे लड़का मिलेगा उसे । 10 गुना दहेज़ में भी समाज में अच्छा लड़का न मिलेगा।"

पापा झल्ला गए थे, बार बार ये चिकचिक जो सुनते थे और यह चिकचिक न भी सुनते तो क्या मन में तो उनके भी यही सब था न।

"क्या करूँ, मर जाऊं...दिखा तो दिया सबको। वो कहते हैं जेनेटिक हैं। अब मेरे खानदान में तो कोई मोटा नहीं तुम ही देख लो अपना जेनेटिक्स।"

अरु शुरू में तो हंसती थी जब सहेलियां उसे मोटी ए मोटी कहतीं लेकिन धीमे धीमे उसे यह प्यार से किया गया मज़ाक, मज़ाक लगना बंद हो गया। ज़ैसे कोई चोट को हर बार छू जाये, कुरेद जाये कुछ वैसा अहसास था ये।
जब वो पैदल चलती तो उसे लगता ढेरों आँखें उसकी पीठ पर चुभ रही हैं। ढेरों आवाज़ें मोटी मोटी कह रही हैं।
वो सोचती कई बार, ईश्वर से कहती... ईश्वर... मैं ही क्यों ?

इस तरह वह अवसाद में जाने लगी। हर अनजाना मज़ाक कहने वाले को नहीं पता होता था कि इस लड़की को अवसाद में धकेल रहा है।

वह पढाई में भी पिछड़ने लगी थी।

उधर भुवन 17 का होते होते, लंबा,दुबला, लंबे सीधे काले बालों का सांवला सा हैंडसम युवा बन गया था। पढाई, खेल, वाद विवाद सबमे अच्छा था वो। साथ ही जीवन, समस्याओं, खुशियों,इंसानी मनोविज्ञान की भी गहरी समझ विकसित हो चुकी थी उसमें। बिन माँ के बच्चे वात्सल्य,ममता,करुणा की खोज में अनजाने ही लगे हो कर मानवीय मन की परतें उधेड़ देते हैं। भीतर तक घुस जाते हैं वो खोजने जो सबसे कीमती था और गुम गया था। और ऐसे में वे पाते जाते हैं अनगिनत छुपे मनोभाव , इंसानी ज़ज़्बातों के रहस्य। हाँ ममता, करुणा,मां का
वो ब्रह्माण्ड सा आँचल नहीं मिलता लेकिन उनकी वो खोज़ रुकती भी नहीं है आजीवन।

अरु टूटे मन से छत पर आ जाया करती थी । छत आसमां के क़रीब जो ले आती थी उसे । दुनिया से कुछ दूर। एक खाली रजिस्टर में कुर्सी पर बैठ कर वो तस्वीरें बनाते रहती। कभी बार्बी डॉल की, कभी दुबली पतली उड़ती हुई परी की।
स्कैच करते हुए आदतन उसकी नज़रें नीचे क्रिकेट खेलते भुवन पर जाती रहतीं। क्यों वो अब पहले सा नहीं मिलता ? क्यों वो अब घर नहीं आता। क्या है ऐसा इस उम्र में जो बंदिशें लगवा जाता है ? और हाँ क्यों अब वो 'वैसा' अच्छा नहीं लगता ?
खुद से पूछती है...
"फिर बता अरु 'कैसा' अच्छा लगता है वो अब ?"

और टूटे मन और बुझे चेहरे पर एक मुस्कराहट आ गयी थी कुछ क्षणिक ही। लेकिन इस मुस्कराहट में वही अलौकिक सौंदर्य था जो प्रेम में पगे दिलों से निकलता है।

भुवन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में चयनित हो गया था।

स्कूल ही नहीं शहर भी गौरवान्वित था। काजू कतली ले कर आया था घर, यह बताने कि "वह ज़ा रहा है दिल्ली ज्वाइन करने।"

अरु खुश थी बहुत उसका बचपन का साथी और पड़ोसी,
देश के सर्वश्रेष्ठ नाट्य विद्यालय में चयनित जो हुआ है। अरु टॉपर होते हुए भी डॉक्टर, इंजिनीयर नहीं बनना चाहता था। उसे तो अभिव्यक्ति देनी थी जीवन की, मानवीय मनोभावों की, अपने लेखन और अभिनय से।

लेकिन साथ ही अरु दुःखी भी थी। अब तो वो छत भी शायद इस दुनिया से न निकाल पाये। उस स्कैच वाली दुबली परी के पर क़तर दिए ज़ा रहे थे, उड़ी तो गिरेगी अब।

भुवन के लिए वो शरबत बना लायी थी।

"औऱ, एक्टर बनोगे अब, तुम्हारी तो तस्वीरें देखेंगे हम सब टीवी और अख़बार में"

अरे नहीं अरु। बस जो अच्छा लगता है वह करना चाहता हूँ।

"तो क्या अच्छा लगता है तुम्हें...और।"

वो बस एकटक देखता रहा था कुछ देर।

अरु के गोरे गालों का रंग तेज़ी से बदला था। दिल ने तेज़ धड़क कर गालों में रक्त प्रवाह बढ़ा दिया था। कवियों को यही तो दूध में घुले ग़ुलाब सा रंग लगा करता है न। भुवन को लगा था या नहीं पता नहीं। "क्यों लगेगा? मैं मोटी जो ठहरी"

कुछ देर की ख़ामोशी के बाद भुवन ने कहा था। "अरु तुम आज़कल बहुत उदास दिखती हो। एग्जाम में भी अच्छे मार्क्स नहीं आये। क्या हुआ है तुम्हें ?"

अरु की आँखे डबडबाई थीं।
"देखो अरु तुम्हें एक बात कह कर जाना चाहता हूँ। तुम इर्द गिर्द रहती हो न मेरे तो बड़ा अच्छा लगता है, सुरक्षा महसूस होती है। लगता है मैं भूखा नहीं रहूँगा। लगता है अकेला नहीं रहूँगा। तुमसे दूर जाना अच्छा नहीं लग रहा। लेकिन यही तो ज़िंदगी है। तुम उदास क्यों हो इसका कुछ अंदाज़ है मुझे।"

देखो अरु तुम मोटी हो या दुबली मैंने कभी देखा नहीं। जिन्होंने यह देखा वो कहाँ तुम्हारे हैं। अपनी खूबियों पर ध्यान दो। जो कि तुममें ढेरों हैं।

देखो तुम कितने सुन्दर चित्र बनाती हो। देखो तुम कितनी केयरिंग हो। देखो तुम कितनी चुलबुली थीं औऱ हो। हँसकर बोला, देखो तुम्हारे तारीफ़ सुनकर लाल होते गाल कितने सच्चे हैं। देखो कि तुम्हारे पास माँ है मेरे पास नहीं।

और वो चला गया था।

लेकिन उसका यह बोल कर जाना मानो ज़ादू कर गया था अरु पर।

अब वो खुश रहती, संयत.... मोटापा उसे परेशां नहीं करता।

इंटीरियर डिजाइनिंग के कोर्स में उसने दाखिला ले लिया था।

अगले तीन वर्षों में भुवन आया घर 4 बार। हर बार उसके लिए कुछ लेकर आया। कभी दिल्ली से कुर्ती तो कभी कंगन। लेकिन हर बार वे छोटे पड़ जाते। खूब ताकत लगा पहनने की कोशिश करती और फ़िर आईने के सामने खड़े होकर खूब खिलखिलाती।

क्या भुवन को वो अच्छी लगती है ये उसने कभी सोचा ही नहीं। उसे पता था भुवन की वो दोस्त है बचपन की। अच्छी वाली दोस्त, लेकिन इससे ज़्यादा सोच कर वो खुद को दुःखी नहीं करना चाहती थी। उसे पता था दिल्ली की कोई खूबसूरत मॉडल जैसी लड़की भुवन की गर्लफ्रेंड होगी।

जब भी आता वो पूछती भी भुवन से। "क्यों कोई मिली" या "क्यों कोई बनी"

और इस प्रश्न का उत्तर कभी हाँ न मिल जाये डरती भी रहती।

कॉलेज ख़त्म होते ही भुवन को मुंबई के कुछ टीवी सीरियल मिलने शुरू हो गए थे थिएटर तो वो कर ही रहा था।

इधर अरु की माँ को रिश्तों की चिंता खाये जा रही थी। फोटो तो किसी तरह कम मोटे दिखते में खिंचा ली थी लेकिन जो भी देखने आता, लौट कर कोई जवाब न देता।

अरु ने इस तरह से बार रिजेक्ट होने से लड़के देखना बंद कर दिए थे।

भुवन बेहद छोटे से रोल में टीवी पर दिखा था। अरु बहुत खुश हुई थी।

फोन कर बोला था "भुवन तुम तो स्टार बनने वाले हो यार "बहुत अच्छा परफॉर्म किया था।

अरु की मम्मी ने भी बधाई दी थी।

मम्मी ने बात करते करते फिर वही बात कह दी थी... जो वे आज़कल हर किसी से कहती थीं।

"बेटा तुम तो इतने लोगों से मिलते जुलते हो, देखो न कोई लड़का। तलाकशुदा भी चलेगा। इतनी अच्छी लड़की है बस इसके मोटापे ने जीवन ख़राब कर रखा है। जेनेटिक कारण सुनकर तो लोग और भाग जाते हैं। अब ये भी तो ज़िद पकड़े है कि सच ही बताना है ।

और भुवन ने हँसते हुए कहा था "आंटी एक मोटापा रोग विशेषज्ञ है उससे बात करूँ ? अगले हफ्ते आ रहा हूँ मैं उसे लेते आता हूँ।"

अगले हफ़्ते भुवन सच में आया था।
अपने पापा संग।

आंटी मोटापा रोगविशेषज्ञ तो आया नहीं, मैं आया हूँ। ग़र आप और अरु को पसंद आ जाऊं। मुझे अरु बचपन से पसंद है, लेकिन कुछ बन कर ही बताना चाहता था। आप लोग उसकी शादी को लेकर परेशान हैं जब पता चलता तो हँसता था। कि देखो पड़ोस में लड़का है और उससे पूछा तक नहीं।
अब बताइये.....

एक माह बाद आज दोनों की सगाई थी
अरु और वो एक अलग कमरे में थे।

अरु रो रही थी फफक फफक कर।

"मुझसे सहानुभूति में कर रहे हो न शादी। मदद करना चाहते हो अपने दोस्त की। तुम्हें तो कोई और सुन्दर,बहुत सुंदर छरहरी भी मिल सकती थी। फिर मैं ही क्यों..... ?
"मैं ही क्यों चाहिए तुम्हें...?"

भुवन ने अरु जे आँसू से गीले, गालों को पकड़ ऊपर किया था, नहीं...

पागल सहानुभूति कैसी ? तुममें क्या कमी है ? और क्या सहानुभूति में कोई इतना बड़ा निर्णय लेगा, दो लोगों और परिवारों के जीवन का ?

देखो अरु तुममें मेरा एक कम्फर्ट ज़ोन है। तुम्हारे साथ अच्छा लगता है रहना, जीना.. तुम बहुत सुंदर भी लगती हो मुझे।
और तुम जब भी मुझसे मेरी मम्मी के विषय में पूछती थीं न तुम्हे याद नहीं उस वक्त तुम मुझे कुछ खिला रही होती थी।मैं एक टक तुम्हें देखता था, बिना कुछ बोले...पता है क्यों ?

"क्योंकि मैंने अपनी मम्मी को देखा नहीं, सोचता था तब, शायद वो तुमसी ही रही होगी।
तुम्हें समझ ही आया ? कि तुम्हीं क्यों...
क्योंकि तुम मेरे लिए ही बनी हो ...मैं तुम्हारे लिए।"

।। मृत्यु का चयन ।।

रात 3 बजे थे। मेडिकल कॉलेज के आकस्मिक चिकित्सा विभाग में रोज़ की ही तरह तीन चार मरीज़ लेटे थे। गंभीर मरीजों को स्थिर कर जूनियर डॉक्टर वार्ड जा चुके थे और दोनों सफ़ेद साड़ी वाली नर्स कुर्सी पर बैठी थीं। एक सीनियर नर्स थी एक नयी लड़की थी।

दिसम्बर की कड़कड़ाती ठण्ड थी। दोनों ने वार्ड बॉय से चाय मंगवाई थी। कुछ यहाँ वहां की बातें कुछ डॉक्टरों और साथी नर्सों के गॉसिप कर खिलखिलाई थीं। किसी को "बड़ी दंदी फन्दी औरत है रे वो, उससे दूर ही रह जैसा भी कुछ कहा था।" ड्यूटी पर मौज़ूद डॉक्टर के लिए कहा था सीनियर नर्स ने "देखना, आज ये ड्यूटी पर है रात बेकार जायेगी।"

क्यों दीदी ? छोटी नयी नर्स ने पूछा था।

अरे दारू पी कर आता है सुबह से। और कोई काम नहीं आता इसे, न जाने किसने डॉक्टर बना दिया वो भी मेडिकल का । रात भर ड्यूटी रूम में पड़ा रहेगा टुन्न।"

"लेकिन शायद अब कोई इमरजेंसी न आये, तू सुस्ता ले छुटकी"।

"नहीं दीदी ठीक है न, आप आराम कर लो।"

"अरे कर ले आराम यहाँ कोई भरोसा नहीं, कौन कब मरने आ जाये।
टेबल पर सर रख के नींद ले ले। जगा दूंगी कोई आया तो।"

अच्छा मैं कौन हूँ?, जो आपको यह कहानी सुना रहा हूँ । मैं पंखा हूं , सालों से उन कुर्सियों और टेबल के ऊपर लगा हुआ रूफ से। नर्सेस के कितने ही बैच देखता रहा हूँ। रोज़ाना आकस्मिक चिकित्सा की अज़ीबो ग़रीब दास्ताँ देखते रहा हूँ। चुपचाप , ऊपर गोल गोल घूमते हुए, कभी बिना चले चुपचाप। दिसंबर 14 की यह ठंडी रात। मैं शांत था, मेरा कोई काम न था इस ठण्ड में। सभी आवाज़ें साफ़ सुनायी दे रही थीं, मेरे पास लगी दीवार घड़ी की टिक टिक भी। वही घड़ी जिसे मैं देखता रहता प्यार से लेकिन उसने कभी भाव न दिया। कभी उसे अपने पंखे तेज़ घुमा इम्प्रेस भी करता और कहना चाहता देखो ऐसे घूमते हैं गोल तुमसे धीमे धीमे नहीं। लेकिन वो एक न सुनती। घड़ी बड़ी निर्लिप्त और अनवरत थी न मौसमों के लिए रुकती न मृत्युओं के लिए।

इस रात में एक अज़ीब मनहूसियत थी। शहर से दूर बने अस्पताल की मनहूस कैजुअल्टी में मनहूसियत कोई नयी बात नहीं थी। क्रंदन,रूदन,चीखें,गुस्से, झगड़े, लफड़े,मौतें कितनी ही तो देखी थीं मैंने भी, उन चिकित्सकों ,नर्सेस और वार्डबॉय के संग। लेकिन चिकित्सक,नर्स ,वार्डबॉय की ही तरह मुझे भी ये चीखें,मौतें , मनहूस न लगतीं। मनुष्य के मन में संवेदनाओं का एक कोटा होता होगा शायद,धीमे धीमे खर्च कर लो या एक साथ ।
शुरू शुरू में मुझे लगता था मौत घोषित करने के कुछ ही देर बाद ये सारे चाय के कप के साथ बातें और ठहाके लगाते कैसे दिख जाते हैं। लेकिन 5 मौत देखने के बाद तो मैं भी बेपरवाह हो चुका था उनके ठहाकों पर मुस्का लिया करता।

लेकिन फिर भी आज की यह ठंडी रात कुछ ज़्यादा ही मनहूस थी।
कांच की बंद धुंधली, कहीं कहीं टूटी खिड़कियों से बाहर का काला अन्धकार दिख रहा था। दूर से आती, पीली मर्करी की रोशनी अंधकार, कोहरे और सन्नाटे से मिल एक भुतहा सा कॉकटेल बना रही थीं।

छुटकी नर्स कुर्सी पर बैठे बैठे टेबल पर सर झुका सुस्ताने लगी थी।

सीनियर नर्स एक बार फ़िर उन तीन मरीजों को देखने चले गयी थी।

मेरे पास ही लगी दीवार घड़ी रात के पौने चार बजे दिखा रही थी। कुछ ही देर में दूर से मंदिरों की घंटियों, अजानों, मरीजों की अफ़रातफ़री,चिड़ियों की चहचहाट कुछ देर में सुनाई देने वाली थीं रोज़ाना की तरह।

लेकिन अभी तो बस कुछ कुत्तों के भौंकने की आवाज़, घड़ी की टिक टिक की आवाज़ सुनाई दे रही थी। सब शांत था। सन्नाटे की आवाज़ महसूस की है कभी ? सन्नाटा बाहर शांत दिखता है लेकिन भीतर शोर मचाता है।

लेकिन ये क्या अचानक कुछ लोग बदहवास से किसी को लेकर आये थे। बेहद गंभीर एक्सीडेंट के बाद।

उन्हें देखते ही नर्स ने पहचान लिया था खुद इसी मेडिकल कॉलेज के डीन थे। साथ में डीन सर के बेटे बहू और पत्नी थे।
रोते, बदहवास से खड़े हुए।

बेहोश,खून से लथपथ, सांसें ठीक से नहीं चल रही थीं।

छोटी नर्स भी तुरंत उठ गयी थी। उन्हें लिटा कर ऑक्सीजन लगा दिया था। सर पर रक्तस्राव की ज़गह कॉटन रख दबा कर रखा था।

वार्ड बॉय को तुरंत डॉक्टर को बुलाने कहा था।
डॉक्टर सत्यम ड्यूटी रूम से तुरंत आ गए थे। छुटकी नर्स ने दारू की स्मेल महसूस की थी "दीदी ने सही कहा था ये तो ड्यूटी पर तक पी लेते हैं।"
लेकिन खुद डीन सर को इस हालत में देख उनके भी होश उड़ चुके थे।

सीनियर नर्स ने कहा था सर तुरंत इंटुबेट करना होगा सांसें ठीक नहीं हैं। ऑक्सीजन का स्तर ब्लड में कम होता जा रहा है।

डॉ सत्यम ने कभी इंटुबेट करना सीखा नहीं था। साथ ही ये शुरुआती कुछ मिनट ही बेहद महत्वपूर्ण थे बची सांसों को बचाने।
लेकिन इस समय वे कैसे किसी से कहते कि मुझे यह नहीं आता जो जान बचाने का पहला कदम हो इस स्थिति में ? उन्होंने सांस नली में डालने वाली नली ली और कोशिश शुरू की। साथ ही अन्य डॉक्टर्स,मेडिसिन,सर्जरी, एनेस्थीसिया,क्रिटिकल केअर के चिकित्सकों को

बुलाने के लिए सिस्टर को कहा था। छुटकी नर्स ने सभी जरूरी कॉल कर दिए थे।

पूरे कॉलेज, होस्टल्स, सब जगह डीन सर की इस हालत की ख़बर पंहुच चुकी थी।

अगले 10 मिन में ही अन्य फैकल्टी के डॉक्टर आ चुके थे।
ऑक्सीजन का स्तर 0 पर था और धड़कन भी शून्य थी।
डॉ सत्यम अम्बुबैग से सांस, स्वांस नली में डाली गयी ट्यूब से रहे थे।

डॉक्टर्स, छात्रों का जमावड़ा कैजुअल्टी में होने लगा था।

क्रिटिकल केअर कंसलटेंट ने देखा था, सांस नली (ट्रेकिआ) की ज़गह ट्यूब खाने की नली (इसोफैगस) में थी। आख़िरकार
डीन सर को बचाया नहीं जा सका था।

मैंने और उस घड़ी ने बहुत केस देखे थे आजतक इस कैसुअल्टी में, मरते भी जीते भी। बहुत डॉक्टर देखे थे दिन रात मेहनत करते। लेकिन आज
जो देखा और सुना था वह सबसे ज़ुदा था।

जब सब रो रहे थे क्रिटिकल केअर कंसलटेंट आ कर कुर्सी पर बैठ गए थे मेरे ही नीचे। इशारे से डॉ सत्यम को बुलाया था
और पूछा था वो किस स्थिति में लाये गए थे सर, क्या हुआ था ?

अंत में कहा था डॉ सत्यम ट्यूब सही ज़गह नहीं थी और आप अम्बु किये जा रहे थे। आप आकस्मिक चिकित्सा अधिकारी हो और आप ट्यूब सांस नली में डालना नहीं सीख पाये ?
आप के मुंह से शराब की स्मेल आ रही है। ड्यूटी पर ?
आपको आख़िर किसने सेलेक्ट किया था इस महत्वपूर्ण पोस्ट के लिए।

डॉ सत्यम घबराये हुए सर नीचे कर खड़े थे।

डॉ सत्यम ने कुछ कहा नहीं था लेकिन कुछ चित्र उनके मस्तिष्क में उभरे थे। जिन्हें सिर्फ मैं देख पाया था।
ये चित्र देख मुझे लगा अरे ये तो पूरी दुनिया मुझ पंखें सी ही गोल है।

सत्यम का सेलेक्शन डीन सर ने ही तो किया था। हाँ बिना किसी मेरिट के। सत्यम से कहीं ज़्यादा मार्क्स और अच्छे इंटरव्यू के बावजूद कुछ अन्य साथी चयनित नहीं हो पाए थे।
वो पापा के दोस्त जो थे।

हाँ वह चयन था, डीन सर ने किया था जीवन को हरा मृत्यु का चयन।

मेरा स्विच ग़लती से किसी ने चला दिया था और मैं घूमने लगा था गोल गोल फिर से। इस दुनिया की तरह गोल गोल।

।। अदृश्य डोर ।।

कुछ ही समय पहले की बात है पर्शिया के छोटे से कस्बे में बने इस खूबसूरत घर में,
वो कुछ परेशां थी। कितनी ही कोशिश की थी आसिफ के
पिता के गुज़र जाने के बाद कि आसिफ फिर से खिलखिलाए, खुश रहे।

लेकिन वो तो गुमसुम, खुद में ही खोया रहता। घर में पड़े खिलौने, साइकिल, स्केटिंग शू, सब आसिफ़ का इंतज़ार करते रहते कि कब वो साथ खेलेगा।
लेकिन आसमां को निहारना ही एक मात्र खेल रह गया था उसके पास।
उसने कोशिश पूरी की थी कि वो अम्मी भी रहे और आसिफ़ के पिता का प्यार भी उसे दे।

पता नहीं यह कह कर कि उन्हें अल्लाह ने अपने पास बुला लिया है, और वो एक दिन लौट आएंगे उसने 10 साल के आसिफ़ के साथ सही किया था या नहीं। मौत का सच एक बच्चे को आखिर ऐसे ही तो बता सकती थी वो । क्या कोई बेहतर तरीका भी था?? ज़हाँ बच्चे का इंतज़ार ख़त्म होता।

आसिफ़ ने आखिरी प्रश्न जो पूछा था वो यह कि अल्लाह कहाँ रहता है अम्मी।
उसने कहा था "आसमां"
बस तभी से आसिफ़ बस आसमान निहारता रहता।

वो आसिफ़ को मेले ले गयी थी। उसने एक बार भी नहीं कहा कि अम्मी ये ले दो या वो ले दो।
वो खुद उसके लिए कहीं, मुख़ौटे, खिलौने, मिठाइयां और चॉकलेट खरीदती रही। आसिफ़ के चेहरे पर कोई उत्साह नहीं था। टुकुर टुकुर, शांत, शून्य में देखती हुई नीली आँखें इस बेहद सुन्दर, गोरे मासूम से बच्चे की मासूमियत और भी बढ़ाते हुए। माँ ने उसे चूम लिया था और पूछा आसिफ़ कुछ तो बोल, कुछ तो चाहिए होगा बेटा तुझे।

वो शांत खड़ा रहा माँ को देखते, फिर उंगली दिखाई थी,
उस गुब्बारे वाले की ओर, जिसने दो गैस वाले लाल गुब्बारे छोड़ दिए थे। साफ़ नीले आसमान की ओर गुब्बारे बढ़ चले थे हौले, हौले, एक छोटी सी सफ़ेद डोर लिए।

माँ ने तुरंत चार गुब्बारे खरीद दिए थे। लाल, पीले, नीले और सफ़ेद।
आसिफ़ आज पहली बार हल्का सा खुश दिखा था।

घर पंहुच बहुत दिनों बाद अपनी कॉपी किताब उठा कुछ पढाई की थी। माँ से कहा था "अम्मी कल से स्कूल जाऊंगा"। अपने गैस वाले चारों गुब्बारे छोड़ दिए थे कमरे में, गुब्बारे कमरे के रूफ तक जा कर वहीँ रूफ से चिपक गए थे मानो इंतज़ार कर रहे हों कि एक दिन आसमान ज़रूर मिलेगा उड़ने को, एक दिन यह दीवार ज़रूर हटेगी।

अगले दिन सुबह ज़ल्दी उठ गया था आसिफ़।
सबसे पहले गुब्बारे देखे थे। दो गुब्बारे पिचक से गए थे। दो सही सलामत थे।

उसने खिड़की से दोनों अच्छे गुब्बारे छोड़ दिए थे, उनके धागे एक दूसरे में गूंथ कर।
माँ ने पूछा, "क्या कर रहे हो अच्छे गुब्बारे क्यों छोड़ दिए आसिफ़।"
वो हमेशा की तरह चुप रहा, गुब्बारों को ऊपर जाते निहारता हुआ।

कहीं दूर एक पार्क में यह शख़्स बेंच पर बैठा सिगरेट पी रहा था। चेहरे पर तल्ख़ी, उदासी, अकेलापन, सब एक साथ थोड़ा थोड़ा सा एक दूसरे में घुले मिले। कुल मिला कर एक कठोर, शख्सियत जिसकी उँगलियों में फंसी सिगरेट धीमे धीमे बाहर मौज़ूद ठन्डे कोहरे से धुआं बन मिल रही थी।
तभी दो गुब्बारे उसके पास आ कर गिरे।

एक दूसरे से बंधे हुए। थके, थके से गुब्बारे, लंबी, ऊंची उड़ान के बाद। गुब्बारों की डोर से बंधा एक कागज़ देख उसने गुब्बारे उठा लिए और वो कागज़ निकाल लिया जो कि एक पत्र था।

लिखा था,
"डैड,
आप बहुत दिन हुए गए हुए। अम्मी कहती हैं, अल्लाह ने आपको बुलाया है। लेकिन आपको पता है ? मेरे स्कूल में मुझे स्केटिंग और साइकिलिंग दोनों में गोल्ड मैडल मिला, लेकिन आप के बिना लेना अच्छा नहीं लगा। आप ही ने तो सिखाया था ये सब।
रात को अम्मी मुझे राक्षसों की कहानी नहीं सुना पाती, वो सिर्फ परियों की सुनाती है जो मुझे ज़्यादा पसंद नहीं।

मैंने आपको उस दिन कुश्ती में हरा दिया था, आप आ जाओ इस बार नहीं हराऊंगा। आपके बिना यहाँ कुछ भी अच्छा नहीं है। अल्लाह को कहना मुझे आपकी ज़्यादा ज़रूरत है। पता है ? मैं रोज़ आपको आसमान में ढूंढता हूँ, लेकिन आप नहीं दिखते। आप रास्ता तो नहीं भूल गए लौटने का ? मैं पता भी लिख दे रहा हूँ। मैं आपका इंतज़ार कर रहा हूँ, ज़ल्दी आना। कल मेरा जन्मदिन भी है, आपको पता है न ? आप नहीं आओगे तो मैं आ जाऊंगा आपके पास।

आसिफ़"

यह पत्र पढ़ उस कठोर से शख्स ने आसमां को देखा था। घने कोहरे, बादल से ढंका आसमान।

उसने सिगरेट फेंक दी थी और वो पत्र ले कहीं निकल गया था।
कुछ देर बाद एक घर के दरवाज़े के सामने उसने घंटी बजाई थी।
स्कार्फ़ ढंके एक महिला ने दरवाज़ा खोला था, और कहा था, हाँ आधे से खुले दरवाज़े से ही कहा था...
"जी, कहिये क्या काम है ? कैसे आना हुआ ?
इस शख्स के चेहरे की कठोरता पिघल सी गयी थी। जाने क्या गर्मी थी उस पत्र में।

उसने स्त्री से बिना कुछ कहे पत्र बस उसकी ओर बढ़ा दिया था, अधखुले दरवाज़े से।
"ये क्या है, मुझे कुछ नहीं चाहिए आपसे"।
"बस एक बार पढ़ लो, इन दो गुब्बारों के साथ मुझे मिला है पार्क में।"
बेमन से, असमंजस के हाव भाव से पत्र महिला ने हाथ में लिया और खोलकर पढ़ा था।
पढ़ते, पढ़ते दो बूँद आंसू उसके छलके थे जिन्हें रोकने की शायद उसने कोशिश भी नहीं की थी।

इस कठोर शख्स की आँखों में उसने देखा था और कहा था आ जाइए, हाँ मुझे आदिल को पिता से अलग नहीं करना था। आदिल भी आपके जाने के बाद ऐसा ही गुमसुम है। मैं तुमसे अलग हुई तुम मुझसे लेकिन आदिल कभी नहीं। यह पत्र किसी बच्चे ने लिखा है अपने गुज़रे हुए पिता के लिए लेकिन शायद आदिल की ख़ामोशी भी यही कहती रही मुझसे।

पिघलते से पत्थर ने भी कहा था, मैं भी गलत ही था। ज़्यादा ही ज़िद्दी, कठोर। बच्चे का सोचा ही नहीं।

वो जैसे ही अंदर आया था, 9 साल का आदिल दौड़ कर उससे लिपट गया था। फिर मुक्के बरसाए थे कह कर कि कहाँ गए थे इतने दिन से। हर मुक्के से उसके भीतर के पत्थर आँसू बन पिघलने लगे थे,मुस्कराहट भी थे आँसू भी थे.....
प्यार के सबसे अच्छे रूप का जादू था यह।

अगले दिन एक और घर में बेल बजी थी। आसिफ़ ने दरवाज़ा खोला तो एक बड़ी सी खूबसूरत टोकरी रखी थी दरवाज़े के बाहर। जिसमें फूल, खिलौने, चॉकलेट्स रखी थीं।
और एक पत्र रखा था जिसमें लिखा था,

"प्रिय आसिफ़

बहुत सारा प्यार
मुझे तुम्हारा पत्र मिला, कितना अच्छा लिखने लगे हो तुम। एक भी स्पेलिंग मिस्टेक नहीं। जब तुम्हें गोल्ड मैडल मिले मैं तुम्हे देख रहा था और ताली बजा रहा था। तुम अब स्केटिंग और साइकिल बहुत अच्छा चलाते हो। अब सिर्फ रोज़ प्रैक्टिस चालू रखनी है।
तुम बहुत प्यारे बच्चे हो, दुनिया के सबसे अच्छे। अम्मी की परियों की कहानियां ये सोच कर सुनना कि मैं भी तुम्हारे पास हूँ हमेशा। तुम्हें देख रहा हूँ हमेशा।

तुम्हारे लिए कुछ खिलौने, चॉकलेट भेजी हैं यह मेरा प्यार है तुम्हारे लिए। हर साल तुम्हारे जन्मदिन पर ज़रूर पत्र भेजते रहूँगा।

तुम्हारा डैड"

बालकनी से उसे दूर दो लोग जाते दिखे थे।
एक आदमी, और एक 9 साल का बच्चा।

क्या यह टोकरी और पत्र उस पत्र में लिखे पते को देख आदिल और उसके पिता रख गए थे ?? यह राज़ सिर्फ पाठकों को पता होना चाहिए, आसिफ़ को कभी नहीं।
उसे साल दर साल इस तरह के टोकरे और पत्र हर जन्मदिन पर आगे भी मिलते रहे... उसके डैड से।

दूर जाते हुए बच्चे ने अपने पिता की उंगली पकडे एक बार मुड़ कर देखा भी था आसिफ़ को। अदृश्य डोर से बंधे दो गुब्बारे थे ये दोनों बच्चे। एक के गुब्बारे में गुंथे पत्र ने पिता से मिलवा दिया था। दूसरे ने पिता बन ज़न्नत से ज़वाब भिजवा दिया था।

उधर आसमान में दो गुब्बारे एक दूसरे में गुंथे उड़े चले जा रहे थे खुशी, आनंद और नई उर्ज़ा से।

।। मेरी आख़िरी कहानी तुम्हारे लिए ।।

रात गहराते ही
पहाड़ों से आती सर सर हवाएं वहां सन्नाटे को बढ़ा देती थीं। गरम रजाई में दुबके उसे डर लगता । वो रजाई को
मुंह तक ढंक लेता। अनजाने डर, जाने पहचाने भय से अधिक डरावने होते हैं।
और नींद हर डर, हर दुःख का प्राकृतिक उपचार।
उसके भय को भी नींद अपने आगोश में ले लेती।

सुबह बड़ी ही खूबसूरत होती। पहाड़ों पर जमी धवल हिम
पर पड़ती बाल सूर्य की रश्मियां वातावरण को स्फुलित
कर देतीं।

प्राकृतिक सफ़ेद, घने मुलायाम ऊनी स्वेटर पहनी
मासूम भेड़ों के समूह वातावरण की सफ़ेदी को और भी उजला कर देते।

वो अपनी भेड़ों में से एक सबसे मोटे, सबसे ऊनी
भेड़ के बच्चे को उठा सीने से चिपका लेता। माथे पर चूमता।

मां भेड़ हल्का सा सर उठा बड़ी बड़ी आंखों से बच्चे को एक टक देखती फिर आश्वस्त हो जाती । गोद बच्चे रामू की जो थी। प्रेम और विश्वास की भाषा वैश्विक, सार्वभौमिक एवं जीव प्रजातियों के परे जा कर समझ आती है। मां भेड़ को और रामू को भी यही भाषा समझ आई थी। दो अलग अलग डीएनए
समूह प्रेम में गुथे हुए। रामू नौ साल का लद्दाखी बच्चा था।
यह लद्दाख की बर्फ़ीली पहाड़ियों के बीच बना छोटा सा एक गांव था। दूर दूर बने लाल खपरैल वाले सुंदर घर।
एक छोटा सा स्कूल दो किलोमीटर दूर जिससे वो अक्सर गोल मार दिया करता। उसे भेड़ों के साथ खेलना और आसमानी गगन में बहते से मेघों को देखना अच्छा लगता।
उसका स्कूल प्रकृति थी और टीचर माँ, भेड़ें, हिम, गगन,
मेघ, नवसूर्य वृक्ष और वे पंछी।

चीड़ के दूर दूर फैले पेड़ और कुछ अज़ीब, नारंगी चोंच वाले पीले, काले बड़े पंछी।
रात डरावनी होती तो सुबह जीवन के उल्लास का पर्व।
मां की आवाज़, चूल्हे से उठते धुएं के संग आती।
"चाय पी ले, नास्ता कर ले रामू।"

लेकिन रातें ऐसी डरावनी कहाँ होती थीं। जब पिता साथ होते तो वो पिता की बलिष्ठ बांह पर सर रख कर सोता।
आर्मी की जोशीली कहानियां सुनते।
उसे युद्ध की कहानियां पसंद होतीं। सच्ची तो और भी।

उसके पिता भारतीय सेना में सैनिक जो थे। बहादुर।
इस बार उनकी पोस्टिंग सियाचिन में हुई थी।

लद्दाखी होने, पर्वतारोही होने की वज़ह से साहब लोग उन्हें
बर्फ़ीली उचाईयों पर ही अधिक रखते। वो सबसे काबिल जो थे।

लेकिन इस बार वो छुट्टियों में भी नहीं आये थे। हर साल ठंड में एक माह को ज़रूर आते। ख़ुद अपने हाथों से उसके लिये चिकन बनाते थे। कुश्ती लड़ते, रात को कहानी सुनाते। उसे सैनिक बनना सिखाते।

लेकिन इस बार नहीं आये थे। रात को हवाओं की ये साएं साएं पहले भी रही होगी लेकिन उसने कभी यूँ महसूस ही नहीं की थी। सुनाई ही नहीं दी थीं डरावनी हवाएं जब पिता होते, उनके आने भर का अहसास होता।

जब वो डरता मां कहती "तू बहादुर सैनिक का बेटा है। डर क्यों ?
"अम्मा, पिता जी को कभी डर नहीं लगता ।"
"हम्म... लगता है न। जब तू डरता है या रोता है तो उनको डर लगता है ।"

अपनी भेड़ों की छड़ी को कुरेदते हुए उसने सर नीचे कर लिया था। गोरे गालों पर ठंड ने लालिमा के गोले बनाये हुए थे।

मन ही मन कहा ... "फिर तो अब कभी नहीं डरूंगा। और हाँ रोऊंगा भी नहीं ।"
और उस दिन हवाओं की साएं साएं, अँधेरा सब वैसा ही था उसने रजाई से मूंह नहीं ढंका था। वो बहादुर... सबसे बहादुर सैनिक का बच्चा जो था। उठ कर गया और भेड़ के उस प्यारे बच्चे को उठा लाया था। मां भेड़ के सर पर हाथ फेर कर। प्रेम, विश्वास की भाषा स्पर्श से संप्रेषित होते हुए।
रजाई में दुबक कर चिपक कर दोनों सो गए थे।

मां, पिताजी कब आएंगे ?
मां चूल्हे के बाजू में खर खर बजता रेडियो सुनते हुए।
"आ जाएंगे बेटा । ज़ल्दी ।",
"क्या हुआ ? लड़ाई छिड़ी है न ?"

नहीं, नहीं बच्चे । इस बार माँ ने अपने भावों को छुपाते देखा था रामू की ओर। मां भेड़ और अम्मा की आंखों के भावों में कुछ समानता थी। संशय, प्रेम, विश्वास तेज़ी से आंखों के पर्दे पर फ्रेम बदलते हुए।

"मां डर रही हो न ? पिताजी सब दुश्मन को ठाएँ ठाएँ उड़ा देंगे।"
वो मुस्काई थी।

रेडियो पर कारगिल, कारगिल जैसे शब्द बार बार गूंज कर

उसके अंतर्मन को भेद रहे थे।

तीन माह और बीत गए थे। मां ने कहा था एक दिन रात को सर पर हाथ फेरते... कल हम तेरे पिताजी से मिलने जा रहे हैं।

रामू की आंखों में चमक थी वो बहुत खुश था।

सुबह उसने पिताजी की लाई, महत्वपुर्ण समारोहों के लिए सहेजी सफ़ेद फर वाली जैकेट और वो सैनिक वाली टोपी पहनी थी। उसे भी सैनिक बनना पसंद था।

दोनों जम्मू के सेना मुख्यालय में थे।

दोनों का सैनिकों ने, साहबों ने बड़े प्रेम से सत्कार किया था।

वो... सब अफसरों को ख़ुश खुश सैल्यूट मारते जा रहा था। सैल्यूट का, परेड का तरीक़ा उसने अपने पिता से सीखा था। हूबहू नक़ल करता ।

दोनों को ख़ूबसूरत टेंट में लगे सोफों पर अफसरों के साथ ही बैठाया गया था।

कुछ ही देर में तोपों की सलामी दी जाने लगी थी। फ़ूलों
से सजे तीन ताबूतों को।
जिनमें से एक ताबूत वो नाम था जो सबसे क़ाबिल, सबसे बहादुर लद्दाखी था । रामू ने मां को
देखा था, अम्मा आंसू छुपाते दूसरी ओर चेहरा किये।
"अम्मा तुझे
पता था न ?"
वीरता पुरस्कार लेने मां को पुकारा गया था। लेकिन माँ मदहोश सी पड़ी थी।

रामू, ने अपनी सैनिक टोपी ठीक की थी और सैनिकों सी
परेड करते गया था। भारत के झंडे के समकक्ष।

सैल्यूट मारा था।

अफसर ने हाथ मिला कर मैडल उसे पहना दिया था। माइक पर युद्ध की उस नई कहानी का ज़िक्र हो रहा था जिसमें बताया जा रहा था कैसे उसके पिता ने शहीद होने के पहले अकेले ही 15 दुश्मन पहाड़ियों पर खत्म किये थे।

मैडल पहने वो लौटा था।
"हाँ मैं डरूंगा नहीं, हां मैं रोऊंगा नहीं।"

एक सैनिक ने एक पर्ची ला कर दी थी रामू को।
गोद में उठा कर, तुम्हारे पिताजी ने ये तुम्हें देने के लिए कहा था।

पढ़ कर सुनाऊं।

रामू ने सर हां में हिलाया था।

"बेटा आज मैं तुम्हें मेरी आख़िरी कहानी भेज रहा हूँ तुम्हारे लिए।"

"दुश्मन ऊंचाई से गोले बरसा रहा है। हमें ऊपर चढ़ कर जाना है। मेरे तीन साथी शहीद हो चुके हैं हम तीन और बचे हैं। लेकिन हम इन्हें मिट्टी में मिला देंगे।
और देखो हम ऊपर पंहुच गए हैं। दोनों ओर से गोली बारी हो रही है। शायद वो 20 हैं। कुछ दिमाग लगा कर लड़ना होगा।

और बेटा ये अंतिम पड़ाव... मैंने 10 मार गिराए हैं। मेरे दो और साथी शहीद हो गए हैं। ज़रा सुस्ता लूं फिर पांच और..."

।। वो आलसी ।।

वो मेरे सामने बैठा था। मेरा एक MD Student
उसकी नातिन को देख रहा था। मेडिकल कॉलेज की यह ओपीडी थी।
जी हां वो बैठा था, लेकिन बाजू में रखी कुर्सी पर नहीं, ज़मीन पर उकड़ू। उसका चेहरा, चमकीला, काला था। चेहरे पर नुकीली मूंछें और बात करते समय मुस्कुराहट थी। खासकर जब जब अपनी नातिन की बात करता।
चेहरे आंखों के इर्द, गिर्द की झुर्रियां जीवन के संघर्ष की गाथा बयां कर रही थीं।

सफ़ेद कुर्ता, पायजामा, 55 साल के ऊपर का शख़्स रहा होगा। लेकिन शरीर से बलिष्ठ, फिट दिखाई देता था।

मुझे लगा मेरा स्टूडेंट बच्ची को क्या हुआ है समझ नहीं पा रहा है ?

मैंने पूछा आपकी कौन है ?

"नातिन है साहब।"

क्या हुआ था ?...

"एक माह से पेट पिरात है, तड़प जाती है।"

उसके बाजू में, मेरे सामने रखी कुर्सी खाली थी लेकिन वो ज़मीन पर ही बैठा था।

"क्या करते हो आप।"

"जूता पॉलिश करता हूँ साब"

कहाँ रहते हो ?

"पाटन में साब"

पहले आप कुर्सी पर बैठ जाओ। मैंने कुर्सी दिखा कर कहा था।

नहीं साब, यहीं ठीक है।

"नहीं, पहले वहां बैठो।"

वो सकुचाते हुए बैठ गया था

मैंने अपने स्टूडेंट को बच्ची के संबंध में कुछ सलाह देकर फिर उससे पूछा था...

जूते, पॉलिश कहाँ करते हो ?

"जबलपुर राइट टाउन। साब।"

लेकिन रहते तो आप पाटन में हो न ?

हाँ साब, साईकल से आता जाता हूँ। चेहरे पर कोई दुःख या शिकन नहीं था उसके। मेरे चेहरे पर ज़रूर आया था। उसे तो लगा होगा, मैं ये सब क्यों पूछ रहा हूँ... जिसका बच्ची के इलाज से कोई संबंध नहीं। लेकिन कारण था कि, मैं ये क्यों पूछ रहा था। वह अंत तक आपको पता चल जाएगा।

"पाटन से साईकल से आना जाना, कितना किलोमीटर हो जाता होगा ?"

"27 किलोमीटर आना, 27 जाना।"

इस उम्र में वह, 54 किलोमीटर रोज़ साईकल चला रहा था। जूते पॉलिश करने। मेरी आँखें फटी थीं।

तो पाटन में ही कुछ क्यों नहीं करते ?

"साब हम तो बचपन से ही जई कर रये।"

हमाओ बाप भी जई करत थे।"

तो उन्होंने ही ये काम आपको सिखाया था।

"हओ साब। और कौन सिखाता। बिनई ने सिखाओ थो।"

उसके हओ में पिता की याद की, स्वाभाविक गौरव अनुभूति थी। कभी उसका पिता साईकल के डंडे पर बिठा उसे लाता होगा साथ, भविष्य निर्माण का एक गुर सिखाने। वह जो उसे आता था। लौटते में कभी गुड़ पट्टी, कभी फुग्गे ले दिया करता होगा।

"हमाओ तीन भाई और हैं, बे भी जेई करते हैं। मोची परिबार है।"

मैंने फिर पूछा 54 किलोमीटर रोज़ साईकल की जगह वहीं गांव में कुछ क्यों नहीं किया।

"अरे साब बिते, गोबर, कटाई, वटाई घाइं मजूरी मिल जाती है। सौ, दो सौ में। हमें नई जमता।"

इससे कित्ता कम लेते हो ?

"200, 300 बन जाता है साब।"

अच्छा बच्चे क्या कर रये।

"सर बेटियां ब्याह गईं। बच्चे मजूरी कर लेते हैं।"

बच्ची की ओर मुख़ातिब हो मैंने कहा था,

कौन सी क्लास में हो।

"तपाक से बोली चौथी"

इसकी मूंछों में ताव था।

बोला "बड़ी चंट है साब। सब हिसाब किताब कर लेती है।"

अच्छा बताओ, नाती पोतों को पढ़ाओगे कि नहीं, ।

मुझे उससे बात करना अच्छा लग रहा था। अच्छा हुआ
और मरीज़ नहीं थे।

"साब पढ़ाएंगे।"

आप तो SC में आते होगे न ?

हओ साब।

मैंने कहा, बच्चियों को फ्री शिक्षा, और आसानी से नौकरी मिल सकती है अच्छे से।

आपने अपने बच्चों को क्यों नहीं पढ़ाया, क्यों नौकरी नहीं दिलाई।"

"साब पढ़ा है बच्चा 10 वीं तक। नौकरी नई मिलती। सरकार कछु नहीं करती।"

मैंने कहा
"अरे नहीं। बच्चों ने अच्छे से अप्लाई ही नहीं किया होगा। कई जगह नौकरी निकलती हैं। सरकार आपको आरक्षण भी देगी। पता है न।"

हाँ पता है साब।

"आपको पता है, आपकी ये बच्ची मेरी तरह, डॉक्टर भी बन सकती है वो भी बिना पैसे खर्च किये ?"

नई नाती, पोतों को तो पढ़ाएंगे साब।

फिर कुछ बातें, और बच्ची के विषय में समझ वह चला गया था। बच्ची और खुद की बाहर उतारी चप्पलें पहन कर।

अपने PG स्टूडेंट से मुख़ातिब हो मैंने कहा था

"बताओ वो बाजू में कुर्सी होते हुए भी क्यों नीचे बैठा हुआ था ?"
स्टूडेंट को लगा मैं डांटने वाला हूँ।
मैंने कहा नहीं, मैं सिर्फ पूछ रहा हूँ। सोचो इस बात को...
स्टूडेंट को शायद उत्तर सूझा भी हो तो वो चुप रहा, न जाने मैं क्या सुनना चाह रहा हूँ।

"अच्छा बताओ इतनी सरकारी योजना के बावजूद वो अपने बच्चों को पढ़ाना, नौकरी दिलाना क्यों नहीं कर पाया ?"
सर… आलस... बुद्धि...

54 किलोमीटर रोज़ साईकल चला कर घर चलाने वाला आलसी होगा ?
"देखो.... हम किसी की टांग काट दें, फिर बहुत अच्छे ट्रैक बना दें, और कहें दौड़ो। तुम दौड़ नहीं रहे।...

चलो पहले पहला प्रश्न...

क्यों कोई शर्ट पेंट वाला शहरी नीचे नहीं बैठता।
क्यों कोई ग़रीब आ कर ही नीचे बैठ कर बातें करता है।

वो इसलिए क्योंकि बरसों बरस तक उन्हें यह अहसास दिलाया गया है कि तुम नीचे बैठने लायक हो। तुम्हारे लिबास, रहन सहन ऐसे हैं कि तुम नीचे बैठो।

उन्हें लगता है कि, वो दुत्कार दिया जाएगा। दुत्कार से आत्मसम्मान को लगी ठेस से बेहतर है नीचे पहले ही बैठ जाना। कुर्सी बड़े लोगों के लिए है और वो छोटा है।

तो मैं इसलिए उससे इतनी देर बात कर रहा था जिससे अपने
एक स्टूडेंट को बता सकूं.... जिन मरीजों को हम मशीन बनकर देखते हैं, उनसे थोड़ी सी बात करने पर कितनी कहानियां मिलती हैं। क्या किसी जूते में पॉलिश करवाते कभी किसी को पता चला होगा वो कितनी दूर से रोज़ आता है, फिर कितनी दूर उसे जाना होता है। इस मरीज़ को सरकारी अस्पताल की एक व्यर्थ जांच लिख देने का अर्थ है उसका दिनभर लाइनों में खप जाना। दिनभर खपने का अर्थ है उसकी एक दिन की कमाई का न मिलना।

"देखो बेटा, तुम्हारे सामने कोई नीचे बैठा हो तो ये बात तुम्हे कचोटना चाहिए। डॉक्टर को सिर्फ caregiver होने का भाव भीतर रखना है। न किसी से बड़ा न छोटा। जो भी सामने हो उसे समानता के स्तर पर पहले खुद महसूस करो, वो न महसूस कर रहा हो तो उसे उस स्तर पर लाओ। और
फिर इलाज करो। और यही सिद्धांत किसी जज, नेता, कलेक्टर के प्रति भी रखो। चिकत्सक न इनसे नीचे है, न ही किसी से बड़ा। दरअसल वो जो जूता पॉलिश कर रहा है या हम इलाज कर रहे हैं दोनों में कुछ खास फर्क नहीं। दोनों ही किसी और को केयर दे रहे हैं।"

अधिकांश चिकित्सक, साहित्य, संवेदना, दर्शन को हास्यास्पद मानते हैं। किंतु किसी विज्ञान को सर्वाधिक आवश्यकता संवेदना, साहित्य, दर्शन की है तो वह चिकत्सा है। क्योंकि चिकत्सा मात्र शरीरिक व्याधियों को ठीक करने का नाम नहीं.. मन और आत्मा को भी आरोग्य कर देना है।

।। लड्डू ।।

(मेरे जीवन की सच्ची घटना पर आधारित)

वह अपने चैम्बर में अभी अभी एक जटिल एंजियोप्लास्टी करके बैठा था।
अपनी प्रिय ब्लैक फ़िल्टर्ड कॉफी के साथ। बिना शक्कर वाली।

"सर आपको यह कड़वी नहीं लगती ?"

सामने बैठे जूनियर डॉक्टर ने पूछा था।

"ज़िन्दगी सी कड़वी लगती है मोशाय। कड़वी लेकिन फिर भी अच्छी... ऐसी ही तो होती है न ज़िन्दगी।"

मुस्कुराकर दार्शनिक अंदाज़ में उसने कहा था और आरामदायक कुर्सी में धंस सा गया था।

उसके बच्चे का जन्मदिन भी तो है आज। जल्द पंहुच उसे घुमाना है। मोहल्ले के बच्चों संग कहीं जाना है। बचपन को दोबारा उनके साथ जीना इस प्रसिद्ध कार्डियोलॉजिस्ट
को जीवन का सर्वक्षेष्ठ पल जो लगता।

अचानक फोन बज उठा था उसका...

हेल्लो बेटा कन्हैया,

जी...

"पहचाना नहीं न ? सुना है तू बड़ा डॉक्टर बन गया है।
अब क्यों पहचानेगा गुप्ता आंटी को ?"

"ओह्ह, आंटी जी कैसी बात कर रही हैं। कैसे भूल सकता हूँ आपको। हर पल याद है। बहुत बरसों बाद वो भी फोन पर आपकी आवाज सुनी। कैसे हैं आप?..."

"बेटा क्या बताऊँ ? सच तो यही है कि तेरे को फोन भी काम से ही किया। बहुतों ने तेरा नाम बताया कि डॉ विशाल को दिखाओ। बड़ी खुशी हुई
अंकल जी को हार्ट की समस्या है। कुछ अजीब सी। वो कुछ अरदमिया जैसा कुछ कहते हैं। लेकिन कई डॉक्टरों को यहां दिखाया आराम नहीं हो रहा।"

"ओके आंटी जी, बताएं क्या कर सकता हूँ। यहां लाएंगे ?"

"हाँ बेटा कल मकर संक्रांत है। तेरी छुट्टी तो न होगी ?"

"अरे आंटी जी आपके लिए क्या छुट्टी वुट्टी। आ जाइये आप। जब इंदौर पंहुचें एक कॉल कर लें। मैं या मेरा ड्राइवर आपको लेने आ जायेगा।"

जूनियर डॉक्टर कमरे से निकल गया था। मकर संक्रांति शब्द ने इस बेहद व्यस्त लेकिन मसखरे से डॉक्टर को कुछ देर के लिए जड़ कर दिया था। कमरे में सब स्थिर हो गया था। सफ़ेद दीवारें, टेबल, कुर्सियां, कांच के गिलास में भरी ब्लैक कॉफी और वह खुद चलते वीडियो फ्रेम से अचानक स्थिर स्टिल फोटोग्राफ बन गए थे।

कांच के ग्लास में रखी काली कॉफ़ी से निकलती भाप कुछ चित्रकारी कमरे की ठंडी हवा पर बना रही थी। नए नए पैटर्न, कुछ देर को फ़िर सब ग़ायब। डॉ विशाल की आँखें भाप के पैटर्न को सम्मोहित सी देखती खो गयी थीं, मकर संक्रांति के उस दिन में।
32 वर्ष पहले।
रिठौरी गाँव का वह हवेली नुमा बड़ा सा घर। खपरैल, आंगन, कुआं, इमली, नीम, अमरूद के पेड़ आंगन में और घर के बाहर भी। घर के बाहर बेरी का वह पेड़ जहां
अंग्रजों के ज़माने से कोई सफ़ेद चुड़ैल रात को घुंघरू बजाती । दद्दा की मुँह ज़ुबानी उस चुड़ैल की कहानी सब बच्चे बड़े चाव से सुनते। रात रात भर डरते और सुबह उसे पत्तों में ढूंढते।

कक्षा छः में था विशाल रिठौरी के सरकारी स्कूल में। 10 बरस का।
इस घर में विशाल का काम कुएं से रोज़ पानी भरना। और दो गायों की सानी भूसा करना था। जो वह स्कूल जाने से पहले और बाद में करता। स्कूल 10 से 2 लगता तो काम हो ही जाता। संयुक्त बड़े परिवार के लिए पीने के पानी से लेकर नहाने तक कई बाल्टी पानी उसे रस्सी से खींचना होता। पानी खींचते समय वह महसूस करता, कम्पाला के जंगलों से आया हुआ फेंटम है वो। एक बार में सारा पानी खींच लेगा। भारी बाल्टियां उसकी बालसुलभ कल्पनाओं को छपाक से तोड़ देतीं।

8 बरस की उसकी छोटी बहन कूकू का मुख्य कार्य ऑन्टी और आंटी की बाल नौकरानी पत्ती के साथ दो टाइम रोटी बनाना।
कंडे थोपना, दद्दा के लिए तीन बार चाय बनाना था। अच्छा था नाश्ता न बनता था। कलेवा वहां कोई न करता। दद्दा को चाय दी जाती। बाकी सबको भी।

दूध की बहुत थोड़ी सी बूंद मिला विशाल को भी चाय मिल जाती। अरे विशाल का नाम कन्हैया था। कुकू चाय
ला कर देती। कन्हैया चाय पी पानी भरने चला जाता।

नहीं घर में और भी बच्चे थे। आंटी, अंकल के 5 बच्चे थे।

बड़े वाले दीपक भैया, उससे छोटी गुड़िया दीदी, उससे छोटी मीनू दीदी कन्हैया के साथ छठवी में ही थी। बड़ी थीं दो साल लेकिन पिछले साल फ़ेल हो गई थीं। और यूँ आंटी को बड़ी चिंता में डाल गई थीं।

उससे छोटी पिंकी ही थी जो कुकू और कन्हैया से बडी हिली मिली थी।

आंटी सोचती रहतीं।
जाने क्या था कन्हैया में मेरिट में आता ये मुई मीनू फेल हो जाती।

आंटी ने कन्हैया पर दो गाय कुएं के पानी के अलावा बग़ीचे की दो टाइम सिंचाई का ज़िम्मा भी दे दिया था।

दीपक भैया, गुड़िया दीदी, मीनू दीदी, पिंकी, संजू सबको पढ़ाई में लगा दिया जाता।

अंकल जी तो दिन भर न रहते। रहते भी तो अपने काम से काम। कुछ खेती बाड़ी, पुश्तेनी घर ज़ायदाद के कुछ केस वेस पर बातें करते रहते। इर्द गिर्द क्या है उन्हें अधिक सरोकार न था।

कन्हैया कुकू दरअसल आंटी अंकल के घर आये थे उनके पिता के अचानक जॉब छोड़ देने और उनके जीवन की कुछ अप्रत्याशित आई समस्याओं की वजह से।

पिता ने स्थिति ठीक होने तक अपने बेहद करीबी मित्र गुप्ता अंकल से बात कर बच्चों को उनके घर रख दिया था।

गुप्ता अंकल ने सहर्ष इस मदद का हाथ बढ़ाया था।

आंटी का व्यवहार एक हफ्ते तक तो वात्सल्य पूर्ण रहा लेकिन फिर कन्हैया कुकू अतिरिक्त ख़र्चा, बोझ लगने लगे। रही सही कसर मीनू दीदी और कन्हैया के स्कूल परिणामों ने पूरी कर दी थी
इस अतिरिक्त खर्चे की वसूली जितनी हो सकती वे घर के लिए करतीं।

कभी कभी डैडी आते, लेकिन कन्हैया कुकू ने उन्हें कभी कुछ नहीं कहा। वे हमेशा आंटी अंकल ने जो मदद की उसके प्रति कृतज्ञता और अहसान मंद होने का अहसास रखते। उनके बच्चे उनकी परेशानी के समय सुखी और सुरक्षित नहीं इस अहसास को कभी भी कन्हैया और नन्ही बहन ने उन्हें होने न दिया।

जब भी डैडी आते सभी बच्चों के लिए पेन, कॉपी, फ्रॉक, बुशर्ट, चॉकलेट लाते। हम सातों बच्चे मज़े से खाते।

उस दिन मकर संक्रांति की भारी तैयारियां चल रही थीं।
गांवों में पर्वों का मज़ा ही कुछ और होता है।

तिल, बेसन, आटे के लड्डू, शक्कर देशी घी, गुड़, गोंद, किशमिश, काजू सबकी भुनते तलते हुए खुशबू वातावरण में बाल मन में उमंग भर रही थी।

आज स्कूल की छुट्टी थी । कूकू, पत्ती, पिंकी, मीनू दी, गुड़िया दी सभी सुबह से ढेर सारे लड्डू बनाने की तैयारियों में लगे थे।

संजू, दीपक भैया नई पतंग के धागों में कांच को पीस कर बनाया मांझा लगा रहे थे।

चूल्हे को फुँकनी देते ऑन्टी जी ने कहा था,

"कन्हैया ये जो देशी घी की खुशबू है न वो तेरी गैया गोरी के दूध से बना है।"

कन्हैय्या गोल गोल आंखों से पता नहीं क्या सोचता खड़ा रहा।

"अच्छा कन्हैया ज़रा तिल, मूँगफली कूट तो दे।"

लोहे से बने
मूसर बट्टे में कन्हैया ने तिल, मूंगफली, सब कूटना शरू किया था। वही सोच कर कि वो कंपाला से आया फैंटम है। जैसे फैंटम कॉमिक्स में गुंडों को कूटता था वह भी इन सबको कूट रहा है।

आख़िरकार 2 घंटे में सब भुना कच्चा सामान कूटा, पीसा जा चुका था।

2 बजते बजते बड़ी बड़ी गंजियों में तिल, बेसन, आटे, मूंगफली के ढेरों लड्डू बनकर रखे हुए थे ।

पतंग उड़ा कर आया संजू तेज़ी से
एक तिल का और एक आटे का लड्डू गेंद की तरह उछालता है।

"ए रुक रुक.. पूजा हो जाने दे। अम्मा मारेगी।" गुड़िया दीदी ने कहा था।

"चल चुप मोटी।" बोल वो लड्डू लेकर भाग गया था।

"क्या अम्मा वो पतंग उड़ा कर आके गंदे हाथों से लड्डू ले गया। पूजा के पहले। ऊपर से मोटी बोल गया।"

संजू का नाम सुनते ही आंटी जी की आंखों में प्रेम, वात्सल्य, मातृत्व भर जाता था। तीन लड़कियों गुड़िया, मीनू, पिंकी के बाद जो हुआ था।

"अरे गुड़िया क्या हो गया तो। सुबह से खेल रहा है। थक जाते हैं बालक,खेलते हैं भूख लग आती है। पूजा कर लेना बाद में।भाई को प्यार से रखा कर। "

पास ही देहरी पर बैठे कन्हैया का मन हुआ पूछ लें आंटी मैं भी एक ले लूं ?

लेकिन शर्मीले कन्हैया ने पूजा के बाद ही खाऊंगा सोचा।

उसे भूख कुछ अधिक ही लगती है शायद अब। जब मम्मी डैडी के साथ था तब हमेशा खाने का नहीं सोचते रहता था।

सुबह की चाय के बाद दोपहर के खाने का इंतज़ार उसे हमेशा रहता। लेकिन क्यों ?

पतली दाल, रोटी और खपरैल पर किलो से लगी सेमी की सब्ज़ी उसे रोज़ मिलती।

कुकू और पत्ती की बनाई 4 रोटी वो खा जाता, पांचवी रोटी पर ऑन्टी टोक देती, कित्ता खाता है रे इस उमर में।

कंपाला का फैंटम 25 बाल्टी पानी कुएं से खींचने के बाद कित्ता खायेगा उसने गणित का हिसाब लगाना शुरू किया था।

आखिरकार पूजा हो गई थी। भीनी, सौंधी लड्डुओं की खुशबू
उसे और भी ललचा रही थी।

पूजा के बाद दद्दा को सबसे पहले मुलायम आटे वाले लड्डू दिए गए थे। जिन्हें चबाते मीन मेकी दद्दा ने कहा था "कित्ते कड़े बनाये हैं।"

बड़ा सा घूंघट ढाँके ऑन्टी जी बुदबुदाई थीं, "लड्डू बनाये हैं, गुलाब जामुन नहीं।"

तांबे की छोटी छोटी कटोरियों में अलग अलग तरह के लड्डू सभी को दिए जा रहे थे।

"कन्हैया बेटा देख गोरी रंभा रही है। जा ज़रा सानी भूसा करा आ। फ़िर नहा कर तू भी खा लइयो।

कन्हैया की प्रतीक्षा ज़रा सी और लंबी हुई थी वो उछाल मारते गोरी गाय तक पंहुच गया। उसकी तेज़ उछालें कुछ सेकंड तो कम कर ही पाई होंगी लड्डू की प्रतीक्षा में।

गोरी गाय को बड़ी सी लोहे की बाल्टी में सानी दे उसके गले पर हाथ फेरने लगा था वह। गाय की बड़ी बड़ी मासूम आंखों में अपने प्रति प्रेम, कृतज्ञता वो देखता रहा।

"भूखी हो गई थी न गोरी ? माफ कर दे... देर हो गई। मुझे पता है भूख अच्छी नहीं लगती।"

आखिरकार दुबला पतला कन्हैया कुएं किनारे नहा कर तैयार हो गया था। अपने घुंघराले बालों में उसने तेल चुपड़ लिया था। एक छोटी सी घुंघराले बालों की लट माथे पर उसकी मम्मी छोड़ दिया करती। उसने बहुत प्रयास कर मम्मी जैसी वैसी ही लट बना ली थी।

3 बज चुके थे। दाल रोटी भी तैयार थी लेकिन उसका मन नहीं था दाल रोटी और वही सेम खाने का। पहले उसे लड्डू जो खाने थे।

आंगन में कुकू के दिखते ही पूछा।
"कूकू लड्डू कैसे बने हैं। मेरा भी हाथ है बनवाने में।"

"अरे भैया तूने नहीं खाये। बहुत टेस्टी।"

"कौन से वाले सबसे अच्छे हैं ?"

"मुझे तो आटे और गोंद के पत्थर जैसे कड़े लड्डू पसंद आये। तू तोड़ नहीं पायेगा।"

"अरे चल कंपाला के फैंटम को तूने देखा नहीं अभी।"

गुड़िया दीदी लड्डू ?

"अरे तूने नहीं खाये ?

लेकिन अम्मा तो पड़ोस चले गई।

मैं नहीं दे सकती भाई। अम्मा को आने दे फिर खा लेना।"

यूँ कन्हैया देहरी पर बैठ गया था।
लिपे आंगन को नाखून से कुरेदते।

4 बज चुके थे। न लड्डू मिले न आंटी जी आईं। उसे पता था मोहल्ले गई हैं आंटी तो लेट ही आएंगी।

सोचा दाल रोटी ही खा लूं, लेकिन
कुकू से या किसी से कहने का उसका मन नहीं था।

गोरी गैया के पास जा कर बैठ गया सहलाते उसे।

छह बज चुके थे। भूख बहुत लगी थी। संकोची, शर्मीला किसी से कहना भी नहीं चाहता था।

रसोई के बाजू के कमरे में लड्डू रखे गए थे, कांच की बरनियों में बंद।

चुपचाप अंधेरे से उस कच्चे कमरे में कन्हैया गया ऊंचाई पर रखी एक बरनी खोली, और लड्डू निकाल लिया। वही गोंद और आटे का पत्थर जैसा कड़ा लड्डू। देशी घी की भीनी, सौंधी ख़ुशबू वाला लड्डू। पहला टुकड़ा काटने की कोशिश की ही थी कि संजू आ गया..

लड्डू चोर... लड्डू चोर...

गुंडिया दीदी, मीनू दीदी दौड़े दौड़े आये।

कन्हैया ने एक टुकड़ा लड्डू खा कर जल्दी से बर्नी में ही रख दिया था।

सहमा, अपराध बोध में हवा हुआ चेहरा, गोल गोल आँखें लड्डू सी ही पत्थर बन गयी थीं।

गुड़िया दीदी ने हाथ टटोला था। लड्डू तो नहीं था, कुछ चूरा सा था।
"तो खा लिए न बिना पूछे । चोरी से खाओगे अब ? कहाँ रखा है ?"

तेज़ी से मीनू दी ने बर्नी का अधखुला ढक्कन खोल ऊपर ही पड़ा आधा काटा हुआ लड्डू निकाल लिया था।

देखो जूठा ही डाल दिया, सोचो कोई कैसे ऐसा कर सकता है।

शाम ढलते ऑन्टी जी आ गयी थीं, ऑन्टी जी को विस्तार से सब बताया गया था दीदी द्वारा।

फिर क्या था, "आंटी जी ने जो बातें कही थीं, वे बस कहती ही गयी थीं।"

गुस्से से बिफ़र...

दुबला, पतला कन्हैया सहमा सा खड़ा रहा...

"तुम्हारी मां ने यही सिखाया है। चोरी करो और जूठा छोड़ दो। मांग नहीं सकते थे। तुम्हें खाने को नई देते क्या। रोज़ 4 किलो चर जाते हो। मुफ्त में। ऊपर से चोरी। हमारे बच्चों को भी बिगाड़ोगे।"

कूकू भी चुपचाप सहमी सी देखती रही।

वो गोरी गैया के पास अपमानित होने के बाद फ़िर पंहुच गया था। आंखों में आंसू थे। डबडबाई आँखें। भूख का अहसास मर चुका था। वह वैसे ही सो गया था।

और 32 वर्ष बाद आज एक बड़े अस्पताल के इस चैम्बर में,
डॉ विशाल कॉफी ठंडी हो रही है, और केस कैथ लैब में शिफ्ट हो गया है....चिरपरिचित उत्साही आवाज़ साथी एनेस्थेटिक की आई थी।

काश कुछ यादें भी इस भाप सी उड़ कर अदृश्य हो जातीं।

अगले दिन वह अंकल आंटी को लेने खुद स्टेशन पंहुच गया था। अंकल का इलाज जो उसे करना था। जो भी उससे बन पड़े।

मिलते ही एक डब्बा आंटी ने उसके हाथों में पकड़ा दिया था।

कन्हैया
तू तो जैसे ऑन्टी को भूल ही गया। बड़ा डॉक्टर क्या बन गया।
आज मकर संक्रांति है न बेटा। ये तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लिए। लड्डू हैं, मैंने खुद बनाये हैं।"

"ऑन्टी जी नहीं, मैं कुछ नहीं भूला हूँ। आपके हाथों के लड्डुओं की ख़ुशबू तक मुझे याद है।"

ऑन्टी जी के चेहरे पर बेहद हल्की शिकन आई थी। लेकिन मकर संक्रांति की वह घटना उनके लिए वैसी यादगार नहीं थी जैसी कन्हैया के लिए।

दूसराभाग

प्रेरक कहानियाँ

।। सही का हीरो ।।

(सच्ची लघुकथा)

बारह साल का एक बच्चा । मेडिकल ओपीडी विशेषज्ञ कक्ष में। मेरी टेबल पर स्लिप रख कर बड़े आत्मविश्वास से बोला, "सर मुझे देख लीजिये।"

मैंने लैपटॉप से नज़र हटा कर जूनियर डॉक्टर्स के कमरे की ओर इशारा कर कहा पहले वहाँ दिखा लो। उसने कहा, "नहीं सर आप ही देखो।"

उसने मेरी बात नहीं मानी थी लेकिन उसका आत्मविश्वास मुझे अच्छा लगा।

मैंने मुस्कुरा कर कहा, "बैठो।"

उसे बेल्स पाल्सी थी।

जिसमें चेहरे के एक ओर की मांसपेशी अचानक कमज़ोर हो जाती है। और तिरछापन आ जाता है। वो चिंतित था इस अजीब समस्या से।

मुझसे कहा, "मैँ ठीक तो हो जाऊँगा न सर।"

मैंने कहा, "हाँ एक महीने में पक्का।

तुम कहाँ के हो ?"

"सर कटनी।"

कटनी तो जबलपुर से सौ किलोमीटर दूर है। किसके साथ आये हो।"

उसने कहा, "अकेले"

मुझे आश्चर्य हुआ छोटा बच्चा अकेले इलाज के लिए। इतनी दूर और आत्मविश्वास से ओपीडी स्लिप कटवा के मुझसे बात करते हुए।

कुछ देर बात करने पर उसने बताया कि उसके पिता की मृत्यु हो चुकी है।

वो एक कंप्यूटर कोचिंग संस्थान के लिए प्रचार करने और नए-नए स्टूडेंट्स लाने का काम करता है। साथ ही उसके मालिक उसे कंप्यूटर भी सिखाते हैं।

मैंने पूछा, "और स्कूल" ???

उसने दम्भ के साथ कहा, "वो भी जाता हूँ।"

"अच्छा क्या बनना चाहते हो" ???

उसने कहा, "अपने छोटे भाई के साथ मिल कर अपना कंप्यूटर सेंटर खोलूंगा।"

उसने ये नहीं कहा था कि सेंटर खोलना चाहता हूँ। उसने कहा था सेंटर खोलूंगा। टपकता हुआ रचनात्मक आत्मविश्वास।

उसने बताया घर पर उसकी माँ बीमार रहती है और एक छोटा भाई भी है जिनकी वो देखभाल करता है। इसलिए जल्दी ठीक होना है।

मैंने उससे कहा, "क्या तुम मेरी एक क्लास समाप्त होने के बाद कुछ देर के लिए मेरे घर

चल सकते हो।"

उसने हामी भर दी।

मैं अपने बच्चों को असल ज़िंदगी के एक हीरो से मिलाना चाहता था। वो अकेला उस भीड़ में ज़िंदगी से हँस कर संघर्ष कर रहा था। उसके सपने ना सिर्फ खुद के लिए बल्कि भाई के लिए भी थे। ज़िंदगी जिसे ठोकर मारती आयी थी वो ज़िंदगी को माफ़ कर आगे बढ़ रहा था।

क्या हम किसी चाय बेचने वाले के तभी गुणगान करें जब वो मुख्यमंत्री बन जाये। चाय बेचते समय क्या उसके संघर्ष को पहचाना जा सकता है।

असल ज़िंदगी में मुझे टीवी के ब्रांडेड हीरो से बड़े हीरो दिख जाते हैं।

एक विकलांग पिता अपनी 'तीन पहियो' की स्कूटर में अपने बच्चे के लिए 'दो पहियों' की साइकिल ले जाते दिखा।

एक माँ मेरे क्लिनिक पर आती है जिनके दोनों बच्चों को आटिज्म है। बहुत ऊधम करते हैं दोनों। लेकिन वो खुशी से उनकी देख-रेख करती है।

क्लिनिक पर ही आने वाली एक पत्नी जिसने अपने उस पति को किडनी दीं जिसने बीमार होने के पहले उसे तलाक दे दिया था।

जीवन से जो लोग रचनात्मक संघर्ष करते हैं स्वयं के लिए, अपनों के लिए और दूसरों के लिए उन सभी गुमनाम हीरो को मेरा नमन।

।। गूगल ।।

रमेश ने नई कार ली थी। दो ही दिन हुए थे नई कार लिए हुए।

वाइफ के साथ घूमने निकले। कुछ ही दूर गए थे कि अचानक ब्रेक लगाना पड़ा। छोटा-सा कुत्ते का बच्चा कार के सामने आ गया था।

अचानक ब्रेक।

पीछे से बाइक ने टक्कर मार दी।

बड़ा-सा डेंट लग चुका था। छोटा-सा पपी घबरा गया था।

उसकी माँ कँहीँ नहीं थी।

उसने सोचा होगा आखिर ये इंसान करते क्या हैं ? क्यों इतना भागते फिरते हैं हमसे भी ज़्यादा।

पति-पत्नी दोनों उतरे।

पति ने उतरते ही पपी को उठा लिया और खुश हुआ कि चलो इसे कुछ नहीं हुआ। पपी दुबक गया उसकी गोदी में। इक तरफ़ा प्यार को हाँ बोला गया हो जैसे। बेरोज़गार को नौकरी मिल गयी हो जैसे। पहली बार इंसान तार्किक और अच्छा लगा था पपी को।

प्यार और अपनापन प्रजातियों (species) के बंधन को तोड़ रहा था। उसने धीरे से हाथ फेरा पपी पर.....जैसे मलहम लगाया हो किसी ने प्रकृति के घावों पर।

जहाँ प्रजातियों के बंधन को प्यार और अपनापन तोड़ पा रहा था वँही इंसान की बनाई जातियां बाट जोह रही थीं दीवारों के टूटने का।

पत्नी भी उतरी।

डेंट देखा और बिफर गयी। उसे लगा जैसे डेंट उसके हृदय पर लगा हो, "क्या ज़रूरत थी इतना तेज़ ब्रेक लगाने की।

बाइक वाले भाई साहब आप भी थोड़ा देख कर नहीं चल सकते थे।"

नई कार में इतना बड़ा डेंट बड़ा दुखदाई था।

घटना एक ही घटी थी लेकिन कार ने पति को खुशी दी थी नन्हे पपी से न टकराकर। उसी कार ने पत्नी को दुःख दिया था डेंट खा कर।

एक ही घटना को देखने के दो अलग-अलग नज़रिये। एक में सुख दूसरे में बिल्कुल उल्टा..... दुःख।

हमारे दिमाग भौतिक वस्तुओं को सहेजने के लिए प्रोग्राम्ड हो गए हैं। शायद ये जीवन जीने की अनवरत जंग की वजह से हुआ होगा। लेकिन पृथ्वी का कोई भी और प्राणी भौतिक वस्तुएं संचय नहीं करता न ही उसमें खुशी और गर्व महसूस करता है। जीवों ने खुद को प्रकृति के प्रति समर्पित कर दिया है। न ही कोई योजना न कोई उधेड़बुन। पानी के बहाव में पड़ी पत्ती की तरह निश्चिन्त, जँहा ले जाना हो ले जाओ।

पत्नी बोली.... "अब कुत्ते को ले कर क्यों खड़े हो। छोड़ो और चलो यहाँ से।"

पति पपी को कार में रखता है

"ये क्या कर रहे हो गंदे से सड़क के कुत्ते को..... नई कार अंदर से भी गंदी करनी है ?" पति ने कहा, "ये गन्दा इसलिए है कि इतने सारे इंसानों में से किसी ने भी इसे न तो पाला और न ही नहलाया। देखो कितने प्यार से मुझे देख रहा है टुकुर-टुकुर।

अब मैं इसे पालूँगा।"

"रही बात डेंट की तो वो ठीक हो जायेगा। डोंट वरी।"

दोनों घर आ गए थे। दोनों बच्चे दौड़ कर आये उन्हें न तो कार से मतलब था न ही डेंट से।

उन्हें उनका बिना बैटरी और बिना चाबी वाला सबसे अच्छा खिलौना पापा ने दे दिया था।

घर आते ही उसने सूंघ-सूंघ कर कुछ ढूंढना शुरू कर दिया।

क्योंकि वो ढूंढ रहा था इसलिए बच्चों ने उसका नाम रख दिया था 'गूगल।'

कुछ दिन बाद डेंट ठीक हो चूका था। कार का भी और कार मालकिन के हृदय का भी। सफ़ेद गूगल घूम रहा था मालकिन के साथ पूँछ हिलाते हुए। गूगल के कान खड़े थे और चेहरे पर मुस्कान थी।

गूगल मन ही मन बुदबुदाया, "इंसान सीख रहा है प्यार करना। धीरे धीरे सुधर जायेगा सब।"

बड़ा आशावादी था गूगल।

कहानी से मिली सीख: एक ही घटना किसी को खुशी दे सकती है तो किसी को दुःख। नज़रिया महत्वपूर्ण है। साथ ही जीवित प्राणियों की मदद का सुख कहीं बड़ा और स्थाई/longlasting है, बनिस्पत के (भौतिक) मटेरियलस्टिक चीज़ों के।

भौतिक साधन फिर से पाये जा सकते हैं। डेंट ठीक किये जा सकते हैं। शान नयी कार में कम पपी की जान बचाने में ज़्यादा है। और जब आप संवेदनशील हो जाते हो अपने वातावरण और अपनी जिम्मेदारियों के प्रति तो पूरी कायनात योजना बनाने लगती है आपको और ज़्यादा शक्ति देने की।

।। मैं ठीक हूँ ।।

सच्ची घटना पर आधारित इस लघुकथा को यदि आप अच्छे से पढ़ेंगे तो अंत में आप एक गहरी साँस लेंगे और फिर ये कहानी जीवन भर आपके साथ चलेगी। जो लोग जल्दी से निराश हो जाते हैं उनके जीवन के प्रति नज़रिये को भी बदलेगी।

.....

एम्स नई दिल्ली 2003 । C5 वार्ड में ये बच्ची भर्ती थी। दरभंगा बिहार से रिफर की गयी थी। उम्र बारह वर्ष।

उसने मुझे जीवन का वो मंत्र दिया कि दुश्वारियाँ अब दुःख नहीं देती। उसका दिया मंत्र याद कर लो और दुःख छू मंतर।

उसे गुलैन् बारे सिंड्रोम (जी.बी.एस.) हुआ था। इस बीमारी में अचानक शरीर लकवाग्रस्त हो जाता है। हाथ-पैर दोनों बिल्कुल भी हिला तक नहीं सकती थी। साथ ही छाती और साँस की मांसपेशियाँ भी काम नहीं करने से हमें उसे वेंटीलेटर पर रखना पड़ा। इस बीमारी में होश और बुद्धिमत्ता पर कोई फर्क नहीं पड़ता है ।

ज्यादातर जी.बी.एस. दवाओं से जल्दी ही ठीक हो जाते हैं लेकिन कुछ प्रतिशत मरीज ठीक नहीं हो पाते।

1 हफ्ते वेंटीलेटर पर रखने के बाद हम समझ गए थे कि ये बच्ची अब लंबे समय वेंटीलेटर पर रहेगी।

हम सब आसानी से हर एक साँस ले पाते हैं बिना ताकत लगाये या कोशिश किये। क्योंकि ये आसानी से हो पा रहा है इसलिए हम साँस लेने की इस प्रक्रिया को सफलता नहीं मानते।

लेकिन इस बच्ची को एक साँस सफलता से लेनी थी। उसके लिए स्कूल में ए ग्रेड लाना सफलता नहीं कुछ साँसे अच्छे से ले सकना सफलता थी।

वेंटीलेटर पर लंबा समय लगने की वजह से हमने ट्रेकिओस्टोमी (गले वाले हिस्से से साँस की नली में छेद कर साँस के रास्ते को बनाने का निर्णय लिया) और वेंटीलेटर को साँस के उस नए रास्ते से जोड़ा। अब ट्यूब उसके मुँह से निकाल दी गयी थी और कृत्रिम साँसें गले वाले रास्ते से दी जा रही थी।

आवाज़ भी नहीं रही थी।

वो वेंटीलेटर पर होती आँखें खोले हुए। शरीर में सिर्फ पलकें और होंठ हिला सकती थी। सुबह राउंड के समय मैं उससे रोज़ पूछता, "बेटा कैसी हो ?"

रोज़ वो धीमे से मुस्काती और पलकों को धीमे से इस तरह झपकाती कि मैं समझ जाता उसका मतलब होता ठीक हूँ।

वो दो महीनों तक ऐसे ही वेंटीलेटर पर रही। ढेरों इंजेक्शन्स लगते। ढेरों तकलीफ़ देह प्रक्रियाएं।

लेकिन जब भी पूछो पलकों से कहती, "ठीक हूँ।"

मैंने इतना सहनशील और आशावादी मस्तिष्क जीवन में कभी नहीं देखा। धैर्य, सहनशीलता, उम्मीद न हारना, स्वयं को प्रकृति के निर्णयों के प्रति समर्पित कर देना, अपना रोना न रोना, देखभाल करने वालों पर भरोसा जैसे कितने ही गूढ़ दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक रहस्य उसके इस छोटे से जवाब में निहित होते कि, 'ठीक हूँ'।

उसने कभी नहीं कहा कि ये निकाल दो या अब बस करो।

उसका आशावादी दिमाग समझता था कि ये लोग कोशिश कर रहे हैं। धैर्य रखना होगा। सच ये था कि उसके कभी ठीक न हो सकने की सम्भावना बहुत थी। पर वो हमेशा कहती मैं ठीक हूँ।

उसकी माँ रोती रहती लेकिन उसकी आँखों में कभी आँसू नहीं दिखे। माँ ने बताया वो टीचर बनना चाहती थी।

दो महीने वेंटीलेटर पर रहने के बाद प्रकृति को दया आ ही गयी। उसकी साँस लेने की क्षमता बढ़ने लगी। और चार महीने बाद डिस्चार्ज भी। साँस की नली का रास्ता बंद होने के बाद वो बोलने लगी थी। बातूनी और हँसमुख आजू-बाजू के बेड वालों से सबसे दोस्ती। जीवन से कोई शिकायत नहीं। मेरे ही साथ ये क्यों हुआ जैसा कोई प्रश्न नहीं।

जाते समय मैंने पूछा, "तुम्हें बड़े हो कर क्या बनना है ??

मैं अपेक्षा कर रहा था बोलेगी टीचर

लेकिन.....

उसने मुस्कुराकर आँखें बंद कर ली फिर गहरी साँस ली साँस को कुछ देर रोक कर रखा फिर धीमे से छोड़ा। और कहा मज़ा आ गया। आँखे खोल कर बोली,

"डॉक्टर जी बस साँसें आसानी से लेते रहना है बिना वेंटीलेटर के। बिना वेंटीलेटर के मिलने वाली हर साँस में मुझे मज़ा आता है।"

फिर मैंने भी यही किया गहरी साँस ली। मुझे ऐसा करते देख वो खिलखिलाई। वाक़ई दिमाग को और दिल को ऑक्सीजन पहुँचाना कितना मज़ेदार है।

मेरा प्रश्न, 'क्या बनना है' बचकाना था और उसका उत्तर सयाना।

ज़िंदगी का महत्वपूर्ण पाठ आसानी से पढ़ा गयी थी वो नन्हीं टीचर।

कुछ गहरी साँस लेकर देखिये मेरे साथ । महसूस करिये कि साँस लेने के साथ ही दिमाग को ऑक्सीजन मिलती जा रही है। क्या हम सब सफलता से साँस ले पा रहे हैं ? प्रकृति की सबसे कीमती गिफ्ट साँसों को हम आसानी से मिली होने की वजह से नज़रअंदाज़ कर देते हैं। यदि आप ले पाये तो आप बेहद अमीर और बेहद सफल हैं।

क्या बनना था और क्या बनेंगे ये बाद की बात है।

हर साँस का मज़ा लीजिये जब तक साँसें साथ हैं।

।। दुश्वारियाँ एक अवसर ।।

ये कहानी है ब्रैंडन की। ब्राज़ील के एक छोटे कस्बे में 1970।

ब्रैंडन 10 वर्ष का छात्र। पढ़ाई में अच्छा। लगनशील आज्ञा कारी और हमेशा मुस्कुराने वाला बच्चा। लेकिन एक कमी थी उसमें। वो ये कि ब्रैंडन के एक पैर का पोलियो ग्रस्त होना।

वो जब चलता लंगड़ा कर चलता। अपने कमज़ोर पैर पर अकेले नहीं खड़ा हो सकता। क्लास में मौज़ूद रेयान जो कि मजबूत कद काठी का प्रतिभाशाली बच्चा था। स्कूल की अंडर ट्वेल्व फुटबॉल टीम का कप्तान। अपने दोस्तों के साथ ब्रैंडन को बुली करता रहता। ब्रैंडन का नाम लेने की जगह उसे 'हेय लिम्प '(भारत में लंगड़ा/लंगड़ दीन) कहता।

ब्राज़ील में हर बच्चा फुटबॉल खेलता l ब्रैंडन का भी बहुत मन करता। वो मन से तो बच्चा ही था। लेकिन वो अकेले ही फुटबॉल को देखता रहता।

रेयान ने कहा था, "ओये अपना पैर ठीक करवा के आ फिर खेलना फुटबॉल।"

एक बार ब्रैंडन ने कहा था रेयान से, "मेरा नाम ब्रैंडन है तुम हेय लिम्प क्यों बोलते हो ?"
रेयान ने कहा, "तू है लंगड़ दीन तो वही कहूँगा ना। क्या कर लेगा ??? लड़ेगा ???"

और उसके दोस्तों के साथ बहुत हँसा था।

ब्रैंडन स्कूल में गुमसुम अकेला रहता। घर जा कर अपनी छोटी बहन के साथ फुटबॉल खेलता। उसे अपने कमज़ोर पैर पर अब गुस्सा आता। उसे लगता मेरे पैर की वजह से ही मेरे दोस्त नहीं। मुझे कोई टीम में नहीं लेता। मुझ पर पर हँसा जाता।

ब्रैंडन के पिता नहीं थे

एक दिन रात सोते समय उसने अपना ये दुःख अपने नाना जी को बताया।

नानाजी ने कहा, "ठीक है मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ फिर तुम समझ जाओगे तुम्हें क्या करना है।"

ब्रैंडन की बहन और ब्रैंडन चिपक गए नाना जी से कहानी सुनने।

नानाजी ने कहा बच्चों एक बार एक बाज़ का अंडा एक अच्छे इंसान को मिला तो उसने उसे बचाने के लिए मुर्गियों के झुण्ड में रख दिया। मुर्गियों के अंडे और बाज़ के अंडे से भी कुछ दिन में छोटे-छोटे प्यारे सुन्दर चीं-चीं करते बच्चे निकले। मुर्गियों ने बड़े प्यार से सारे बच्चों को जमीं से दाने चुगना सिखाया।

ये छोटा बाज़ दूसरे मुर्गी बच्चों के साथ बड़ा हो गया और मुर्गी माँ से पूछा आसमान में चील को देख कि, "वो पक्षी इतने ऊपर कैसे उड़ पाते हैं।"

मुर्गी माँ ने कहा, "वो हम से बेहतर और अधिक शक्तिशाली प्रजातियाँ हैं। हम जमीन में रहने वाली मामूली प्रजातियाँ हैं।"

मुर्गी बाज़ सभी मुर्गियों के साथ जमीन में संतुष्ट दाने चुगता रहता।

बच्चों लेकिन एक दिन आसमान पर एक दूसरा बाज़ मंडराता दिखा। मुर्गियाँ डरने लगीं अपने छोटे बच्चों को पंखों में छुपा लिया। वो बाज़ मुर्गियों का शिकार करने आया था।

ऊपर आक्रमण का खतरा और मुर्गी माँ को डरते देख मुर्गी बाज़ में एक अजीब-सी बिजली दौड़ी। और थोड़ी-सी कोशिश से वो बहुत ऊपर उड़ चला। और आक्रमणकारी बाज़ को भगाया। आखिर था तो वो बाज़ ही बस उसे उसकी शक्ति नहीं पता थी। मुर्गियों को उनका सुपरमैन मिल गया था।

"तो ब्रैंडन बेटा कभी-कभी आपके ऊपर होने वाला आक्रमण, अपमान या परेशानी आपमें सोयी हुई और छुपी क्षमताओं को उभार देता है ।"

"तुम्हारे कमज़ोर पैर के अलावा तुम मानसिक और शारीरिक रूप से बहुत मजबूत हो। कल से मार्शल आर्ट सीखोगे ?"

"छोटी बहन बोली नाना जी आप तो कराटे चैंपियन थे ना।"

वो हँसे जम से और अगले दिन से उनकी ट्रैनिंग शुरू हो चुकी थी।

ब्रैंडन पूरी लगन से जुट गया था। दिन रात प्रैक्टिस करता। उसे हेय लिम्प की आवाज़ पर अब हँसी आती। वो सिर्फ मुस्कुराता।

सिर्फ छह महीने बाद रेयान ने फिर पूछा था किसी बात पर,

"ओये लंगड़े लड़ेगा ?"

ब्रैंडन ने कहा, "हाँ क्यों नहीं।"

वो सब फिर खूब हँसे थे।

लेकिन सिर्फ पाँच मिनट बाद रेयान अपने घमंड के साथ पड़ा था जमीन पर।

ब्रैंडन ने आगे भी सीखना जारी रखा और कराटे चैंपियन बना।

ब्रैंडन के अब बहुत दोस्त भी बन गए थे।

फुटबॉल टीम में अब वो गोलकीपर था।

मुर्गी बाज़ एक बार फिर उड़ चला था ऊंचे आसमान पर।

कहानी की सीख **:**

1. लगन एवं अभ्यास से कठिन चुनौतियों पर जीत हासिल की जा सकती है।
2. रेयान की तरह घमंड नहीं होना चाहिए। घमंड धराशाई हो सकता है।
3. किसी की अपंगता या कमज़ोरी का मज़ाक उड़ाना गलत है।
4. बुरी परिस्थितियों में धैर्य और लगन से कुछ सीखने की प्रक्रिया में आप खो सकते हो और दु:खों पर ध्यान नहीं जाता।
5. कभी-कभी अवसर परेशानियों या अपमान का रूप ले कर आते हैं। आपके सोये हुए बाज़ को जगाने।

।। आओ दिमाग को बुद्धू बनायें ।।

(सफलता मंत्र)

हमारा दिमाग हमेशा सफल होना चाहता है। है ना ?

और बचपन से ही सफलता पाना चाहता है। हमेशा कुछ न कुछ पा सकने को या कुछ बन जाने को ही हमारा दिमाग सफलता मानता है और बदले में हमें खुशी और संतुष्टि देता है लेकिन कुछ ही समय की। फिर एक नयी मंज़िल की तलाश। सच तो ये है कि ये सिर्फ एक illusion या भ्रम है जिसके लिए बचपन से हमारे ब्रेन प्रोग्राम्ड कर दिए गए हैं। लेकिन कुछ बन पाने या कुछ अच्छा पाने के लिए संघर्ष और इंतज़ार दोनों ही करना पड़ता है।

तो जब हम इस मृगमरीचिका-सी जद्दोजहद में पड़े होते हैं तब भी हम सफलता के ढेरों सारे ऐसे पलों का मज़ा ले सकते हैं जो हमारे अपने हाथ में है। ये जो रास्ता है न जीवन का दरअसल यही खुद मंज़िल भी है।

आपने ऐसे लोग देखे होंगे जो कान्हा अभ्यारण में बाघ देखने जाते हैं और जब वो नहीं दिखता तो दु:खी हो जाते हैं। फिर वो कहते हैं कि, "कान्हा के जंगलों में कुछ नहीं रखा पैसों की बर्बादी है।"

बाघ पर नज़र रखना, देखने की कोशिश करना अच्छी बात है लेकिन जंगल में हर पल ढेरों खूबसूरत नज़ारे जैसे

माइकल जैक्सन मोर, लता दीदी कोयल, बंदरों के जिमनास्टिक्स, हिरणों की मासूमियत, सांभर का वो लड़कियों-सा इतराते हुए सेल्फी वाला पोज़, जंगली भैसों का भिक्षुओं-सा शांत चित्त, दुनिया के सर्वश्रेष्ठ AC से बेहतर गालों को छूती हवा, आपको देख हँसते-मुस्कुराते फूल। इंसान के दम्भ को तोड़ते विशालकाय पेड़।

बाघ इस जंगल का छोटा-सा हिस्सा मात्र है। जंगल-(जीवन) वृहत है और यही मंज़िल भी है।

कितना कुछ है हर पल।

असल ज़िन्दगी में भी हमारा दिमाग किसी बाघ (ओहदे, पैसे, लोकप्रियता) या कभी-कभी तो किसी चिड़िया (व्यक्ति) को ही अपनी ज़िंदगी का मकसद मान लेता हैँ और छोटी-छोटी खुशियों को जंगल के उन्हीं नज़ारों की तरह नज़रअंदाज़ करता है।

चलो एक प्रयोग करें और दिमाग को बुद्धू बनायें।

फिर देखो हर पल सफलता को महसूस करना हमारे हाथ में होगा।

करना सिर्फ इतना है कि जब, जहाँ, जितनी भी मदद किसी की भी कर सकें तो करें चाहे वो सूख रहे पौधों को पानी देना हो या सड़क के किसी कुत्ते को खाना खिलाना या उसे पाल ही लेना या किसी रोते हुए बच्चे को गले लगाना, या अपने काम को ईमानदारी से ख़त्म करना या स्टूडेंट्स को प्रेरित करना या किसी बीमार का इलाज करवाना। या गरीब बच्चों को कार से या बाइक से घुमाना या अपने किसी चपरासी के साथ जा कर ऑफिस कैंटीन में

चाय पीना और फिर इस मदद से उत्पन्न ख़ुशी को ही सफलता मानना। ये तो बस उदाहरण हैँ। रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में हमें ऐसे अनगिनत कारण मिलेंगे सफल महसूस होने के। हर छोटी या बड़ी मदद चाहे वो इंसान की हो या प्रकृति की करने के बाद खुद को और दिमाग को इनाम ज़रूर दीजिये। सफलता के अहसास का इनाम।

तो देखिये रोज़ हम जितनी बार भी चाहें सफलता हासिल कर सकते हैं।

किसी एक दिन वो बाघ देखने मिलेगा इसलिए तब तक मैं खुद को सफल न मानूं ???!

सफल होना हर पल अब हमारे हाथ में है। क्यूंकि सफलता सिर्फ कुछ पाना और लक्ज़री जुटाना ही नहीं कुछ करना भी है।

और सोचिये कभी कोई और इसी तरह की सफलता पाने के लिए हमारी भी मदद कर रहा होगा। दुनिया ज़्यादा खूबसूरत हो जायेगी।

तीसराभाग

संस्मरण

।। मेरी पचमढ़ी और मैं ।।

(संस्मरण)

पचमढ़ी होटल सतपुड़ा रिट्रीट।
हम रात 8 बजे जबलपुर से पहुँचे।
मैनेजर उड़िया लहज़े वाला था

मैंने होटल मैनेजर से कहा, "सबसे महंगा रूम कौन-सा है वही दीजिये।"
मेरी वाइफ ने पूछा, "ये किस तरह का प्रश्न हुआ होटल रूम लेने का। तुमने रूम के आप्शन तक नहीं पूछे। तुम इस तरह तो कोई खरीददारी नहीं करते कि सबसे महंगा रूम ???".....

मैंने कहा, "पहले तुम्हें घुमा दूँ पचमढ़ी फिर बताऊँगा कि क्यों इस तरह रूम लिया।"
होटल में बेहद सुन्दर खूबसूरत लॉन मनमोहक था। रात को पीली लाइट में चमकते पीले फूल सूरज के प्रतिनिधि लग रहे थे।
छोटा-सा झूला और हरा मखमली लॉन दोनों बच्चों में छुपे नैसर्गिक बन्दर को बाहर लाने के लिए काफी था।

मौसम दिसंबर की कड़कड़ाती ठण्ड वाला था।
"अलग-थलग सुनसान में बनी इसी होटल को ही क्यों चुना आपने पापा?" बड़े बेटे ने पूछा
"क्यों तुम्हें पसंद नहीं आया", मैंने कहा।"
दोनों बंदरों ने चिल्ला कर कहा, "बहुत पसंद आया।"
अगले दिन हम कार से सुबह-सुबह निकल गए। होटेल मैनेजर ने पूछा था सर गाईड चाहिए होगा क्या ?
मैंने मुस्कुरा कर कहा था नहीं।

सुबह सात बजे एक हट नुमा ढाबे में कड़ाके की ठंड के साथ चाय पी। इत्ती ठण्ड... और गर्म चाय। अमृत इसी को कहते होंगे।
बच्चे बी फॉल देखने के लिए उत्साहित थे।
मैं सातवीं से बारहवीं तक पचमढ़ी में ही रहा। ज़िंदगी का एक अहम् हिस्सा।

खुद ब खुद यादें तेज़ फ्रेम्स की तरह खुद को बदलने लगीं।

गर्मियों में पचमढ़ी देशी छोटे-छोटे आम एवं जामुन के जंगलों से भर जाता। और हम बच्चे 4 से 6 के झुण्ड में थैले ले कर घने जंगलों में 2 km अंदर तक चले जाते। लौटते समय सबके थैले भरे होते खट्टे-मीठे छोटे-छोटे आमों से। फिर ये आम मोहल्ले में बांटे जाते। मेहनत के बाद हासिल वो आम का स्वाद और वो उम्र एअरपोर्ट के अल्फांसो में अब कहाँ से लाऊँ। शायद जीवन का रस हमारे भीतर ज़्यादा होता है बाहर कम।
जंगलों में छोटी-छोटी पहाड़ी पानी की धाराएं बहती मिल जाती हैं। यही हमारा बिसलेरी हुआ करता था। स्वादिष्ट ठंडा पानी। बच्चे हाथों के चुल्लू से पी लिया करते।

बारिश में तो पचमढ़ी और भी सुन्दर होता। बादल छुट्टी मनाने पचमढ़ी उतर आते। पेड़ों और बादलों की आपस में खूब बातें होती। और बुजुर्ग पर्वत उन की बातों पर नज़र रखते। रिमझिम लगातार चलती बारिश में हम क्रिकेट खेला करते। बड़े से खूबसूरत क्लब ग्राउंड में। पचमढ़ी में स्कूल की छुट्टियाँ बारिश में होती। गर्मियों में नहीं।

इन्हीं छुट्टियों के समय मैंने 9th क्लास के बाद गाईडिंग शुरू की।
गाईडिंग के फायदे बहुत थे। एक तो दिन भर में 50 से 60 रूपये मिल जाते शाम को मम्मी को देने में गर्व महसूस होता दूसरा कार से पचमढ़ी देखने मिलती। बिना भीगे। अलग-अलग लोगों से मुलाकात और उनका व्यवहार दो से तीन दिन तक देखना प्रकृति की ओर से मुझे उपहार था। इंसानी मन को समझने की फ्री क्लास वो भी 60 रूपये उल्टे मिलने थे।

जब कार चलती मुझे लगता हम इन ठंडी हवाओं के हिस्से बन चुके हैं। और हम इन हवाओं की तरह ही बस चलते रहें अनवरत।
क़यामत से क़यामत तक के गीत लगभग हर कार में बजते मिलते। अकेले हैं तो क्या गम है .....पापा कहते हैं बड़ा नाम करेगा.....
किशोर हो चुके मेरे दोस्तों में आमिर से बाल और ज्यादा से ज्यादा प्लीट्स वाले पैंट की होड़-सी लगी। किशोरावस्था में पचमढ़ी से ज़्यादा सुन्दर आईना लगने लगा था।

पहले 2 कस्टमर्स 4 दिन तक घुमाने के बाद लगभग 250 रुपए कमा कर दे चूका था मम्मी को। लेकिन मम्मी ने उन पैसों से मेरे लिए एक पैंट का कपड़ा ले दिया। मैंने भी उसे चाव से बैगी पैंट का रूप दे दिया। ज़्यादा प्लेट्स और संकरी मोहरी वाला गहरा हरा पैंट।

ज़्यादातर कस्टमर्स बहुत अच्छे होते। मुझे अपने बच्चे जैसे ही रखते। लेकिन जब कोई कहता कि पचमढ़ी में है ही क्या बस पेड़ और पहाड़ तब लगता कि इन्होंने देखा ही नहीं कि प्रकृति नामक रचयिता ने अपने सारे प्रोजेक्ट इस एक जगह के ही नाम कर दिए हैं। बड़े-बड़े खूबसूरत पहाड़, हवाओं में जैसे मन को शांत कर देने वाली दवाएं घुली हों। थोड़ा-सा सुस्ताने का आमंत्रण देते कल-कल बहते चमकीले झरने। हमारे दम्भ को तोड़ती बड़ी-बड़ी खाइयाँ।
धूपगढ़ में बादलों, पहाड़ों, दरख्तों, और सूरज का संगम इंसानों से। कुछ देर की बातों के बाद नारंगी गेंद-सा बड़ा सूरज शुभ रात्रि कहकर सोने चला जाता बादलों की कोमल रजाई में।

एक नया शादी-शुदा जोड़ा मेरा कस्टमर बना। मुझे प्यार से रखते। दोनों बहुत अच्छे थे लेकिन हर थोड़ी दूर पर कार रोकते। उतरते और अपने रील वाले कैमरे से मुझसे फ़ोटो खिंचवाते। बड़े प्यार से। पास-पास। लेकिन कार में बैठते ही थोड़ी देर में लड़ने लगते। खूब बहस करते लेकिन घूमने और फ़ोटो खिंचवाने में कोई कमी नहीं। अंदर कितनी भी चिड़चिड़ाहट होती ऊपर से मुस्कुराते हुए फ़ोटो खिंचवाते। उनका हनीमून जो था। अक्सर 'सफल' शादियाँ और अफेयर दोस्तों को जलाने का अच्छा काम करते हैं। ये फ़ोटो इसी काम आयीं होंगी।

एक कस्टमर दो एनी कार ले कर बड़े परिवार के साथ आये थे। उस दिन तेज़ बारिश की वजह से काम नहीं था मेरे पास। दोनों कारों को गाईड करने का मोल भाव के बाद 50 रूपये दिन देने को राज़ी हुए। अपने छोटे बच्चे को पगडंडियों पर चलते हुए मुझे गोदी में दे देते। दो दिन के बाद शाम को मुझसे बोले ये 50 रखो।

मैंने कहा सर 2 दिन का 100 होगा।
उन्होंने कहा अभी तुम्हारी चॉकलेट खाने की उम्र है। इससे चॉकलेट खा लेना। कम कमाने वालों से मोल भाव न करने का पहला पाठ यहीं मिला था।

बच्चों ने मेरी यादों के फ्रेम पर रोक लगाई। हम दिन भर खूब घूमे। बी फॉल के सुईयों से चुभते पानी की बूंदों में उन्हें बहुत मज़ा आया।
पचमढ़ी लगभग वैसा ही है। जैसा 88 में होता था। मेरे पुराने गाईड दोस्त ने गले लगने के बाद गर्व से बताया गाईडिंग के रेट अब बढ़ गए हैं। 300 rupye। लेकिन वो 500 रोज़ तक ले लेता है। मुझे उसकी खुशी और तरक्की अच्छी लगी।

अगले दिन सतपुड़ा रिट्रीट के लॉन में चाय की चुस्कियों के साथ में मैंने वाइफ को बताया कि मुझे गाईडिंग के लिए कस्टमर्स इस होटल से भी मिलते थे।

एक बार इसी लॉन की कुर्सी पर अपने कस्टमर के परिवार के साथ बैठा था तब होटल मैनेजर ने मुझे बुलाकार बहुत डाँटा था और कहा था, "गाईड होते हुए भी बराबरी से बैठने की हिम्मत कैसे हुई तुम्हारी।"
मैं चुपके से रोया था अपमान के बाद। इसलिए यहाँ का सबसे मँहगा रूम देने को कहा।
हँस कर कहा, "बिल गेट्स होता तो खरीद ही लेता।"
हम जबलपुर लौट आये थे।

मेरे चैम्बर में एम.डी. स्टूडेंट आ कर बोला, "सर 'थीसिस गाईड' में आपके साइन चाहिए।"
मुझे 'थीसिस गाईड' में 'थीसिस' धुंधला दिख रहा था। 'गाईड' साफ़।
सोचा आज बराबरी का पाठ पढ़ाऊँगा। उस समय भी में केयरगिवर ही तो था अब भी केयरगिवेर ही तो हूँ।

।। आसान है ।।

डॉ. डेनियल एक बेहद लोकप्रिय मानसिक रोग विशेषज्ञ थे। वे अपने मरीजों की देखभाल, सेवा भावना और अपनेपन के लिए जाने जाते। सौम्य, अक्सर मुस्कुराते रहते।

उनके सामने आज लगभग 38 वर्ष का शहरी व्यक्ति बैठा था अपनी पत्नी के साथ। चेहरे पर उदासी, चिड़चिड़ाहट साफ झलकती हुई।

पत्नी ने कहा, "सर ये हमेशा उदास रहते हैं, लेकिन डॉक्टर के पास भी नहीं आना चाहते, आपका इतना नाम सुना मुश्किल से ले कर आ पायी हूँ। मैं चिंतित हूँ कहीं ये खुदकुशी न कर लें। क्योंकि ये ऐसा बोलते हैं कभी-कभी।"

वो पत्नी की बात तुरंत काट कर बोला, "क्या उदास रहते हैं लगा रखा है। मैं कोई पागल नहीं जो डॉक्टर के पास लाई हो। ज़िंदगी में उदासी के कारण हैं तो उदास हूँ मैं।"

डॉ. डेनियल ने पूछा, "क्या कारण हैं आपकी उदासी के, क्या आप मुझे बता सकते हैं। यदि आपको मैं अपना लगूं तो। शायद मैं मदद कर सकूं।"

वो तकरीबन भड़क गया, "क्या मदद करेंगे आप, मेरा व्यापार जो डूबता जा रहा है वो ठीक करेंगे, या चिक-चिक करने वाली इस पत्नी से बचाएंगे या फिर मेरे गधे बच्चे जो स्कूल में टॉप नहीं कर सकते को पढ़ाएंगे।

डॉ. आप दवा देने से ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते। इन सबका हल सिर्फ मेरी मौत है।"

डॉ. डेनियल ने कहा, "ये समस्याएं इसलिए हैं कि व्यापार से, पत्नी से, बच्चों से कुछ पाने की अपेक्षा बहुत ज़्यादा है आपको। औरों से पाने में खुशी ढूँढने में निराशा हो सकती है। कुछ करना या कुछ देने में खुशी ढूंढ कर देखिये। वो आपके ही हाथ में होगा। लेकिन क्योंकि आपको डिप्रेशन लक्षण हैं तो नज़रिये को सही रास्ते पर लाने, कुछ दिन के लिए दवाएं भी लेकर देखिये।"

"डॉक्टर आपकी ज़िंदगी में सब सही है,पैसा है, नाम है, गाड़ी है, तो ही ये सलाह सूझ रही है। आपके बेटे ने भी अभी-अभी स्टेट स्विमिंग कम्पटीशन जीता और पढ़ाई में भी टॉप किया मैंने देखा था अख़बार में।

जब ज़िंदगी में सब सही हो तो कोई भी सलाह दे सकता है।"

पत्नी ने कहा, "देखा न सर ये किसी की भी नहीं सुनते।"

डॉ. डेनियल ने अब कहा आप सही कह रहे हो, मेरा ही नज़रिया ग़लत था। सच है ज़िंदगी में सबकुछ अच्छा हो तो सब अच्छा ही लगेगा।"

पत्नी ने कहा, "सर ये क्या आप भी"????

डॉ. डेनियल ने आगे कहा ठीक है, आप अंत कर लेना जीवन का, दवा भी मत खाना लेकिन रविवार शाम 4 बजे एक बार आप घर आइये मेरे, वहाँ मैं एक मन्त्र दूँगा आपको। मुझे उम्मीद है आपकी समस्याओं का हल निकल आएगा।

अगले दिन शाम चार बजे वो दोनों पहुँचे थे।

डॉ. डेनियल खुद पौधों को पानी दे रहे थे।

गर्मजोशी से,मुस्कराहट के साथ दोनों को बुलाया उन्होंने। बैठक में बैठते हुए कहा, "पौधों को पानी देने में सुकून मिलता है। लगता है अपने बच्चों को खिला रहे हों गोद में बैठा कर।"

उनका 14 वर्षीय चैंपियन बच्चा बाहर जाते दिखा फुटबॉल लिए। उस व्यक्ति ने कहा, "यही है न स्विमिंग चैंपियन।"

उन्होंने गर्व से कहा हाँ यही है।

"सर हम मन्त्र जानने उत्सुक हैं।" पत्नी ने कहा।

डॉ. डेनियल उन्हें ऊपर के कमरे में ले गए और अपने छोटे बेटे से मिलवाया।

10 वर्षीय वो बेटा जिसे सेरिब्रल पाल्सी थी। बिस्तर पर पड़ा, न सुन सकता था न देख सकता था। नाक में डली नली से एक बूढ़ी महिला दूध पिला रही थी।

डॉ. डेनियल ने बताया, "जन्म के समय जटिलताएं उत्पन्न होने से इसकी माँ को डॉक्टर नहीं बचा सके थे, ये बहुत कम महीने का हो कर भी जी तो गया लेकिन मस्तिष्क को नुकसान पहुँचा।"

"मन्त्र यही है मित्र कि कोई भी ज़िंदगी पूरी तरह से अच्छी या पूरी तरह से बुरी नहीं। ये बच्चा भी मेरा स्पर्श पा कर खुश हो जाता है।"

"मैं कभी पौधों को पानी दे कर, कभी आप जैसों को सलाह दे कर खुश हो जाता हूँ। दोनों बच्चों को प्यार दे कर खुश हो जाता हूँ। वो बच्चा स्विमिंग मैडल ले आये, या ये बच्चा हाथ हिलाये दोनों ही खुशियाँ बराबर हैं। देने की खुशी हमारे हाथ में है मित्र। पाने की खुशी प्रकृति के हाथ।"

व्यापार डूब रहा है तो ज़्यादा समय, ज़्यादा विनम्रता, ज़्यादा लाभ दे कर देखो ग्राहकों को। पत्नी चिक-चिक करती है तो ज़्यादा प्यार दे कर देखो।

बच्चे स्कूल में अच्छा नहीं करते तो ज़्यादा समय देकर देखो उन्हें।"

और तुम्हारी ज़िंदगी कीमती है जिन रिश्तों के लिए, उन्हें छोड़ मरने की बात मत करो कभी। साथ ही तुम्हारी उदासी के तुम ज़िम्मेदार हो ऐसा भी नहीं। भरोसा करो तुम्हारे मस्तिष्क में डोपामिन नामक एक रसायन की कमी से ही नज़रिया निराशावादी हो गया है। कुछ दिन के लिए दवा लो। तुम्हें इन्हीं समस्याओं के हल दिखने लगेंगे।"

वो अवाक् था।

कल ही तो उसने कहा था डॉ. डेनियल को कि सबकुछ ठीक है आपकी ज़िंदगी में इसलिए खुशी की सलाह देना आसान है।

पत्नी की आखों में आँसू थे।

कृतज्ञता थी।

बाहर गार्डन में एक और फूल खिल गया था।

इस बच्चे ने फिर से हाथ हिलाया था।
डॉ. डेनियल के चेहरे पर मुस्कराहट थी एक परिवार को नयी-सी ज़िंदगी देने की।

।। उमैया एक तमाशा ।।

नट परिवार से मेरे क्लिनिक पर आयी ये बच्ची सायना है। माँ और दादी ले कर आये हैं। तेज़ बुखार है।
पास के ही हाइवे के किनारे, पिछले दस दिन से ये परिवार झोपड़ी बना कर रह रहा है।
माता-पिता, दादी और 2 बच्चियाँ
5 साल की उमैया और दो साल की सायना।

उधर पिछले दो दिनों से रिमझिम बारिश, कोहरे और ठण्ड ने मौसम बेहद सुहाना बना दिया था।
प्रेमी जोड़े बाइक पर उड़ते खूब दिखे।
मैंने भी लॉन्ग ड्राइव का मज़ा लिया था।

लेकिन सायना की माँ ने बताया, "साहेब कल झोपड़ी की पूरी ज़मीन गीली हो गयी, कीचड़-सी। वैसे ही ठण्ड में रात काटी किसी तरह। लेकिन बच्ची बीमार हो गयी।"
राजस्थानी बंजारों-सा लिबास, लेकिन बोली साफ़ हिंदी। चेहरे और लिबास में बी.पी.एल. कार्ड से बड़ी दिखती गरीबी,लेकिन बच्ची को साफ़-सुथरे कपड़े पहनाये हुए।
मुझे उत्सुकता हुई।

सायना का इलाज़ लिख मैंने पूछा, "आप लोग क्या करते हैं ??"
माँ ने कहा, "नट हैं, करतब दिखाते हैं।"
मैंने पूछा, "तो रहते कहाँ हैं।"
माँ ने बताया, "घूमते रहते हैं एक गाँव से दूसरे गाँव।"
दादी बोली, "वैसे तो कटनी में रहते हैं।"

मुझे समझ आया, ओह तभी हिंदी इतनी अच्छी है।

"कब तक रुके हैं जबलपुर?"
दादी ने कहा, "कल जा रहे हैं"।
"कैसा रहा यहाँ पर आपका काम??"

अनुभवों, शोषणों, संघर्षों की झुर्रियों को ये प्रश्न छू गया था। कुछ और गहरी हो गयीं।

दादी ने कहा "साब अब ये सीडी, वीडी और टीवी आ गए हैं कौन देखता है हमारा तमाशा।
हाँ गाँव में थोड़ा देखते हैं लोग।
जबलपुर में तो कोई कमाई नहीं हुई"।
"बड़ी बच्ची उमैया को पढ़ाएंगे नहीं"?
माँ बोली, "साब वही तो करतब करती है"।
मैंने पूछा अचरज से,"वो अभी पाँच वर्ष की है"??

"हाँ साब इत्ती उम्र से ही करतब करते हैं हमारे बच्चे, जब हम छोटे थे हम भी करते थे"।

"लोग बच्चों के करतब ही देखते हैं।
हम इनको पढ़ाएंगे तो पेट कैसे पालेंगे।
एक जगह भी रुकना पड़ेगा।
सायना अभी एक साल की है। खड़ी होने लगी है, अब इसको भी सिखाएंगे।
हमारे बाप-दादा भी यही करते-करते मरखप गए।
ये भी यही करेंगे।"

इसी बीच मेरे क्लिनिक के लड़के कृष्णा की बेचैनी बढ़ रही थी। मैं ज़्यादा समय ले रहा था एक ही मरीज़ में, और बाहर दूसरे मरीज़ परेशां हो रहे थे।
लेकिन मुझे कुछ और भी उत्सुकता थी नट परिवार को जानने की।
माँ से पूछ बच्ची की एक तस्वीर ली।
फिर आख़िरी प्रश्न पूछा।

उनके कपड़े, नाम, रहन-सहन से जो कि स्पष्ट नहीं हो रहा था।
वो प्रश्न ये था कि आप लोग हिन्दू हैं या मुस्लिम??
शायद मैं ये जानना चाहता था कि उनकी इस गरीबी, अशिक्षा, बीमारियों, ख़त्म होते काम और पहचान, शोषण और ख़राब ज़िन्दगी के लिए भगवान् ज़िम्मेदार है कि अल्लाह।
उन्होंने कहा "हम आदिवासी हैं।
शंकर भगवान् को मानते हैं"।
मैंने पूछा कितना मानते हैं??
दादी की अनुभवी झुर्रियां हँस कर बोली "साब सब कुछ तो भगवान् ही है"।

शहर के बड़े लोगों को मेरा क्लिनिक भले न पता हो लेकिन बंजारे परिवारों को न जाने कैसे मेरा क्लिनिक पता चल जाता है। खुश किस्मत हूँ इसलिए क्योंकि मैं माँ से डाँट खाता रहा पूजापाठ न करने को लेकर। लेकिन ऐसे लोग जिनका जीवन इतनी तकलीफों से भरा हुआ है, वो जब ईश्वर को मानते हैं तो मुझे ईश्वर के सबसे अच्छे भक्त वो लगते हैं।

और ईश्वर को खुद मेरे क्लिनिक तक साथ ले आ आते हैं। मेरे पूजा न करने की भरपाई करने।
"मैंने कहा आप लोग कल जा रहे हैं, बच्ची भी बीमार है।
लेकिन अगली बार कभी आये जबलपुर तो ज़रूर आना। मेरे बच्चे और उनके दोस्त उमैया का करतब ज़रूर देखना चाहेंगे, और उससे सीखेंगे भी।

हाँ हमें बच्चों को सुखों के झरोखों से, ज़िंदगी के करतब भी तो दिखाने हैं।
बच्चों को दुनिया के बायस्कोप में ताज़महल और लाल किले तो दिखाना है, लेकिन इन्हें बनाने वाली उँगलियों को भी थामना सिखाना है। उन छिले हाथों को दर्द है बच्चों को ये भी बताना है।
दौड़ में उन्हें ज़रूर जिताना है, लेकिन उमैया के तमाशे पर ताली भी बजवाना है।
हाँ हमें बच्चों को इंसान बनाना है।

उमैया 5 वर्ष की उम्र में किसी स्कूल में ये करतब करती तो मैडल लाती, अख़बारों में छपती।
इंग्लैंड में होती तो शायद वहाँ के जिमनास्ट ट्रेनिंग प्रोग्राम का हिस्सा हो गयी होती।
लेकिन उसे यहाँ ज़िंदगी के करतब में प्रवेश मिला था।

क्या अपनी माँ की तरह वो भी आजीवन यही करती रहेगी??
न देखे जाने वाला तमाशा।
और बन कर रहेगी
एक तमाशा।

।। एक और सुबह ।।

आज सुबह जब जिम के लिए निकला तो हल्की ठंडी हवा, और थोड़ा निकल आया सूरज बेहद सुहाना था।

सूरज की किरणें जितनी मुझ पर पड़ रही थीं उतनी ही झूमते मदमस्त पेड़ों पर, सुबह के उल्लास में खेलते कुत्तों पर, कुछ अमीर लोग जो जॉगिंग को निकले थे, दूधवालों की सायकलों पर, अख़बार वाले पर, रोड़ किनारे बनी पन्नी की झोपड़ी पर भी, और इर्द-गिर्द बने शानदार बंगलों पर भी इन सब पर सूरज की ये किरणें बराबर थीं।

हवाओं में घुली ऑक्सीजन जितनी मुझे मिल रही थी उतनी ही इन सबको।

ये धरती जितना मुझे संभाली थी गुरुत्वाकर्षण के आकर्षण में उतना ही इन सबको भी।

प्रकृति कितनी पक्षपात रहित है।

प्रकृति ने कभी नहीं चाहा होगा कि कुछ लोग सैकड़ों एकड़ ज़मीन के मालिक हों, हज़ारों वर्ग फ़ीट में बने बड़े बंगलों में रहते हों और प्रकृति की ही दूसरी संताने भूमिहीन कहलायें।

प्रकृति ने कब चाहा होगा कि प्रकृति के दिये हुए फल, अनाज कुछ लोग खा जाएँ, और प्रकृति के ही बनाये दूसरे जीव महरूम रहें, भूखे रहें।

क्या प्रकृति से गलती हुई है इंसान को परिष्कृत मस्तिष्क दे कर। प्रकृति की कोई कृति जो प्रकृति के ही खिलाफ काम कर रही है, वो है मनुष्य।

ईश्वर के सच्चे भक्त तो पशु पक्षी लगते हैं मुझे, जो पूरी तरह समर्पित किये हुए होते हैं खुद को प्रकृति की मर्ज़ी पर। न वो धार्मिक समूह बनाते हैं ईश्वर को खुश करने और दूसरे धार्मिक समूहों पर आक्रमण करने।

बचपन में गणित गलत होने पर स्लेट को मिटाते थे स्पोंज के टुकड़ों से और फिर दोबारा लिखते थे सब कुछ। यदि प्रकृति को महसूस हो गया कि हाँ गलती हुई है, मनुष्य को बना कर तो इस स्लेट को मिटाते देर नहीं लगेगी।

और मिटाने वाले कई स्पोंज के टुकड़े हैं प्रकृति के पास ।

कहीं कोई जानलेवा वायरस तो कहीं ग्लोबल वार्मिंग। परमाणु बम या मानव निर्मित वायरस और इन सबसे ज़्यादा ख़तरनाक खुद मानव मस्तिष्क।

भस्मासुर मस्तिष्क।

यही आशंका दुनिया के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों और सर स्टीफेन हॉकिन्स ने भी व्यक्त की है।

मनुष्य और विज्ञान प्रकृति की ही देन है लेकिन उसे प्रकृति के अनुकूल बनाना होगा खिलाफ नहीं।

कुछ सफ़ेद बगुलों का झुण्ड उड़ता दिखा अनंत आकाश में, अनभिज्ञ, निश्चिन्त, अनवरत।
कहीं चिड़ियों की चीं-चीं आवाज़ें, जीवन का मधुर संगीत रच रही थीं।

कुछ बन्दर घरों के भीतर घुसने की फ़िराक में बैठे थे।

मनुष्य जंगलों को काट उनके घरों में घुसा था कभी, शायद अपनी संपत्ति वापस लेने आये थे।

सुन्दर ब्रह्माण्ड का छोटे से भी छोटा बिंदु मैं,

मनुष्य,

गुरुत्वाकर्षण से बंधा इस गुमान में चला जा रहा था कि

मैं कितना तेज़ चल सकता हूँ।

।। मेरा गाँव ।।

(संस्मरण)

लगभग इकत्तीस साल बाद उस गाँव में जाना हुआ जिसकी यादें अब भी लगभग ज्यों की त्यों हैं।

'रिठौरी' जबलपुर ऑर्डनेन्स फैक्टरी खमरिया से कुछ दूर।

मैं तब कक्षा तीसरी में था और किराये के इसी घर के एक छोटे से कमरे में हम एक साल रहे। आज भी लगभग वैसा का वैसा है। यही नीला डिस्टेंपर तब भी दीवाली पर होता था।

न जाने कैसे, शायद मेरे घुंघराले बालों के अवशेषों को देख कर गणेश की माँ मकान मालकिन चाची आँगन में झाड़ू लगाते हुए मिली और पहचान गयी। खुशी से चिल्ला कर बोली.... देखो कौन आया है।

गणेश मेरा बचपन का दोस्त... उसका अपना रुतबा था वो अब 'पंचायत सचिव' था। बड़ी-बड़ी मूंछो से पहचानना मुश्किल था।

आँगन में ही खटिया लगा दी गयी। आज उनका महत्वपूर्ण मेहमान आया हुआ था..... ज़्यादा दूध और ज़्यादा शक्कर की 'पेशल' चाय बनायी गयी।

गणेश के पिता सरपंच जी (कभी सरपंच बने थे तबसे यही नाम है) के पास बिही का एक बड़ा बगीचा था घर से लगा हुआ था। मुझे और मेरे बच्चों को सरपंच जी बागीचे ले आये। जमीन बिक जाने और बँटवारा हो जाने की वजह से ये अब छोटा था।

उन्होंने ताज़ी बिही ढेर सारी तोड़ कर हमारे लिए रख दी। बिही खाते हुए महसूस हुआ बचपन में इन्हीँ पेड़ों से चोरी करके खाने का मज़ा कँहीँ ज़्यादा था। मेरे बच्चों को बिही खाते देख कर सोचा आसानी से मिली हुई चीज़ें वो सुख नहीं देती।

पुराने दोस्तों की कुछ खबर ली तो दादू की माँ मिली। मुझे बताया दादू की मृत्यु साँप काटने से हो चुकी थी जबकि उन्होंने बहुत झाड़ फूंक करवाई थी।

दादू की बहन बिट्टी की मृत्यु घर पर डिलिवरी के समय हो गयी जबकी बेहद अनुभवी दाई को उन्होंने बुलवाया था।

वो नदी जिसमें हम नहाते थे काफी गन्दी हो चुकी थी।

आटा चक्की और परचून की दुकान आज भी वहीं पा कर अच्छा लगा।

ठण्ड की रातों में अलाव और होरा के साथ चटपटी और भुतहा कहानी सुनाने वाले दद्दा बीस साल पहले ही नहीं रहे थे।

घरों में टीवी लग गयी थी....अब गर्मियों में लोग बाहर नहीं सोते।

गाँव के बच्चे मिले जिनमें कँही खुद को तलाशा। उस वक़्त हमारे स्कूल का नाम गधा नगर स्कूल था। दो किलोमीटर दूर हम बच्चे पैदल जाते और जाते समय दूधवालों से साइकिल पर लिफ्ट ले लेते थे।

लौटते समय दूधवाले नहीं मिलते, नंगे पैर जब रोड़ गर्म लगती तब पैरों में दौने के पत्ते तोड़ कर बांध लिया करते। जी हाँ पत्तों के भी ब्रांड हो सकते हैं..... दौने के पत्ते। चलती हुई बैलगाड़ियों के पीछे चुपके से गन्ने चुरा कर खाते हुए घर पहुँचते। बैलगाड़ी वाला जानबूझ कर हमारी इस हरकत को नज़रअंदाज़ करता चलता जाता।

वो गेरुआ पुल अब भी जस का तस है गाँव की यादों की तरह।

हाँ कुछ बदला भी है। जब भी कोई कार दिखती हम बच्चे कौतूहल वश पीछे-पीछे भागते थे। लेकिन इस बार बच्चों में मेरी कार के प्रति कोई कौतूहल नहीं था।

हाँ सचमुच गाँव में तरक्की हुई है।

।। फाँस ।।

खुशीराम का भरा पूरा परिवार था। सुघड़ पत्नी। जीव-विज्ञान से बारहवीं पास भी थी। दो प्यारे बच्चे। छोटी-सी किराने की दुकान। पैसे कम थे लेकिन उधार भी न था। गुजर-बसर अच्छी हो जाती। वो मेहनती था अच्छा पति, और बच्चों को प्यार करने वाला पिता भी था।

लेकिन खुशीराम को बात-बात में दु:खी हो जाने की आदत थी। छोटी समस्या भी उसे बड़ी लगती। बात-बात में उसकी पत्नी और बच्चे उसे ये कहते सुनते कि भगवान ने मेरे साथ ही ऐसा क्यों किया?

एक दिन वो अपने 10 साल के बच्चे के लिए बैट बना रहा था और लकड़ी की एक फाँस उसे दायें हाथ के अंगूठे में चुभ गयी।

तकलीफ़ थी तो उसने निकालने की कोशिश की। नहीं निकली तो पत्नी ने भी पिन से कोशिश की। लेकिन फाँस चमड़ी में काफी अंदर धंस गयी थी। तय हुआ डॉक्टर के पास जाते हैं।

डॉक्टर के पास जाते समय खुशीराम दु:खी होना शुरू हो गया।

उसने कहा, "कितने दिन बाद तो बैट बनाने का समय मिला था उस पर ये फाँस मुसीबत। मेरे साथ ही क्यों भगवान ऐसा करता है। भगवन तूने मिश्रा जैसा पैसे वाला भी तो नहीं बनाया कि मुन्ना को बना बनाया अच्छा सा बैट ले देता।"

पत्नी बोली, "शांत रहो सब ठीक हो जायेगा"।

वो भड़क गया, "क्या खाक ठीक हो जायेगा। फाँस तुझे नहीं लगी इसलिए बातें सूझ रही हैं। तुझे क्या पता कितना दर्द हो रहा है।"

वो उस समय ये भूल गया था कि जिस मुन्ना के लिए वो बैट बना रहा था उसे जन्म देते समय भी पत्नी संतोषी ने ये नहीं कहा था कि तुम्हें क्या पता कि कितना दर्द हो रहा है।

डॉक्टर के पास पहुँचे तो डॉक्टर के असिस्टेंट ने कहा आपका बारहवां नंबर है। लगभग आधे घंटे इंतज़ार करिये।

खुशीराम का पूरा ध्यान बस फाँस और उससे होने वाले दर्द पर था।

आधे घंटे! कैसे कटेंगे?!!!

वो दोनों वेटिंग में बैठ गए।

खुशीराम जो कि दु:खी था बोला... ये डॉक्टर को मेरी तकलीफ़ नहीं दिख रही। मन कर रहा है अभी जा कर ऐसी तैसी कर दूँ।

तब पत्नी संतोषी बोली, "देखो यहाँ बैठे हुए मरीजों में किसी के गुर्दे, किसी के लिवर, किसी के दिल, किसी की आँख में खराबी है। और देखो उस परिवार को उनका तो मुन्ना ही बीमार है। सोचो कि तुम्हें फाँस ना लगाकर भगवान मुन्ना को बीमार कर देता फिर वो बैट का तुम

क्या करते।

अभी तुम्हारे गुर्दे, लिवर, हार्ट, हाथ, पैर, आँखें, कान, सब अच्छे से हैं। सिर्फ उस फाँस से दु:खी क्यों जो एक छोटे से अंगूठे में लगी है।"

फिर संतोषी ने आजू-बाजू बैठे कुछ लोगों से बात करके उनकी तकलीफ़ खुशीराम को सुनाई। खुशीराम की आँखे कुछ-कुछ खुली।

फिर संतोषी बोली,

"देखो जी हमारी सब की ज़िंदगी में एक ना एक फाँस (परेशानी/concern) हमेशा लगी ही रहेगी। हम फाँस को निकालने की कोशिश ज़रूर करें। लेकिन उन सब अंगों के बारे में सोच कर भी तो खुश हों जो तकलीफ़ नहीं दे रहे।

और जिस मिश्रा के पैसों से जल रहे थे न तुम उसकी फाँस बताऊँ तुम्हें। उसकी बीवी ना....चलो छोड़ो।

चलो पूछो किसकी ज़िंदगी तुम्हें बिल्कुल सही लगती है?

मैं उन सब की ज़िंदगी की फाँस भी बता दूँगी।

और हाँ मेरी सबसे बड़ी फाँस तो तुम ही हो खुशीराम जी। फिर भी जी रही हूँ न खुशी के साथ।"

दोनों हँसने लगे। फाँस का दर्द इस हँसी में कहीं खो गया था।

कुछ देर बाद डॉक्टर ने फाँस निकाल दी थी।

अगले दिन

दोनों देख रहे थे मुन्ना को बैट से खेलते हुए।

कहानी का सार: हर जीवन में परेशनियाँ या छोटी-बड़ी फाँस बनी रहेंगी। उन्हें निकालने की कोशिश अवश्य कीजिये, लेकिन साथ ही साथ जो अच्छा है जीवन में उसके आनंद को मत भूलिए।

।। लोकप्रियता का रहस्य ।।

कुछ ही समय पहले की बात है। एक व्यापारी था। भोपाल शहर में उसके कोचिंग संस्थान थे मेडिकल, इंजीनियरिंग वगैरह के।

मुम्बई में उसे एक कोचिंग संस्थान ऐसा मिला जिसमें कम्युनिकेशन स्किल्स, काउंसलिंग स्किल्स और मार्केटिंग स्किल्स सिखाई जाती थीं।

उसे विचार आया कि इस तरह का एक कोचिंग संस्थान भोपाल में भी होना चाहिए। शहर के मध्य में उसके पास एक बड़ा हॉल था।

व्यापारी ने कुछ साक्षात्कार के बाद पढ़ाने के लिए आत्मविश्वास से लबरेज़ दो एम.बी.ए. युवा रखे।

अरुण और वरुण।

हॉल को दो भागो में बांटने के बाद दोनों को अलग-अलग बैच को पढ़ाने की जिम्मेदारी दी।

विज्ञापन में व्यापारी ने लिखा कि,

'यदि आप पब्लिक डीलिंग के किसी भी व्यवसाय में हो तो ज़्यादा सफलता के लिए सात दिनों के इस कोर्स को ज़रूर करें। जैसे डॉक्टर, मेडिकल रिप्रज़ेंटेटिव, अधिवक्ता, मैनेजर्स, मार्केटिंग अधिकारी, मीडिया पर्सन्स, व्यापारी, एवं राजनीतिज्ञ।'

व्यापारी के संस्थानों का पहले से ही नाम था, कोचिंग चल निकली।
लेकिन एक बात अजीब थी।
सात दिन के कोर्स में अरुण अपने बैच को पूरे छः दिन पूरी लगन से नौ से चार बजे तक पढ़ाता।

जबकि वरुण अपने बैच को सिर्फ एक घंटे पढ़ाता और बाकी सारा दिन हँसी मजाक खेल-कूद और थोड़ी देर ध्यान/मैडिटेशन करवाता। या बैच को जल्दी ही छोड़ देता। व्यापारी को लगा वरुण को रख कर गलती की। उसकी जगह किसी और को रखना चाहिए।

छह दिन के बाद आखिरी दिन हर एक छात्र को कुछ प्रैक्टिकल दिया जाता जिसमें उन्हें लोगों को कुछ बेच कर ज़्यादा पैसे इकट्ठे करना या फिर अपने व्यक्तित्व के बारे में अजनबी लोगों से तारीफ हासिल करना। या ज़्यादा दोस्त बनाना जैसे कार्य/टास्क दिए जाते।

व्यापारी ये देख कर दंग था कि वरुण जो क़ि बहुत कम देर पढ़ाता और बाकी समय बैच से मस्ती करवाता रहता के छात्र कहीँ ज़्यादा अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं।

बैच दर बैच जब यही सिलसिला चला तो व्यापारी ने दोनों युवाओं को बुलवाया और बात की।

वरुण से पूछा, "वरुण आखिर तुम्हारे बैच कम पढ़ कर भी ज़्यादा लोगों को कैसे प्रभावित कर रहे हैं। रहस्य क्या है? कोई वशीकरण मंत्र देते हो क्या।"

वरुण बोला, "सर आप पहले अरुण से पूछिये कि वो क्या करता है।"

व्यापारी ने कहा, "हाँ अरुण तुम्हारी मेहनत और गंभीरता से मैं बहुत खुश हूँ। लेकिन रिजल्ट में वैसा प्रदर्शन क्यों नहीं जैसा वरुण के बैच का है।"

अरुण ने कहा, "मैं उन्हें बहुत विस्तार से पब्लिक डीलिंग के बारे में बताता हूँ। कैसे कपड़े पहनना है। जूते और टाई कैसी हो। खड़े होने का तरीका, मुस्कुराने का तरीका। बैठने और बात करने का तरीका, खाने का सलीका, अभिवादन का तरीका, कब किसी की तारीफ करनी है, कितनी करनी है ये सब कुछ विस्तार से समझाता हूँ। फिर रोल प्ले (नाटक) के माध्यम से अभ्यास भी करवाता हूँ।

हमेशा मुस्कुराते हुए किसी के चैम्बर में प्रवेश करना।मुस्कुराते हुए स्वागत करना जैसी बातों पर ज़ोर देता हूँ।"

"और वरुण तुम? तुम्हारा वशीकरण मंत्र क्या है भाई?"

वरुण ने कहा,

"मैँ बस पहले दिन रहन-सहन साफ-सुथरा और सौम्य हो यह बताने में कुछ देर लेता हूँ फिर मैं उन्हें बस एक निर्णय या शपथ मिल कर लेने को प्रेरित करता हूँ। और कहता हूँ कि ये निर्णय लेने और इसे आत्मसात करने के बाद आप अपने आप ज़्यादा लोगों के दिल जीतने लगोगे। निर्णय आसान है। आपके भीतर ही छुपा है।

निर्णय ये है कि पहले तो आप चाहे जिस भी प्रोफेशन या पदवी पर हों न तो खुद को निचला मानिये और न ही बहुत ऊपर।

खुद को सिर्फ एक देखभाल करने वाला मानिये। और जब भी आप अपने क्लाईंट के सामने हों ये मत सोचिये कि मुझे इससे कुछ कमाना है या बेचना है। बस आपके दिल की हर कोशिका को ये कहना होगा कि मुझे इसकी मदद करनी है। केयर करनी है। serve करना है।

और इस अंदर की भावनाओं और वैचारिक प्रक्रिया से उत्पन्न हाव-भाव और व्यवहार से खुद-ब्-खुद सामने वाले को अच्छा अनुभव होगा।"

ऊपरी तौर पर हाव-भाव सीखना और लगातार करते रहना मुश्किल है जबकि हाव-भाव को उत्पन्न करने वाली अच्छी भावनाओं को दिल में रखने के लिए अभ्यास नहीं सिर्फ एक निर्णय लेने की ज़रूरत है।

आत्मविश्वास क़ी मुस्कान के साथ बोला.....

"सर इंच टेप से नापी हुई ऊपरी मुस्कान दिल से निकली हुई प्राकृतिक मुस्कान से हमेशा हारेगी।"

यही भावनाएं आपके व्यक्तित्व में झलकती हैं लोग उसे पढ़ते हैं और आप अनजाने में ही बिना किसी कोशिश के ही दिल जीतते चले जाते हैं। बस यही वो वशीकरण मंत्र या रहस्य है।

"बाकी समय खेल में हार-जीत से मैं उन्हें टीम के रूप में काम करने का महत्व बताता हूँ।

ध्यान से मैं उन्हें खुद को समझने और आत्मावलोकन करने का मौका देता हूँ।"

क्योंकि सफलता के लिए खुद की क्षमताओं को समझना बहुत ज़रूरी है।"
सर सही अरुण भी है लेकिन रिजल्ट इसलिए कम मिले क्योंकि
वो ऊपरी पत्तों(कपड़ों एवं ऊपरी हावभावों) को पानी दे रहा है।
जड़/आत्मा को नहीं।
"सर आप इस कोचिंग संस्थान की एक टैग लाइन भी दीजिये वो ये है.....
Keep winning the hearts
Car money bungalow...
Are just by products...

।। वो अधूरी कहानी ।।

`दादा जी के साथ वो रोज़ गंगा किनारे काशी में सुबह टहलने जाता। और उन खूबसूरत सुबहों में वो कहानियाँ सुना करता।

दादा जी को वो बाबा साहब कहता था।

बाबा साहब से घर में सब डरते थे बस कन्हैया को छोड़ कर।

बाबा साहब यूँ तो किसी को डाँटते नहीं थे न कभी चिल्लाते थे लेकिन उनकी आँखें ही काफी होती थी अनुशासन के लिए।

कभी-कभी सम्मान डर का रूप धारण करके आता है। शायद कहीं वो आहत न हो जाएँ किसी भी बात से, इस डर से ताऊजी, पिताजी सब डरते थे उनसे।

लेकिन छह बरस का कन्हैया उनसे हिला मिला था।

रोज़ उनकी पीठ कचरता, छोटे-छोटे हाथों से चम्पी करता। उनकी छड़ी को करीने से रख देता।

बदले में कहानी सुनता।

वो इतनी सारी कहानियाँ सुन चुका था कि बाबा साहब झल्ला के कहते अब कहाँ से कहानी लाऊँ। और कई बार पैदल चलते वो खामोश रहना चाहते लेकिन कन्हैया कहता रहता, "बाबा साहब सुनाओ न कहानी।"

और वो मासूमियत भरे अधिकार से किये गए आग्रह को टाल नहीं पाते।

शायद वो मन से किसी भी सिरे को पकड़ कर कहानी शुरू कर देते। कभी सुबह-सुबह दूधवाले दिखते तो उनपर कहानी शुरू कर देते। कभी नदी किनारे खड़े नाविक पर शुरू कर देते।

कभी चायवाले पर। कभी सड़क के पूँछ हिलाते कुत्ते पर।

कभी-कभी उन्हें अंत नहीं सूझता तो वो उसे अगले दिन के लिए अधूरा छोड़ देते। फिर कन्हैया से पूछते बताओ आगे क्या होगा।

और कन्हैया अगले दिन का इंतज़ार करता, जल्दी सुबह होने का। अपना जवाब देता और बाबा साहब हर जवाब पर कहते, "अरे वाह कान्हा तुम तो बहुत होशियार हो।"

वो ये कहानियाँ तब तक सुनता रहा जब तक बाबासाहब रहे।

बाबासाहब की भारी-सी आवाज़ में सुनी कहानियाँ उसके मन में चित्र से उभार देती। आख़िरी समय में उनकी आवाज़ काम्पने लगी थी तब भी न जाने वो कहाँ से कहानियाँ ले आते और सुनाते।

धीरे-धीरे ऐसा हो गया कि कन्हैया कहानियाँ भले न सुनना चाहे लेकिन बाबा साहब सुनाना चाहते थे।

उनके जीवन का सन्नाटा कन्हैया के हाँ- हूँ से दूर होता था।

बाबा साहब आख़िरी दिन भी कन्हैया का हाथ पकड़े कुछ सुना रहे थे, एक लंबी कहानी। और कन्हैया ने एक प्रश्न पूछ लिया था बीच में। वो उस प्रश्न का उत्तर देने लगे। उत्तर तो पूरा हो गया लेकिन वो कहानी अधूरी ही रह गई थी हमेशा के लिए। अगले दिन बाबा साहब नहीं थे अधूरी कहानी का अंत पूछने।

बहुत वर्षों बाद वो बड़ा हो गया,मेहनत से पढ़ाई की और जो कुछ भी पाना चाहता था पा लिया था। मुम्बई में था।

उसके पास अब सब कुछ था सुघड़ पत्नी,स्वस्थ बच्चे पद, पैसा, नाम।

लेकिन कहीं कुछ था जो खाली था। वो खुद को अकेला महसूस करता था। दुनिया बहुत बुरी है, सब स्वार्थी हैं, मेरा कोई नहीं, सब झूठे और पॉलिश्ड हैं जैसे नकारात्मक विचार मन में घर कर रहे थे।

कुछ था जो उसे उदास रख रहा था।

उसे लगता जैसे उसे खुद की ही तलाश हो।

कहीं कुछ खो गया हो जैसे।

वो खुद ही तो भीड़ में नहीं खो गया।

और एक दिन कन्हैया ने कार उठाई और निकल गया काशी को।

गुमटीयों में बैठ कर चाय पी।

गलियों में वैसे ही पैदल चला। बाबासाहब की उंगली थामे चलता हो जैसे।

बैलगाड़ी पर बैठा, टपरों से पान खाये।

सब से बातें की, उनका जीवन जाना।

कई बार हम खुद को औरों में तलाशते हैं अनजाने ही।

नदियों तालाबों में चेहरा देखने कोई नहीं जाता लेकिन फिर भी चेहरा दिख जाता है कई बार।

और यूँ ही जब वो टहल रहा था काशी की सड़क पर रास्ते में उसे बंजारों का काफ़िला दिखा था। बैलगाड़ी में जाते बंजारे।

उस सुबह भी बाबासाहब ने इन्हीं बंजारों को देखा था और कहानी सुनायी थी।

लंबी कहानी थी।

कन्हैया ने उस दिन पूछा था," ये एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं बैलगाड़ी से धीमे-धीमे, इन्हें तो बहुत तकलीफ़ होती होगी। बाबा साहब कितना बोर हो जाते होंगे ये लोग।"

तब उन्होंने कहा था, "बेटा कान्हा अब तुम इतने बड़े तो हो ही गए हो कि थोड़ी गहरी, गूढ़ बातें मैं तुम्हें समझा सकूं।

तो सुनो

अपने मिशन में जुटा आदमी कभी अकेला नहीं होता।

उद्देश्यहीन मस्तिष्क खुद-ब्-खुद दुःख तलाशता है।

भरी भीड़ में अकेला बना देता है।

उद्देश्यहीन मस्तिष्क ईर्ष्या, कुंठा, अतृप्ति, अपेक्षा, संदेह, क्रोध, दुःख, व्यसन जैसी भावनाओं का घर अनजाने ही बन जाता है।

उद्देश्य में मशगूल इंसान अपनी ही खुमारी में होता है। उसे किसी की ज़रुरत नहीं होती।

कोई हो साथ तो अच्छा न हो तो भी अच्छा। बोर शब्द उद्देश्यहीनता की उपज है। और ये बंजारे एक जगह से दूसरे जगह जाने के अपने उद्देश्य में मशगूल हैं।"

कन्हैया को अचानक लगा था जैसे खुद को उसने पा लिया हो। बाबा साहब की वो अधूरी कहानी उसे पूरी मिल गयी हो।

वो लौट आया था।

उसे सिर्फ आराम, पैसा, पद, प्यार वो सुकून नहीं दे रहे थे। बंजारों-सा उद्देश्य नहीं था। चलते जाने का।

दो दिन बाद वो कलेक्टर के सामने बैठा था अपना प्रस्ताव ले कर कि वो सड़क पर रहने वाले बच्चों की शिक्षा और स्वास्थय के क्षेत्र में मदद करना चाहता है, पैसों की कमी नहीं होगी क्योंकि उसका साथ इस काम में देने के लिए बहुत लोग हैं।

जीवन के उद्देश्य पर कन्हैया फिर आजीवन बढ़ता रहा।

फिर उसे कभी नहीं लगा कि दुनिया बड़ी स्वार्थी है और वो अकेला है।

बाबा साहब उसे मुस्कुराते से लगे और आवाज़ आयी

"अरे वाह कान्हा तुम तो बहुत होशियार हो।"

।। सफलता : सबसे शक्तिशाली मन्त्र ।।

एक गुरु थे वो बड़े ही रोचक और आसान तरीके से अपने शिष्यों को जीवन के गूढ़ रहस्य सिखाते।

एक दिन एक शिष्य ने पूछा

"गुरुजी सफलता के लिए सबसे ज़रूरी कोई एक मन्त्र हो तो बताइये जिसे हम रटते रहे। जो इतना शक्तिशाली हो कि हम रट कर जीत हासिल कर सकें।"

गुरु जी ने कहा हाँ ऐसा मन्त्र है तो लेकिन उसे सिर्फ रटने से बात नहीं बनेगी। आत्मसात करना होगा। वैसे तो ये मन्त्र आपके भीतर ही मौज़ूद है, लेकिन भय, आशंकाओं, पुरानी असफलताओं ने इसे दबा दिया है भीतर।

वो मन्त्र सिर्फ इतना है

"मैं ये कर सकता हूँ"। (I can)

बड़ा शक्तिशाली मन्त्र है, यदि दिल की गहराइयों से निकले तो।

चलो आज प्रकृति को देखते हैं इर्द गिर्द और संघर्ष की भाषा सीखते हैं,

"मैं कर सकता हूँ", ये मन्त्र ऊपरी नहीं,

इंसान का बनाया हुआ नहीं बल्कि प्रकृति प्रदत्त है।

बस मानव मस्तिष्क, भावनाओं और विचारों का बड़ा भंडार होने की वजह से इस छोटे, लेकिन शक्तिशाली विचार को नकारात्मक भावनाओं के 'कचरे 'में खो देता है।

तो शिष्यों चलो आज देखते हैं प्रकृति को

गुरु अपने प्रांगण के एक कौने पर ले गए उन्हें।

वहाँ चींटियाँ थी, जो बाजु में लगी दीवार पर चढ़ रही थी।

"शिष्य को कहा ज़रा हाथों से अवरोध बना कर रास्ता रोकना इनका"।

शिष्य ने चींटी के रास्ते पर आगे हाथ रखा, चींटियाँ जैसे ही अवरोध तक आती, थोड़ी कोशिश भी करतीं अवरोध से पार पाने की, जब लगता कुछ बड़ी-सी चीज़ है तो बिना रुके दूसरे रास्ते चलने लगती। जब वहाँ भी अवरोध रखा जाता तो फिर राह बदल लेती। चींटी को तो बस चलना था, चलते ही रहना था, पहुँचना था वहाँ जहाँ वो पहुँचना चाहती थी, अवरोध आये, रास्ता लंबा हुआ तो क्या, उसे प्रकृति ने मन्त्र दिया था कि मैं ये कर सकती हूँ।

गुरु ने कहा, "'मैं ये कर सकती हूँ" ये मन्त्र इन्होंने रटा नहीं, आत्मसात किया हुआ है। फिर वो प्राँगण में लगे एक कैक्टस के पौधे की ओर ले गए उन्हें और कहा, "ये पौधा तुम्हें पता है रेगिस्तान में बिना पानी बिना खाद के बढ़ता चला जाता है।

इसकी कोशिकाओं में है ये मन्त्र कि, बोलो कौन-सा मन्त्र।" गुरु ने पूछा

सभी शिष्यों ने कोरस में कहा, "मैं ये कर सकता हूँ।"

गुरु ने कहा, "आत्मसात की हुई आवाज़ इतनी धीमी नहीं होती, दिल से आनी चाहिए आवाज़।"
सारे शिष्यों ने कुछ उस तरह कहा, "मैं ये कर सकता हूँ", कि वो आवाज़ ज़हन में, हवाओं में, आकाश में समा गयी।
तभी एक छोटी-सी चिड़िया छोटा-सा तिनका ले जाते दिखी बड़ा-सा घोंसला बनाने को।
क्या उसे भी किसी गुरु ने सिखाया है,
"मैं ये कर सकती हूँ।"

।। स्वतः प्रेरणा ।।

कुछ ही दिनों पहले की बात है। एक दार्शनिक और प्रेरणा देने वाले आधुनिक गुरु (motivational speaker) का व्याख्यान चल रहा था।

तभी कॉलेज के एक युवा छात्र ने उनसे पूछा कि, "सर जो लोग सेल्फ मेड होते हैं या बहुत बुरी परिस्थतियों के बावज़ूद सफलता पाते हैं क्या उन सब में कुछ समानता होती है ? आखिर क्या है जो उन्हें प्रवाह के विरुद्ध तैरते रहने की प्रेरणा देता है ??"
गुरु मुस्कुराये और कहा, "बहुत ही अच्छा प्रश्न है बेटा।
बैठो।"

ये प्रश्न गुरु के मन के करीब था क्योंकि वो स्वयं भी बचपन की बुरी परिस्थतियों से निकलकर स्वयं को मानसिक शारीरिक और आत्मिक रूप से स्वस्थ् रखते हुए लोकप्रियता हासिल कर पाये थे। अब वो उस सोच के तरीके को, मन-मस्तिष्क में चलने वाले उन भावों को जो मुश्किल में भी चलते रहने की प्रेरणा देते हैं, औरों तक खासकर युवाओं और बच्चों तक ले जाना चाहते थे। इसलिए इस युवा के मासूम से प्रश्न ने उन्हें एक लंबे व्याख्यान का विषय दे दिया था।

उन्होंने कहना शुरू किया.....

देखो व्यावसायिक सफलता (professional success which is just a part of overall sucess) यूँ तो multifactorial है। अर्थात बहुत से कारकों पर निर्भर करती है। इन्हीं बहुत से कारकों (फैक्टर्स) में से कोई एक छूट जाने से भी सफलता फिसल सकती है। शायद सही जगह के बिन्दु पर सही समय पर पहुँचना ही व्यावसायिक सफलता है। लेकिन सही समय और सही जगह के उस बिंदु का मिलान आसान नहीं।

सारी जद्दोजहत इसी की है।

कुछ तरीके हैं जिनसे इसे हासिल करने की सम्भावना को काफी बढ़ाया जा सकता है। और इसका एक कारगर तरीका मैं एक शार्ट फॉर्म से समझाता हूँ।

S: सेल्फ मोटिवेशन या स्वतः प्रेरणा

D: डायरेक्शन। सही दिशा का चुनाव।

C: कंटीन्यूअस एफर्ट ।। लगातार प्रयास।

A: एप्रोच। तरीका एवं साधन।

तो बेटा तुम्हारा जो प्रश्न हैं न उसका उत्तर इसी SDCA में ही छुपा हुआ है। इन सभी विजेताओं में जो सबसे ज्यादा सामान्यतः पाया जाता है वो है सेल्फ मोटिवेशन या स्वतः प्रेरणा।

आखिर सेल्फ मोटिवेशन है क्या।

सेल्फ मोटिवेशन हमारे भीतर से कुछ सीखने कुछ बनने या कुछ पाने की अदम्य इच्छा को कहते हैं।

ये विषफुल थिंकिंग या ऊपरी तौर पर कुछ पाने की इच्छा से अलग है।

बहुत से युवा इसी ऊपरी इच्छा की वजह से ही अपने लक्ष्य से भटकते रहते हैं।

ऊपरी इच्छा जैसे मुझे आइ.ए.एस. बनना है क्योंकि मुझे लाल बत्ती वाली कार या 'पॉवर' चाहिए।

या मुझे अभिनेता बनना है क्योंकि मुझे बहुत शोहरत या पैसा चाहिए।

डॉक्टर बनना है क्योंकि किसी क्लिनिक के बाहर मैंने मरीजों की लाइन देखी थी। बड़ा नामी वकील बनना है क्योंकि उससे मुझे पैसा और 'पॉवर' मिलेगा।

ऐसे ऊपरी सपने जो भीतरी आवाज़ से उत्पन्न नहीं हुए किसी को देख कर कुछ पाने मात्र को उत्पन्न हुए। इन ऊपरी सपनों में स्वतः प्रेरणा नामक भीतरी शक्ति का अभाव था। ये अदम्य शक्ति ही साहस देती है विपरीत परिस्थतियों से लड़ने का। स्वतः प्रेरणा खुद–ब-खुद एक स्विच का काम करती है सफलता के बाकी पायदानों पर पहुँचाने का।

स्वतः प्रेरणा स्वयं ही सही दिशा तलाशने लगती है लगातार चलते रहने का साहस भी देती है।

किस साधन का उपयोग करना है आगे बढ़ने को बताने लगती है।

स्वतः प्रेरणा को आधार मान कर कहें तो हम में तीन तरह के लोग होते हैं जो सफलता के लिए जद्दोजहत करते हैं....

1. पहले तरह के लोग: जिन्हें स्वतः प्रेरणा या भीतर से आवाज़ तो कुछ और करने की थी किन्तु रोज़ी रोटी चलाने या कम जोखिम लेने की वजह से कुछ और कर रहे होते हैं।
और लगातार इस भीतरी आवाज़ को चुप कराते रहते हैं ताउम्र। या उन्हें अपने परिवार से कोई सहारा नहीं मिला होता इस भीतरी आवाज़ के लिए। इनकी संख्या सबसे ज़्यादा होती है।

इस समूह में छुपे होते हैं कुछ बेहतरीन गायक, बेहतरीन वक्ता, शानदार अभिनेता, कमाल के खिलाड़ी, अद्भुत चित्रकार, जादुई शेफ, जैसे लोग किसी और काम में लगे होते हैं जो उनके लिए शायद नहीं बने।
कोई सचिन तेंदुलकर कहीं क्लर्क होगा तो कोई सान्या नेहवाल किसी कॉल सेंटर में। यदि प्रकृति कुछ करने या बनने की अदम्य इच्छा देती है तो उसके पहले उस सपने को पा सकने की प्रतिभा का बीज भी अवश्य देती है।
हमारा काम है इस बीज को पोषित करना। उस प्रतिभा को निखारना। जिन्हें तुम सेल्फ मेड लोग कहते हो वे यही करते हैं। स्वतः प्रेरणा नामक भीतरी इच्छा को पहचान जुट जाते हैं कुछ सीखने कुछ करने और कुछ पाने।
जिसे हम ऊपरी तौर पर कुछ कर गुजरने की धुन के रूप में देखते हैं दरअसल वो भीतर की स्वतः प्रेरणा का छोटा-सा प्रतिबिम्ब मात्र होता है।

2. अब आते हैं दूसरे तरह के लोग: ये वो लोग होते हैं जिन्होंने भीतर झाँका ही नहीं। जो माता-पिता ने कहा या शिक्षकों ने कहा मान लिया। ऊपरी तौर पर जो व्यवसाय या

नौकरी फायदे मंद लगी कर ली। इनकी संख्या भी बहुतायत में होती है।

मेडिकल प्रोफेशन में इसलिए आ गए क्योंकि इस व्यवसाय में रोजी-रोटी तो चल ही जायेगी। सुरक्षित है। सम्मान की इच्छा है। लेकिन क्या भीतर से आवाज़ आयी कभी कि बीमारों की सेवा करना है इसलिए ये व्यवसाय?? सफल दूसरी तरह के लोग भी होते हैं लेकिन अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं दे पाते।

3.अब तीसरे तरह के लोग ये वो लोग होते हैं जो अपने सपनों को जीते हैं। दिल से। ये वो होते हैं जिनके दिल ने इतनी तेज़ आवाज़ दी कि इन्होंने सुन ली। स्वतः प्रेरित हो गए। स्वतः प्रेरित व्यक्ति लाभ और हानि का आंकलन भी बहुत नहीं करता बस उस बिंदु की ओर बढ़ता चलता है जहाँ उसे पहुँचना है। स्वतः प्रेरणा स्वतः ऊर्जा का काम करती है।

ना सिर्फ रास्ते सही चुने जाते हैं बल्कि रास्ते बनाये भी जा सकते हैं उस स्वतः ऊर्जा से।

कैसे पहचानें स्वतः प्रेरणा को:

कैसे पहचानें आपके भीतर क्या है??

कैसे पहचानें कि आप क्या करना चाहते हो??

अपने भीतरी अवचेतन मन पर नज़र रखिये ये आवाज़ अधिकतर बहुत साफ़ सुनायी देती है। कभी-कभी किसी नुकसान, अपमान या मुसीबत के बाद भी सुनायी देती है। इसलिए सेल्फ मेड लोग मुश्किलों को मौका मानते हैं।

जैसे गांधीजी को उनकी स्वतः प्रेरणा उनके ट्रेन में हुए अपमान के बाद मिली थी।

कभी-कभी एक अच्छी पुस्तक, कोई व्यक्ति या आपका प्यार भी ये जादुई घटना आपके जीवन में घटित कर सकते हैं।

मैडिटेशन कीजिये। प्रकृति से प्यार कीजिये।

जीवन का उद्देश्य स्वयं से आगे ले जा कर सबकी भलाई रखिये। आपकी आवाज़ आपको अवश्य सुनायी देगी।

स्वतः प्रेरित होने के लिए उम्र का भी ज़्यादा महत्त्व नहीं।

इसी के साथ गुरु ने उस लड़के से पूछा तुम क्या करना चाहते हो आगे ?

लड़के ने कहा कुछ समय तो भीतर की आवाज़ ही सुनूँगा फिर सब खुद तय हो जायेगा गुरूजी।

"बहुत बढ़िया कल मैं तुम्हें सफलता के दूसरे सूत्र पर विस्तार से बताऊँगा।"

।। हम सब रौशनी पुंज ।।

(सच्ची घटना पर आधारित)

झूठ बोलना तो अच्छी बात नहीं।
लेकिन झूठ भी तरह-तरह के होते हैं।
कभी मासूम झूठ, तो कभी मीठे झूठ, कभी दुष्ट झूठ, कभी धूर्त झूठ।

चार साल की पटर-पटर बातूनी, बुद्धिमान बच्ची दीक्षा आयी थी, अपनी मम्मी के साथ।

सर्दी, खांसी और बुखार से।

उसने मुझसे यूँ कहा, "दीक्षा को बुखार है"।

वो हर बात ऐसे ही कहती, खुद का नाम ले कर, मानो दीक्षा वो खुद न हो कर उसकी प्यारी गुड़िया हो।

मैंने कहा, "तुम बहुत प्यारी बच्ची हो।"

वो हँसी खिलखिलाकर और मेरे वाक्य विन्यास को कुछ यूँ ठीक किया,

"दीक्षा प्यारी बच्ची है"।

लेकिन एक और बात थी जो उसे दूसरे बच्चों से बहुत अलग करती थी, वो ये कि उसे जन्म से ही नहीं दिखता था। बायीं आँख जन्मजात रूप से सही ढंग से बनी ही नहीं थी, दायीं आँख में सिर्फ रौशनी का आभास उसे होता था।

कहने की ज़रूरत नहीं कि निम्न मध्यमवर्गीय परिवार ने सारी कोशिशें की थी। चेन्नई भी ले कर गए थे। लेकिन अब उन्हें पता था कि वो कभी ठीक नहीं होने वाली अपने पिता की तरह। लेकिन लड़की जात होने की वजह से वो ज़्यादा चिंतित थे।

अँधा दूल्हा ढूंढना आसान नहीं होता।

दरअसल उसके पिता भी जन्मजात रूप से अंधे थे। पिता भाग्यशाली थे कि उनकी शादी एक आँख वाली लड़की से हुई थी। वरना हमारे यहाँ गूंगे-बहरों की गूंगे-बहरों से। लंगड़े-लूलों की लंगड़े-लूलों से ही जोड़ी जमाई जाती है। एक नयी तरह की अछूत जाति बन जाती है, वो जिसे व्यर्थ में सम्मानसूचक अपंग और अब दिव्यांग बोला जाता है, कागजों, अख़बारों, कहानियों में।

जब पिता को स्कूल में आँख वाले बच्चे अँधा, अँधा और शिक्षक सूरदास संबोधित करते रहे होंगे तब माँ को ओये कानी। आखिर इन लोगों को थोड़े न अहसास होता है अपनी अपंगता का, उन्हें बार-बार याद दिलाने की ज़िम्मेदारी का हम आँख, हाथ-पैर वाली अलग प्रजाति और हमारे बच्चे बखूबी निर्वहन करते हैं।

माँ को तो पिछले जनम के पाप की थ्योरी भी दी गयी होगी।

माँ ने बातूनी दीक्षा से कहा, "तुम भी कहो कि डॉक्टर अंकल आप भी बहुत अच्छे हैं।"

दीक्षा ने ये नहीं कहा। अपनी एक आँख से मुझे देखने की कोशिश की। उसे मैं रोशनी का

हिलता डुलता पुंज-सा नज़र आया था शायद।
उसने कहा, "डॉक्टर अंकल अच्छे हैं, अब दीक्षा को दिखने लगेगा।"
फिर से बोली बार–बार, "दीक्षा को दिखने लगेगा।",
मैं वायरल फीवर का इलाज लिखता रहा और वो बोलती रही
"दीक्षा को दिखेगा।"
मैं कैसे सच बोलता। शायद ही किसी के लिए हम रौशनी के छोटे पुंज हों।
मैं और उसकी मम्मी दोनों ने लगभग साथ कहा। वही मासूम झूठ,
"हाँ दीक्षा को दिखने लगेगा"।
वो खिलखिलाई।
उसके जाते ही मैं रोशनी के पुंज से वही स्थूल, जड़, नीरस चिकित्सक बन गया।
लेकिन उसकी खिलखिलाहट और आशा मुझे रोशनी दे गई, लगा जैसे उसकी हँसी मेरे भीतर समां गयी, मानो बताने आयी हो कि तुम सब रौशनी के पुंज हो।
दीक्षा को दिखने लगेगा सुनते-सुनते लगा वो कह रही हो तुम्हें दिखने लगेगा, तुम्हें दिखने लगेगा, एक दिन ज़रूर तुम्हें दिखने लगेगा। तुम सब रोशनी के पुंज हो मुझे दिखता है, एक दिन तुम्हें भी दिखने लगेगा।

।। हवा का झोंका- समीर ।।

(सच्ची कहानी)

आज 2016। बड़ी बच्चियों को आज डायरी दी गयी थी अपने बारे में कुछ लिखने को। वो पंद्रह बरस की एक प्यारी-सी सुन्दर बच्ची, चुलबुलापन, और गंभीरता का मिश्रण। डायरी में उसने लिखा था, मैं छोटी थी बहुत। मुझे मेरे पिता ने बहुत मारा था, मारते वो रोज़ ही थे हाथ, पैर और छड़ी से। पटक भी देते थे। लेकिन उस दिन मुझे मार कर बोरे में भर दिया था और बोरे के भीतर कोई चुभती चीज़ मेरी छाती में चुभी थी तेज़। मुझे कोई चीज़ सर पर मारी गयी थी और इसके बाद मुझे कुछ याद नहीं।

उधर 2005। अब से लगभग दस वर्ष पहले। कटनी।

डॉ. समीर चौधरी हर रोज़ की तरह बैठे थे अपने क्लिनिक में मरीजों को देखते हुए। कटनी के एक लोकप्रिय शिशु रोग विशेषज्ञ। उम्र लगभग तीस-पैंतीस रही होगी, चेहरे पर छोटी-सी मूंछें। एक सौम्य, विनम्र शख्सियत रोज़ाना वही सर्दी खांसी, बुखार जैसे मरीज़ आज भी थे। लेकिन तभी क्लिनिक के लड़के ने कहा सर एक इमरजेंसी केस है क्या उसे बिना नंबर के भेज दूँ।

उन्होंने सहमति दी।

जिस दो माह की बच्ची को दो पुलिस कांस्टेबल ले कर आये थे वो बहुत बुरी हालत में थी।

बिना कपड़ों के, हाथ-पैर बाँध कर कोई उसे फेंक गया था पास के ही गाँव के एक नाले में।

किसी ने आवाज़ सुनी तो उसे बचाया गया।

डॉ. चौधरी ने उसे स्थिर करने के बाद कहा पुलिस से कि इसे सरकारी अस्पताल में भर्ती करवाएं। उन्हें पता था कि सरकारी अस्पताल में उसे बचाने लायक व्यवस्थाएं नहीं हैं, लेकिन इस तरह के बच्चों के कानूनी पचड़े भी बहुत होते हैं।

लेकिन जिला अस्पताल में इतने गंभीर मरीज़ के इलाज़ की व्यवस्था नहीं होने से ही कलेक्टर ने उसे डॉ. समीर चौधरी के पास भेजा था।

आखिर कलेक्टर से बात की गयी और कलेक्टर ने आश्वासन दिया कि कानूनी समस्याएं आपको नहीं आएंगी डॉक्टर।

डॉ. चौधरी ने बच्ची को भर्ती कर इलाज़ शुरू किया और अस्पताल स्टाफ और उनकी पंद्रह दिनों की मेहनत के बाद ये बच्ची पूरी तरह ठीक हो गयी।

लेकिन मुश्किल अब ये थी कि उसे भेजा कहाँ जाए।

प्रशासन के पास कटनी में इन बच्चों के लिए कोई व्यवस्था तो थी नहीं।

अस्पताल में दिन बीत रहे थे। बच्ची को नर्सेस कटोरी चम्मच से दूध पिलाती, खिलाती। और वो बच्ची सबको प्यारी लगने लगी। नर्सों ने बच्ची का नाम डॉ. समीर के नाम पर समीरा रखा। डॉ. समीर की डॉक्टर पत्नी भी इस काम में साथ थी। कलेक्टर ने कहा डॉक्टर आप ही कोई व्यवस्था करिये हम साथ देंगे।

डॉक्टर चौधरी ने कहा बच्चे को पालना कठिन नहीं लेकिन कानूनी पहलू हमें नहीं पता।

कलेक्टर ने फिर आश्वस्त किया।

डॉ. चौधरी इस बीच अस्पताल में ही उसकी देख-रेख करते रहे और अड़े रहे कि हम व्यवस्था नहीं कर पाएंगे प्रशासन को बच्ची को कहीं शिफ्ट कर देना चाहिए।

उनकी ये सोच बदलने वाली थी क्योंकि नियति उनसे चिकित्सा से परे कुछ करवाना ठान चुकी थी।

आज फिर एक बच्ची लाई गयी।

लगभग तीन वर्ष, फटी गंदी फ़्रॉक, खून के धब्बे जगह-जगह, सीने, बाँह और सर पर नुकीली चीज़ों के निशान।

सर के घावों में मेगट्स (कीड़े) पड़े हुए।

एक पैर की हड्डी में फ्रैक्चर। सुस्त, बेहोशी से पहले की अवस्था।

पुलिस ने बताया था खून से लथपथ हिलता-डुलता बोरा उन्हें मिला था बाजार के पास पड़ा हुआ।

खोला तो ये बच्ची निकली।

ये एक अज़ीब केस था।

डॉ. समीर चौधरी ने अपने साथी सर्जन और हड्डी के डॉक्टर को भी बुलवा लिया था। उसके घावों से कीड़े निकाल कर टाँके लगाये गए।

फ्रैक्चर में प्लास्टर बाँधा गया और उसे भर्ती किया गया।

कुछ ही घंटों में वो होश में आ गयी थी।

नर्स ने उसे कुछ खिलाया। शाम को डॉ. समीर जब राउंड पर आये तो वो बुरी तरह डर गयी और पलंग के नीचे जा छुपी।

सिस्टर ने उन्हें बताया सर सिर्फ आदमियों को देख कर ऐसा डरती है। मेरी तो गोदी में बैठ कर खाना खाया था।

इस बार वो निश्चय कर चुके थे। अब कानून का डर नहीं था।

घर जा कर पिता और पत्नी और छोटे भाई से कहा मैं इन्हें पालूँगा।

अनुभवी पिता ने कहा, "पागल मत बनो, अपने काम और डॉक्टरी पर ध्यान दो। वो भी एक समाज सेवा है।

उस तरह के पचड़ों में मत पड़ो।"

लेकिन डॉ. समीर को अब क्या होना है इसकी परवाह नहीं थी। वो ये कर भी पाएंगे या नहीं ये भी नहीं पता था।

कोई मदद मिलेगी या नहीं ये भी नहीं मालूम था।

कितने पैसे खर्च होंगे, क्या मुसीबतें आएंगी सोचा तक नहीं।

एक किराये का घर लिया और उसमें ये दोनों बच्चियाँ केयर टेकर के साथ रखी। तत्कालीन कलेक्टर ने कानूनी पहलुओं को सुलझाया।

ये दो बच्चियाँ क्या गयी, एक के बाद एक इस तरह की बच्चियाँ लाई जाने लगी।

शासन से डॉ. समीर ने कभी पैसे नहीं लिए, बल्कि अपनी प्रैक्टिस से कमाए पैसे खर्च करने शुरू किये।

लेकिन जैसा कि होता है दुनिया में बहुत सरे अच्छे लोग भी हैं जो औरों की मदद करते हैं।

छोटी-छोटी मदद हम सब करते हैं, लेकिन जैसे हमारी मदद की बूँदें मिट्टी में मिल जाती हैं। वही यदि एक मटके में हम वो बूँदें डालें तो कितनों की ही प्यास बुझाई जा सकती है उस मटके से।

ऐसा मटका या ऐसा मंच बनता है तो बूँदें खुद ही चली आती हैं जगह-जगह से।

डॉ. समीर को लोग इस काम के लिए मदद करने आने लगे थे।

उन्होंने अपने रिश्तेदारों और दोस्तों से साफ़ कह दिया कि मुझसे सम्बन्ध तब ही रहेंगे आपके जब आप उस उद्देश्य में साथ देंगे।

लेकिन वो ज़्यादातर पैसे का सहयोग लेने से मना करते थे।

उन्होंने आटा, दाल, चांवल, सब्ज़ी, दूध, साबुन, बर्तन जैसे सहयोग लेना शुरू किया। देखते ही देखते यहाँ पचास बच्चियाँ आ गयी।

सभी की कहानी और बीते हुए पल ऐसे ही दर्दनाक।

यहाँ तक कि उनके पास मानसिक विकलांग, मिर्गी रोग, एच.आई.व्ही.पीड़ित बच्ची भी आई। हर उम्र की पीड़ित और अनाथ बच्ची वहाँ आती और हमेशा के लिए उनका जीवन बदल जाता।

लेकिन सबके लिए उनके दिल में जगह थी।

लेकिन मकान में जगह कम पड़ने लगी।

और ऐसे में उन्होंने ये काम शुरू होने के लगभग तीन वर्ष बाद तीन एकड़ ज़मीन खरीदी।

अब तक कटनी से उन्हें सामान्य जनों और लोकल प्रशासन का अच्छा सहयोग मिला था। पूरा परिवार दीवाली, होली जैसे त्यौहार इस आश्रम में ही मनाता।

यहाँ उन्होंने सिर्फ उनका खाना और छत ही सुनिश्चित नहीं की बल्कि रोज़, स्कूल भिजवाना और लाना भी सुनिश्चित किया।

उनकी अलग से डांस क्लास, कराटे क्लास लगवाई।

वो सब जो एक सामान्य माता-पिता अपने बच्चों के लिए करते।

जो ज़मीन उन्होंने खरीदी उसमें स्टार फाउंडेशन के लिए एक अच्छे प्रांगण में सभी के सहयोग से एक शानदार भवन बना दिया गया।

यहाँ तक तो सब ठीक था लेकिन फिर एक बार उन्होंने सरकारी ग्रांट लेने का निश्चय किया जिससे और बेहतर सुविधाएँ इन बच्चियों को दी जा सकें।

बीच-बीच में छोटी बच्चियों को कुछ नेक दिल परिवार भी मिल गए। और उन्हें गोद दे दिया गया। वो बच्चियाँ अब भी मिलने आती हैं सभी से।

सरकारी अनुदान उनके लिए पहली बार उस मिशन में परेशानी का सबब बन कर आया। और जो परेशनियाँ आई वो नहीं चाहते थे कि सबको बताया जाये।

बस इतना था कि सरकारी मदद कभी नहीं लेनी है उन्होंने ये सीख ली।

लेकिन एक हास्यास्पद नमूना तो दिक्कत का मैं बता ही दूँ। क्योंकि शुरू से ही सारा राशन संस्था के पास लोगों द्वारा आता था तो पैसों से खरीदा ही नहीं जाता था। इस बात पर निरीक्षण करने आये अधिकारी ने उन्हें कहा कि आपके पास दाल, चांवल, आटे के बिल ही नहीं हैं इसका मतलब आप बच्चियों को खाना ही नहीं खिलाते।

इस कहानी को इस किताब का हिस्सा बनाने का ख्याल मुझे तब आया जबकि पाँच बच्चियाँ मेरे पास डॉ. समीर ने मेडिकल कॉलेज भेजी उपचार के लिए।

दो सुशिक्षित महिलाओं के साथ।

सभी बच्चियाँ साफ सुथरे, अच्छे कपड़े पहने हुए।

अच्छी बात ये कि बड़ी बच्चियाँ छोटी बच्चियों को बहुत प्यार से रखती और सिखाती।

दवाएं समय से ली जाएँ इसका पूरा ध्यान रखा जाता।

बच्चियों के चेहरे से टपकती खुशी, सहजता, मासूमियत, सुकून वहाँ मिलने वाली देखरेख का प्रमाण थी।

एक बार एक नवजात जो कि रेल पटरी पर मिली थी उन्होंने मेरे पास गंभीर हालत में रेफेर की थी।

वो बच्ची वेंटीलेटर पर थी। वे रोज़ मुझे एक पिता की तरह फ़ोन करते और उसका हाल पूछते।

कहने की ज़रुरत नहीं इलाज़ का सारा खर्चा उनके फाउंडेशन ने ही उठाया।

अब स्टार फाउंडेशन कटनी में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार निःशुल्क इन बच्चों के लिए कार्यक्रम करने और इन्हें सिखाने आते हैं।

इन बच्चियों ने कुछ माह पहले राज्यस्तरीय मार्शल प्रतियोगिता जीती है।
ये मैडल ही डॉक्टर समीर का सम्मान है जो ये बच्चियाँ लाई हैं।

जब मेरी किताब का नाम सही के हीरो है तो क्या डॉ. समीर चौधरी जी कहानी लोगों तक नहीं पहुँचनी चाहिए थी।

ये कहानी अन्य कहानियों से मनोरंजक न सही बेहद प्रेरक ज़रूर है।
सफलता सिर्फ भागमभाग नहीं, सिर्फ बड़े बंगले, और लंबी कार नहीं सफलता उस डायरी लिखती बच्ची के खुशी के आँसू भी हैं।

मेरी टेबल पर सामने एक कार्ड रखा है शादी का आमंत्रण। स्टार फाउंडेशन में रहने वाली पहली बच्ची की शादी।

समीरा वही पहली बच्ची जिसे गोद ले लिया गया था दो दिन इस शादी की तैयारी करवाने आई है अपने मायके।

डायरी लिखती बच्ची ने आगे लिखा था, पहली बार मैं डॉ. समीर को देख कर छुप गयी थी पलंग के नीचे, लगा था फिर से बोरे में बंद करने कोई राक्षस आया था।

मुझे नहीं पता था दुनिया इतनी शांत और प्यार भरी हो सकती है और इंसान डॉ. समीर जैसे। समीर का मतलब हवा होता है न, हाँ!! उस बोरे में हवा नहीं थी, दम घुट ही जाता मेरा लेकिन तभी बोरा खुला और एक हवा का झोंका मिला समीर।

।। ज़िंदगी एक चैसबोर्ड ।।

(जीते जागते सफल व्यक्ति की सच्ची प्रेरक कहानी)

मेरे पास आने वाले बच्चों के माता-पिता मुझे अपना मान कर कभी-कभी अपनी व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्यों पर भी सलाह माँगते हैं। इन्हीं में से सबसे कॉमन समस्या है अकेलापन या खालीपन महसूस होना। मैं इसका समाधान एक सच्ची कहानी से समझाना चाहता हूँ।

कुछ ही वर्ष हुए होंगे। ये कहानी है ऑस्ट्रेलिया के माटो जेलिक की। जिनका मैं खुद भी फैन हूँ।

माटो हैंडसम तेईस साल के युवा। ऑस्ट्रेलिया में एक कराटे चैंपियन। वे ब्लैक बैल्ट थे और उनका जुनून था मार्शल आर्ट।

युवावस्था में ही कराटे में न सिर्फ खुद आगे बढ़ना चाहते थे बल्कि बच्चों को भी सिखाना चाहते थे।

लेकिन जैसे कि ये जीवन का रास्ता है अंधे मोड़ो से भरा पड़ा एक दिन माटो का गंभीर एक्सीडेंट हो जाता है।

वो बच तो गए लेकिन उन्हें लगी हुई चोटों ने उन्हें लगभग 6 महीनों के लिए बेड रिडेन कर दिया। साथ ही जीवन भर के लिए उनका कराटे बंद हो गया। सारे मेडल्स दीवारों पर लटके-लटके चिढ़ाते रहते उन्हे। फैन गायब होने लगे थे। स्टार गुमनामी में जाने लगा था। अकेलापन अपंगता से अधिक तकलीफ़देह था।

बिस्तर पर पड़े-पड़े आँसू बहाते रहते। सारी योजनाएं धराशायी हो चुकी थी। जैसे सब कुछ खत्म हो गया हो।

लेकिन एक दिन उनके पिता ने उनके सर पर हाथ फेरा और कहा, "तुम माटो हो
हार नहीं मानने वाले।"

माटो ने उन्हें नम आँखों से देखा और कहा, "डैड मेरे लिए एक चैस बोर्ड और कुछ चैस की किताबें ला देना ।"

उनके पिता ने शाम तक ही ढेर सारी चैस किताबें ला दी। माटो बचपन में अपनी बहन और पिता के साथ चैस खेलते थे।

अब इसे वो बहुत ही अच्छे स्तर पर सीखना चाहते थे।

माटो जुट गए थे नए सिरे से। सीखने का वही जूनून। उस वक्त उनके मन में चैस से कुछ हासिल करना नहीं था। दिमाग में कोई योजना, कोई उधेड़बुन नहीं थी। उन्हें तो बस मज़ा आ रहा था मोहरों की लड़ाई गहराई से सीखने में। उनका जूनून और उद्देश्य अधिक से अधिक सीखना बन गया था। अकेलापन छूमंतर हो गया था। उद्देश्य हासिल करने में कब दिन बीत जाता पता ही नहीं चलता। अब सुई के कांटे चुभते नहीं थे।

प्रकृति ने इस बार उनकी लगन देख ली थी। कायनात योजनाएं बनाना शुरू कर चुकी थी

माटो नाम के युवा के लिए।

किसी से प्रकृति ने चैस सॉफ्ट वेयर बनवा दिए तो किसी से कहा तुम यू ट्यूब बनाओ। यू ट्यूब बनने के बाद माटो ने बच्चों को चैस सिखाने के पवित्र उद्देश्य से कुछ विश्व विजेताओं के फेमस गेम्स अपनी बेहतरीन कमेंट्री एवं विश्लेषण के साथ यू ट्यूब पर डालना शुरू किये। ज्यादा लोग नहीं देख रहे थे। प्रकृति इससे संतुष्ट नहीं थी। उन्हें इनाम देना चाहती थी उनकी लगन का।

तो प्रकृति ने रुबिन एवं स्टीव जॉब्स नाम के व्यक्तियों को कहा स्मार्ट फोन बनाने को।
और जब यू ट्यूब वीडियो, फोन पर देखे जाने लगे तो माटो जेलिक के मेरे जैसे लाखों चैस खेलने वाले फैन होते चले गए।

उनके चैनल के अब लाखों सब्सक्राइबर हैं।

वो दुनिया के नंबर एक चैस कमेंटेटर हैं।

वो कराटे में सारी दुनिया में नंबर एक नहीं बन सकते थे। चैस उनके भीतर था जो एक एक्सीडेंट के बाद बाहर आया।

यू ट्यूब पर matojeik टाइप करते ही आप उनके सैंकड़ों चैस वीडियो देख सकते हैं।

कहानी का सार: अकेलेपन की जड़ जीवन की उद्देश्य हीनता में है। किसी व्यक्ति में नहीं। अपने जीवन का उद्देश्य तलाशिये और जुट जाइये। उद्देश्य किसी भी तरह की रचनात्मक गतिविधी हो सकती है। और क्या पता प्रकृति आपके लिए भी कुछ योजनाएं बनाने लगे।

।। दूसरीशादी ।।

(संस्मरण)

2008, 10 वर्ष पहले।
जबलपुर।

दिल्ली से लौट मैंने नई नई प्रैक्टिस शुरू की थी।
मरीज़ बहुत कम आते थे। जो आते थे वे सभी बेहद ग़रीब, ग्रामीण परिवेश के। मध्यम एवं उच्च वर्ग या तो मुझसे अनभिज्ञ था या मेरे छोटे से क्लिनिक और मुझे उन्होंने स्वीकारा नहीं था।

ऐसे में एक मध्यम वर्गीय जोड़ा सुंदर पत्नी एवं हैंडसम पंजाबी पति अपने 2 माह के बच्चे को लेकर मेरे पास आने लगे। और उनसे फिर एक लंबा नाता बना रहा। पति हरमिंदर और उनकी लव मैरिज थी। हरमिंदर तो मॉडल सा लगता था।
हमेशा दोनों साथ ही आते। खुशमिज़ाज़ और मेरी बहुत रेस्पेक्ट करते।

दोनों लगभग 3 वर्ष तक आते रहे। फिर मुझे लगभग 2 वर्ष
तक नहीं दिखे । मुझे लगा बच्चा स्वस्थ्य होगा या वे जगह बदल चुके होंगे।

किन्तु एक दिन बच्चे की मां अकेले ही बलबीर (बच्चे का परिवर्तित नाम) को लेकर मेरे पास आई।
आते ही मैंने पूछा अरे इतने दिनों बाद कैसे हो आप ?

"जी सर सब ठीक है।" हंसते हुए बोली। लेकिन चेहरा वैसा खुशमिज़ाज़ नहीं दिखा।

हरमिंदर (परिवर्तित नाम) जी कैसे हैं ? कहाँ हैं ?

कुछ देर की खामोशी के साथ वो बोली "सर इसे 4 दिन से बुखार आ रहा है।"

मुझे लगा मेरे प्रश्न को जानबूझ कर उन्होंने नज़रअंदाज़ किया है।
इस बात का सम्मान करते हुए मैं बच्चे को चेक कर ट्रीटमेंट लिखने लगा।

"सर, हरमिंदर और मैं अलग हो गए हैं।"

मेरा पेन रुक गया था।
"ओह, लेकिन क्यों ?"
"सर, वो बहुत गुस्सा होते थे मुझ पर, बात बात पर चिल्लाते थे, काम करना भी बंद सा कर दिया था। मैंने काम शुरू किया तो शक करते थे।"

मैं अपने सभी भावों को संयत रख एक प्रोफेशनल की तरह बस दवाएं लिखने लगा था।

यह एक पक्ष था जो मैं सुन रहा था और न ही मुझसे उन्होंने कोई सलाह मांगी थी।

"ये ट्रीटमेंट लीजिये और 3 दिन बाद दिखा लेना फिर से। सिंपल वायरल फीवर लग रहा है।"

लेकिन जब वे उठने लगीं तब बिन मांगी सलाह न देने के अपने सिद्धांत पर मैंने नियंत्रण खो, इतना कह ही दिया…

"एक बार आप दोनों को मुझे तो बताना था या किसी काउंसेलर से मिलना था। खासकर बच्चे के लिए सोचिये।"

"सर अब तो जो होना था हो गया, कोर्ट से भी मामला निपटने ही वाला है। म्यूच्यूअल डिवोर्स मिल जाएगा",

तीन दिन बाद ही हरमिंदर क्लिनिक पर आ गया।

"सर, बच्चा आया था क्या उसकी मम्मी संग ?"

उसे मैंने सामने बैठाया। लेकिन वह बेहद कमजोर लग रहा था। हट्टा कट्टा, लंबा और गोरे रंग का वो पंजाबी युवक दो वर्ष बाद पहचानना भी मुश्किल था।

बेहद कमज़ोर, रंग उड़ा हुआ।

"हां, आई थीं वो बच्चे को लेकर" लेकिन,
"आपको क्या हुआ है ? कमज़ोर लग रहे हो"

सर मेरी किडनी ख़राब हो गई हैं। डायलिसिस पर हूँ।
बच्चा कैसा है सर और क्या हुआ है उसे ?

"बच्चा ठीक है। मामूली बुखार है।"

"आप दोनों के बीच क्या हुआ। इतने अच्छे लगते थे दोनों साथ में ।"
"सर मेरी ही गलती है, मैं पिछले 2 साल से उससे बहुत बुरा बर्ताव कर रहा था। चिल्लाता था, एक बार तो हाथ भी उठा दिया तब वो चली गयी।"

शादी कितने साल की थी ?

"सर 6 साल हो गए थे।"

कब से आप ऐसा करने लगे ?

"सर 2 एक साल से ही पता नहीं क्यों गुस्सा आने लगा इतना।"

किडनी खराब कैसे हुईं और कब पता चला ?

"सर शायद BP बहुत दिन से हाई था, डॉक्टर ने कहा।
मुझे पता नही चला। एक बार स्टोन और इंफेवशन भी हुआ था।"

"आप हाई बीपी और यूरिया बढ़ने से तो चिड़चिड़े नही हो रहे थे कहीं ?"

"सर उस समय तो कोई जांच कराई ही नहीं। क्या पता ?"

ये तो 7 माह पहले जब सांस में तकलीफ हुई तब पता चला creatine 8 है।

और वो कब अलग हुईं ?

"सर एक साल पहले।"

ओह!

क्या उन्हें पता है ?

"नहीं सर, अब क्या फायदा बताने से। वो अपनी ज़िंदगी अच्छे से जिये। बस मेरा बच्चा ठीक रहे। वैसे भी शायद वो दूसरी शादी कर रही है, साथ होती तब भी कौन सा उसे मेरी परवाह होती।"

डॉक्टर ने आपकी किडनी का क्या कहा है ?
"सर ट्रांसप्लांट को बोला है। तब तक डायलिसिस।"
हरमिंदर, पूर्णतः संयत था, निडर, दृढ़ । अपने इन हालातों के बावज़ूद।

ट्रांसप्लांट हो पायेगा? मैंने पूछा था।

"सर दो भाई हैं बस। एक तो पहले ही अलग हो गया है उससे पटती नहीं । माँ बहुत बूढी हैं। और छोटा भाई देना चाहता है किडनी लेकिन भाभी ने रोना गाना मचा दिया है। इसलिए अब वो भी नहीं दे पाएगा।"

यूँ उस लंबे चौड़े हैंडसम पंजाबी का जीवन मैंने अपने सामने बदलते देखा था।

कुछ देर बात कर वो चला गया था।

वो तीन दिन बाद आई थी, बच्चा ठीक था।

"सर एक बात पूछूँ?" चिरपरिचित चहचहाट से उसने कहा था।

जी, पूछिये "मैं दूसरी शादी कर लूंगी तो बच्चे के दिमाग पर बुरा असर तो नहीं पड़ेगा?"

इस बात का उत्तर मैं छोटा और ज़ल्दी देना चाहता था।

"यह बहुत सी बातों पर निर्भर करेगा। पहला तो जिससे आप शादी करेंगे, उसका बर्ताव इसके प्रति कैसा है क्योंकि बच्चा उसे महीनों या बरसों तक पिता के रूप में नहीं देख